आई. एस. एस. एन. **0523-1418** **अंक 321, वर्ष 64**

**भाद्रपद–आश्विन–कार्तिक**

**विक्रम संवत् 2082**

# भाषा

## सितंबर–अक्तूबर 2025

भाषा
सितंबर–अक्तूबर 2025

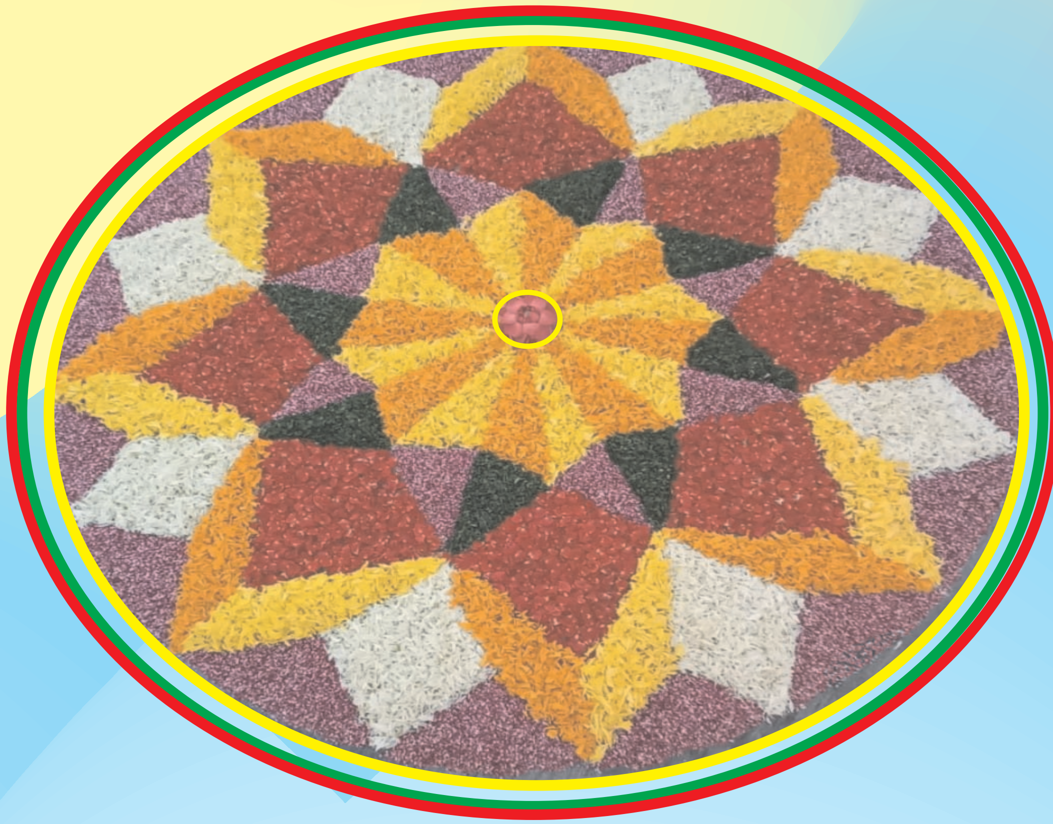

सत्यमेव जयते

## केंद्रीय हिंदी निदेशालय

**उच्चतर शिक्षा विभाग**

**शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**

# भाषा (द्वैमासिक)

## लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ टंकित रूप में (यूनिकोड में) भेजी जाएँ। भेजी जानी वाली सामग्री के साथ रचनाकार कृपया अपनी पासपोर्ट आकार की फोटो, पूरा पता और अपना संक्षिप्त परिचय भी अवश्य भेजें।

2. लेख आदि सामान्यतः फुलस्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए। लेख इत्यादि रचनाएँ भेजते समय इस आशय का भी प्रमाण–पत्र भेजा जाय कि रचना अप्रकाशित है तथा किसी भी रूप में अन्यत्र प्रकाशित नहीं हुई है।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथ अंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

9. द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' का ई–संस्करण केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वेबसाइट (www.chdpublication.education.gov.in) पर देखा जा सकता है।

10. 'भाषा' पत्रिका में प्रकाशित अंकों से संबंधित लेखकों/पाठकों की टिप्पणियों/सुझावों का स्वागत है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर पाठकों की टिप्पणियों को 'आपने लिखा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाएगा।


संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम
नई दिल्ली–110066

# भाषा

## सितंबर-अक्तूबर 2025

**प्रधान संपादक**

हितेंद्र कुमार मिश्र

**परामर्श मंडल**

प्रो. जी. गोपीनाथन

प्रो. चक्रधर त्रिपाठी

प्रो. श्रीराम परिहार

प्रो. नरेंद्र मिश्र

प्रो. किरण हजारिका

प्रो. विशाला शर्मा

श्री कुलदीप अग्निशेखर

**संपादन मंडल**

**संपादक**

एस. एम. नूर अहमद

**सह-संपादक**

नूतन पाण्डेय

अनुपम माथुर

**सहायक संपादक**

प्रदीप कुमार ठाकुर

**कार्यालयीन व्यवस्था**

विक्रांत हुड्डा

संजीव कुमार



**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,**

**शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार**

**ISSN 0523-1418**
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **64** **अंक** : **5** **(321)**

**सितंबर–अक्तूबर 2025**

**संपादकीय कार्यालय**
केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in / www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com दूरभाषः 011-26105211/12

**बिक्री केंद्र 1 :**

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066 दूरभाषः 011-26105211/12 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

**बिक्री केंद्र 2 :**

नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस, दिल्ली - 110054, वेबसाइट : www.deptpub.gov.in, ई–मेल : acop-dep@nic.in दूरभाष : 011-23817823/ 9689 (सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, दिल्ली के पक्ष में भेजें।)

**निर्देश :**

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) 211766 JR. ADMN. OFFICER CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया ऊपर दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भरकर भेजें।
3. 'भाषा' पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

| **मूल्य :** | | | |
|---|---|---|---|
| 1. एक प्रति का मूल्य | = | रु. 50.00 | (डाक खर्च सहित) |
| 2. वार्षिक सदस्यता शुल्क | = | रु. 250.00 | |
| 3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क | = | रु. 1250.00 | |
| 4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क | = | रु. 2500.00 | |

**पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।**

# अनुक्रमणिका

**प्रधान संपादक की कलम से**

**संपादकीय**

**आपने लिखा**

**धरोहर**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | दुलाईवाली (कहानी) | बंग महिला (राजेन्द्रबाला घोष) | 11 |

**स्मृति कलश**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 2. | लड़का–लड़की (कहानी) | अमरकान्त | 18 |

**आलेख**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 3. | हिंदी पत्रकारिता के 200 वर्षः अभिव्यक्ति, संघर्ष और उत्कर्ष की अविरल यात्रा | शैलेश शुक्ला | 27 |
| 4. | मानवी प्रगति के आयाम और साहित्य | प्रत्यूष वत्सला | 35 |
| 5. | आधुनिक भाषाविज्ञान को भारतीय भाषाचिंतन की देन | त्रिभुवननाथ शुक्ल | 46 |
| 6. | नयी शिक्षा नीति–2020 और आदिवासी भाषाएँ | राठोड पुंडलिक | 54 |
| 7. | रेणु का कथा–दर्शन और उसकी आंचलिकता | शिवनारायण | 63 |
| 8. | निर्मल वर्मा के निबंधों में सांस्कृतिक चिंतन | प्रदीप कुमार | 74 |
| 9. | स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में महिलाओं का बदलता स्वरूप एवं त्रिपुरारी शर्मा की रंगचेतना | नेहा श्रीवास्तव | 80 |
| 10. | संत कबीर एवं बाउल फकीर लालन शाह | रामचंद्र राय | 89 |
| 11. | आल्हा लोक महाकाव्यः मुहावरों में गुँथी वीरता की जीवंत दास्तान | जगदीश व्योम | 101 |
| 12. | समकालीन हिंदी गजल का परिदृश्य | कमलेश कुमारी<br>अनुज यादव | 109 |
| 13. | राहुल सांकृत्यायन की जापान यात्रा | अनुश्री | 118 |
| 14. | छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में भारतीय संस्कृति की उपस्थिति | अर्चना त्रिपाठी | 127 |
| 15. | 'आमी निदो बिंयी' (आपातानी समाज की प्रथम स्त्री शक्ति) | कागो मादो | 135 |
| 16. | 'सिंधी काव्य की त्रिवेणीः शाह, सचल एवं सामी | चंद्र प्रकाश दादलानी | 139 |

| | | |
|---|---|---|
| **व्यंग्य** | | |
| 17. कबीरा क्यों रोए | प्रेम जनमेजय | 147 |
| **कहानी** | | |
| 18. एक्सप्रेस युअरसेल्फ (मराठी/हिंदी) (युद्ध विरोधी चिंतन कथा) | मूलः पृथ्वीराज तौर<br>अनुवादः सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर' | 151 |
| 19. उत्तरमानव (नेपाली/हिंदी) | मूलः मनप्रसाद सुब्बा<br>अनुवादः बिर्ख खडका डुवर्सेली | 154 |
| 20. जातिंगा में पत्ताङ (हिंदी) | रीतामणि वैश्य | 156 |
| 21. अफ़सानानिगार (हिंदी) | अब्दुल गफ़्फ़ार | 174 |
| **कविता** | | |
| 22. चले गए उस दिन (ओड़िआ/हिंदी ) | मूलः प्रतिभा शतपथी<br>अनुवादः राजेन्द्र कुमार मिश्र | 184 |
| 23. देखा तो लगा! (गुजराती/हिंदी ) | मूलः गौरांग दिवेटिया<br>अनुवादः नयना डेलीवाला | 188 |
| 24. क्षणिकाएँ (हिंदी) | माणिक मृगेश | 190 |
| 25. कि स्त्रियाँ बाँध रही हैं धागे (हिंदी) | सुशांत सुप्रिय | 192 |
| **समीक्षा** | | |
| 26. रूहानी रात और उसके बादः एक ईमानदार अभिव्यक्ति (डायरी/अलका सिन्हा) | सुनीला नारंग | 193 |
| 27. अगम बहै दरियावः समकालीन अवधी समाज की महागाथा (उपन्यास/शिवमूर्ति) | आनंद पांडेय | 198 |
| 28. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बदलते असम की गौरव–गाथा समेटे हुए जीवंत उपन्यास 'पिता–पुत्र' (उपन्यास/होमेन बरगोहांई) | विजय कुमार तिवारी | 205 |
| 29. व्यंग्य समयः तंत्र के अंतर्जाल में व्यंग्य विवेक का हस्तक्षेप (व्यंग्य समय/चयनित व्यंग्य संकलन/ ज्ञान चतुर्वेदी/संपादक विज्ञानभूषण) | बी . एल. आच्छा | 211 |
| 30. जीवन की वास्तविकता से रू–ब–रूः जिंदगी यहीं कहीं (कहानी संग्रह/विमला व्यास) | नवीन कुमार | 216 |
| | | |
| **प्राप्ति स्वीकार** | | 220 |
| **संपर्क सूत्र** | | 221 |
| **सदस्यता फॉर्म** | | 225 |

# प्रधान संपादक की कलम से

भाषा के माध्यम से किसी समाज की सांस्कृतिक चेतना और अस्तित्व की जीवंतता अनंतकाल तक संभव है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से अपनी भाषा को लेकर सचेतनता, आत्मिक लगाव, स्वाभिमान एवं एक खास प्रकार का आग्रह दिखाई पड़ता है। आज हम जिस युग में जी रहे हैं वहाँ एक ओर तकनीकी विकास, वैश्वीकरण, सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक समीकरण बन–बिगड़ रहे हैं वहीं दूसरी ओर सामाजिक–पारिवारिक मूल्य, सांस्कृतिक संबद्धताएँ, परंपराएँ और मानवीय पहलू तीव्रतर गति से क्षीण हो रहे हैं। तीव्र संक्रमण के इस दौर में विचलन की अनंत संभावनाएँ हमारा मार्ग अवरुद्ध करने को तत्पर हैं और ऐसे में, विरोध और सामंजस्य के द्वंद्व के मध्य अपनी सनातन परंपराओं, मानवतावादी मूल्यों तथा प्रगतिशील विचारों के मध्य समन्वय करना किसी भी देश के लिए चुनौती से कम नहीं। भारत यदि इस कठिन समय में भी सांस्कृतिक–सामाजिक मूल्यों को सहेजता हुआ मजबूती से आगे बढ़ रहा है तो उसका सबसे बड़ा कारण भारतीय संस्कृति में निहित वे गुण हैं जो 'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्' की भावना से संपृक्त समस्त विश्व का कल्याण करने वाली समभावपूर्ण दृष्टि प्रदान करते हैं जिससे न केवल आतंरिक शक्ति का विकास संभव है, बल्कि भारतीय संस्कृति की आत्मा में निहित मानव–धर्म भी दृढ़ीकृत हो पल्लवित और पुष्पित होता है।

भारतीय संस्कृति की विश्व–कल्याणपरक भावना से उद्भूत विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य भी इस महत कार्य में महत्त्वपूर्ण उपकरण सिद्ध हुआ है। भारतीय साहित्य में सदा से ही ज्ञान और कर्म के समन्वय पर बल देते हुए मानवीय संवेदना तथा मनुष्य धर्म को श्रेष्ठ साहित्य की कसौटी मानते हुए 'मनुष्य' को सर्वोपरि रखा गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी जब 'अशोक के फूल' में कहते हैं कि 'मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गतिहीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःख कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।'' तो वे भी निश्चित रूप से साहित्य के माध्यम से मानवतावाद को ही प्रतिष्ठित करते दिखाई पड़ते हैं।

यह सत्य है कि समकालीन परिस्थितियों ने हमें व्यक्ति केंद्रित, स्वतुष्ट, दिग्भ्रमित और आत्ममुग्ध बना दिया है जिसके फलस्वरूप वर्तमान में निर्मित परिदृश्य हमें सोचने के लिए बाध्य कर रहा है कि हम कहाँ खड़े हैं और हमें जाना कहाँ है। यह दिग्भ्रमितता इतनी बढ़ गई है कि हमें आभास ही नहीं रहा कि सही मायने में हमारे जीवन का वास्तविक लक्ष्य क्या है? अतः आवश्यकता इस बात की

है कि निस्पृह और उदासीन रहने की बजाय सामूहिक उत्तरदायित्व बोध से अपने विचारों और कार्यों द्वारा समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाए। परमपूज्य दलाईलामा के 90 वें जन्मदिन के उपलक्ष्य में इस वर्ष को विभिन्न संस्थाओं द्वारा 'करुणा वर्ष' घोषित करना लुप्त होती जा रही मानवीयता को संरक्षण देने की दिशा में वैश्विक पहल है। आज जहाँ तनाव, संघर्ष और सामाजिक असहिष्णुता बढ़ रही है, करुणा का संदेश हमें एकता, सहिष्णुता और मानवता की भावना को पुनः जागृत करने का अवसर प्रदान करता है।

गौरतलब है कि इसी वर्ष 29 जुलाई को नयी शिक्षा नीति के पाँच वर्ष पूरे हो गए। नयी शिक्षा नीति नये भारत की आत्मा का प्रामाणिक दस्तावेज है। यह वह रोडमैप है जिससे होकर इस महान राष्ट्र के विकास की आधारशिला रखी जा रही है। नयी शिक्षा नीति में विद्यार्थियों के समग्र व्यक्तित्व विकास में भारतीय भाषाओं की महत् भूमिका को ध्यान में रखते हुए भारतीय भाषाओं के संवर्धन तथा प्रसार के लिए बहुविध उपाय सुझाए गए हैं। यहाँ भाषाओं के आपसी तालमेल और अंतर अनुशासनिक अध्ययन पर भी विशेष जोर दिया गया है। कहना न होगा कि सरकार भारतीय भाषाओं के समग्र विकास को लेकर गंभीर है और इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत सरकार भाषायी एकता के ताने–बाने को मजबूत करने की दिशा में गंभीरता से प्रयासरत है। यहाँ किसी तरह की भाषायी संकीर्णता के लिए कोई जगह नहीं है।

सितंबर–अक्तूबर माह हिंदी भाषा और संस्कृति के उत्सव का माह है। यह उत्सव प्रतीकात्मक रूप से संदेश देता है कि हम अपनी भाषा का सम्मान करें तथा अपने दैनिक कार्यकलापों और उसके प्रयोग में गर्व का अनुभव करें। यह उत्सव इस बात का भी प्रतीक है कि सभी भारतीय भाषाएँ परस्पर सहयोग और समावेशिता से संवर्धित हो रही हैं और समग्रता में भारत को प्रतिबिंबित कर रही हैं। गाँधीजी सहित अनेक हिंदीतरभाषी हिंदी प्रेमियों और विद्वानों का हिंदी प्रेम हम सबको प्रेरित करता है कि हम आपसी मतभेदों को भूलकर भाषायी सामंजस्य को बरकरार रखें और भारतीय भाषाओं के उन्नयन के लिए सामूहिक प्रयास करें तभी भाषा और साहित्य मिलकर समाज को अपना सर्वोत्कृष्ट देते हुए समाज के स्वर्णिम भविष्य की दिशा प्रशस्त कर सकेंगे। इसी शुभेच्छा के साथ 'भाषा' का नया अंक आपके सम्मुख है। आपके सुझाव 'भाषा' के लिए संजीवनी हैं।

**(हितेंद्र कुमार मिश्र)**

# संपादकीय

यह हम सबके लिए गर्व का विषय है कि भारत जहाँ वैश्विक स्तर पर विभिन्न क्षेत्रों में अपना वर्चस्व सिद्ध करते हुए आगे बढ़ रहा है, वहीं हिंदी भाषा भी लोकप्रियता के नित नवीन आयाम स्पर्श कर रही है। दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र की आधिकारिक भाषा हिंदी आज विश्व की सर्वाधिक व्यवहृत भाषाओं में से एक है। शिक्षा, कूटनीति, पर्यटन, व्यापार और जनसंचार के क्षेत्र में बढ़ती भूमिका के कारण हिंदी सीखने के प्रति लोगों की रुचि दिनोंदिन बढ़ रही है। आँकड़ों के अनुसार विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जानेवाले समाचारपत्रों में आधे से अधिक आज हिंदी में प्रकाशित किए जा रहे हैं। विश्व में हिंदी–प्रयोक्ताओं की निरंतर बढ़ती संख्या दिखाती है कि हिंदी भौगोलिक परिधियों से परे अपना असीम आकाश निर्मित कर चुकी है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों के समीकरण तीव्रगति से बदल रहे हैं, ऐसे में भाषायी परिदृश्य में परिवर्तन आना भी स्वाभाविक है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता के इस युग में तकनीकी समृद्धि और रोजगार की अधिकतम संभावनाएँ ये दो ऐसे विशिष्ट पहलू हैं जो किसी भाषा को विशिष्ट और लोकप्रिय बनाने में सर्वाधिक प्रभावी कारक हैं। हिंदी भाषा इन दोनों ही कसौटियों पर खरी उतरती है। एक समय तकनीकी रूप से जटिल समझी जाने वाली हिंदी आज अधुनातन तकनीक से समृद्ध है। हिंदी में कई सॉफ़्टवेयर, मोबाइल एप्लिकेशन और वेबसाइट्स उपलब्ध हैं जो हिंदी को तकनीकी रूप से सशक्त बनाते हैं। सर्च इंजन ऑप्टिमाइजेशन, ए. आई. और मशीन लर्निंग में हिंदी के बढ़ते प्रयोग के साथ ही डिजिटल मीडिया जैसे–पॉडकास्ट, ब्लॉग्स आदि कई प्लेटफॉर्म्स पर हिंदी की अथाह सामग्री विद्यमान है। माइक्रोसॉफ्ट, गूगल और याहू जैसी अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ व्यापक बाजार को देखते हुए अपने उत्पादों और सेवाओं को हिंदी में स्थानीयकृत कर रही हैं। आज हिंदी में तकनीकी शिक्षा और अनुसंधान हेतु कई संसाधन उपलब्ध हैं। हिंदी में नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग के क्षेत्र में भी गंभीर अनुसंधान कार्य हो रहे हैं, इसमें भाषायी डेटा संग्रह, शब्दकोश निर्माण और व्याकरण संबंधी मॉडल सम्मिलित हैं। भाषायी संसाधन विकास की दृष्टि से भी हिंदी निरंतर प्रगति कर रही है। मशीनी अनुवाद में ए.आई. का उपयोग करके गूगल ट्रांसलेट और अन्य अनुवाद उपकरण

हिंदी में अनुवाद की सुविधा प्रदान कर रहे हैं। ए.आई. आधारित वॉयस असिस्टेंट्स, जैसे–गूगल असिस्टेंट और अलेक्सा आदि हिंदी में भी उपलब्ध हैं। ये उपयोगकर्ताओं को हिंदी में संवाद करने की सुविधा देते हैं। कई कंपनियाँ ए.आई. आधारित चैटबॉट्स का उपयोग कर रही हैं, जो हिंदी में ग्राहक सेवा प्रदान करते हैं।

रोजगार की बात करें तो अब हिंदी सीखने के लिए परंपरागत अध्यापन कार्य ही एकमात्र विकल्प नहीं रहा। आज हिंदी सीखकर मीडिया के क्षेत्र में समाचारवाचक, रिपोर्टर, संपादक, कंटेंट–राइटर, प्रूफरीडर, रेडियो एनाउंसर, टी.वी. एंकर, रेडियो जॉकी, कार्यक्रम निर्माता, साउंड रिकॉर्डिस्ट इत्यादि के रूप में अपना कैरियर चुनकर बेहतर आय के साथ–साथ नाम और प्रसिद्धि भी प्राप्त की जा रही है। इंटरनेट की 24X7 उपलब्धता एवं स्मार्टफोन का बढ़ता प्रयोग हिंदी–यूट्यूबर्स के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है। ये सभी तथ्य संकेतित करते हैं कि हिंदी विश्व भाषा बनने के पथ पर अग्रसर है।

इन सुखद संकेतों के मध्य भाषा का नवीन अंक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इस अंक में धरोहर स्तंभ के अंतर्गत राजेन्द्र बाला घोष की कहानी 'दुलाईवाली' प्रकाशित की जा रही है जो सन 1907 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। बहुत से चिंतक–समीक्षक इसे हिंदी की पहली कहानी भी मानते हैं। राजेन्द्र बाला घोष ने निजी कारणों से 'बंग महिला' उपनाम से लिखना प्रारंभ किया और आगे चलकर वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुईं। ज्ञानपीठ पुरस्कार, साहित्य अकादेमी पुरस्कार, व्यास सम्मान आदि अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत कथाकार अमरकान्त का यह शताब्दी वर्ष है। अमरकान्त को प्रेमचंद की यथार्थवादी परंपरा का प्रतिनिधि कहानीकार माना जाता है। 'डिप्टी कलेक्टरी', 'जिंदगी और जोंक', 'देश के लोग','मौत का नगर', 'मित्र–मिलन, 'कुहासा', 'तूफान' आदि उनके बेहद चर्चित कथासंग्रह हैं। शताब्दी वर्ष पर महान कहानीकार को श्रद्धांजलि देते हुए उनकी 'लड़का–लड़की' कहानी पाठकों के लिए प्रस्तुत है। विविध विषयों पर आधारित विवेचनपरक आलेख, कहानियाँ और कविताएँ इस अंक को संगृहणीय बनाते हैं। सितंबर–अक्टूबर माह पर्व और उल्लास के महीने हैं। राजभाषा दिवस के साथ ओणम, गणेश चतुर्थी, नवरात्रि, दशहरा और दीपावली सामाजिक समरसता को बढ़ाएँ और जन–मन के हृदय में नवीन स्फूर्ति एवं ऊर्जा का संचार करें, इसी कामना के साथ.....

(एस. एम. नूर अहमद)

# आपने लिखा

साहित्य और कौशल विकास विशेषांक, मई–जून 2025 प्राप्त हुआ। जनोपयोगी और महत्त्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित करने हेतु भाषा पत्रिका के प्रधान संपादक प्रोफेसर सुनील बाबूराव कुळकर्णी, संपादक डॉक्टर नूतन पाण्डेय एवं संपूर्ण संपादक मंडल को साधुवाद! "साहित्य द्वारा कौशल विकास" यह विषय आज की मूलभूत आवश्यकता है। बदलते समय और परिवेश हेतु आपने इस अंक में कौशल विकास की अवधारणा और साहित्य के अंतर्संबंधों को विभिन्न दृष्टिकोणों से जाँचते, परखते हुए उत्कृष्ट लेख प्रकाशित किए हैं। व्यक्तित्व विकास से संबंधित कौशलों को पत्रिका में पाँच भागों में वर्गीकृत किया गया है जो मुझे अतिमहत्त्वपूर्ण प्रतीत हुए, जिसके माध्यम से श्रवण, वाचन, चिंतन, मनन, अभिव्यक्ति, व्याख्यान, अध्यापन, वार्तालाप, विश्लेषण, मंच संचालन, प्रस्तुतीकरण, साहित्य प्रबंधन, साहित्यिक आयोजन, पटकथा लेखन, वार्तालाप, साक्षात्कार से लेकर विज्ञान, तकनीक और प्रौद्योगिकी में टंकण कौशल, वेब पत्रकारिता, ब्लॉग लेखन, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, संवाद कौशल, संगठन तथा नेतृत्व कौशल इत्यादि विषयों पर आधारित विपुल साहित्य आपने विद्यार्थियों के लिए ही नहीं अपितु अध्यापकों, साहित्यकारों और साहित्य अनुरागियों के लिए उपलब्ध करवाया है, जो व्यक्तित्व विकास के लिए बहुउपयोगी है।

इस अंक में विद्यार्थियों में कौशल विकास हेतु उनकी विवेचनात्मक दृष्टि का विकास, डिजिटल साक्षरता (विज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों में) तार्किक बुद्धिमत्ता, सामाजिक, सांस्कृतिक बोध के साथ संपूर्ण व्यक्तित्व विकास, साहित्यिक अभिरुचियों को विकसित करने हेतु समग्र साहित्य उपलब्ध है। अंक में प्रकाशित समस्त आलेख उपयोगी और प्रेरणादायी हैं।

भाषा पत्रिका के इस विशिष्ट अंक से समाज के हर वर्ग, हर आयु, हर क्षेत्र का व्यक्ति कुछ न कुछ अवश्य सीख सकता है। पुनश्च, भाषा पत्रिका के संपादक मंडल को हार्दिक शुभकामनाएँ।

डॉ. विष्णु गाडगिल, विभागाध्यक्ष, भूविज्ञान, होल्कर महाविद्यालय, इंदौर

(2)

पत्रिका 'भाषा' के मई–जून 2025 (साहित्य और कौशल विकास) विशेषांक के सभी आलेख विचारणीय हैं और अच्छे स्तर के हैं। आलेख 'विविध कौशल विकास की उत्कृष्ट अभिव्यक्तिः नाटक 'कहत राय प्रवीण'' अत्यंत रुचिकर और बहुत ही अच्छा लगा, जिसने दमदारी से साहित्य कौशल को अभिव्यक्त किया। कैसे शहंशाह अकबर के सामने प्रवीण राय अपने वाक् चातुर्य (अभिव्यक्ति कौशल) से स्वयं की और अपने राज्य की रक्षा करती है व अकबर के क्रोध का कैसे शमन करती है! यह पठनीय है। 'कौशल विकास एवं क्षमता संवर्धन में 'अवधानम' तथा

'अनेकार्थी काव्य' का महत्व' आदि जैसे आलेखों से दक्षिण भारतवासियों के साहित्य का ज्ञान मिला, जो मेरे लिये नया था। तनाव प्रबंधन और आपदा प्रबंधन से संबंधित आलेख भी रुचिकर और प्रेरक हैं। संपादकीय प्रशंसा योग्य है। संपादकीय में डॉ. नूतन पांडेय ने पूर्णतया उचित लिखा है कि मनुष्य की सफलता इस बात पर निर्भर है कि वह अपने क्षेत्र में कितना कुशल है और अपने समक्ष आने वाली समस्याओं का समाधान कितनी दक्षता से करता है। ऐसा कौशल वह हमारी भारतीय परंपरा में चले आ रहे साहित्य से प्राप्त कर सकता है। भाषा के इस विशेषांक से पाठकों को अवश्य ही तनाव और आपदा प्रबंधन के साथ साहित्य से विभिन्न प्रकार के कौशलों को कैसे प्राप्त किया जा सकता है का स्पष्ट मार्गदर्शन व प्रेरणा मिलेगी। विशेषांक संग्रहणीय है।

डॉ. संध्या सिलावट,
उपायुक्त, राज्यकर, मध्यप्रदेश

---

## श्रद्धांजलि

व्यंग्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर श्री गोपाल चतुर्वेदी 25 जुलाई 2025 को परमपिता परमेश्वर के श्रीचरणों में विलीन हो गए। 15 अगस्त 1942 को जन्मे श्री गोपाल चतुर्वेदी ने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में अपनी लेखनी चलाई। उनकी प्रमुख कृतियों में राम झरोखे बैठ के, धांधलेश्वर, अफसर की मौत, दुम की वापसी, आदमी और गिद्ध, सत्तापुर के नकटे जैसे चर्चित व्यंग्य संग्रह शामिल हैं। स्वर्गीय श्री गोपाल चतुर्वेदी को यश भारती सम्मान, सुब्रमण्यम भारती पुरस्कार और व्यंग्य श्री सम्मान जैसे कई प्रतिष्ठित सम्मानों से सम्मानित किया गया था। भाषा परिवार की ओर से श्री गोपाल चतुर्वेदी को कृतज्ञ नमन!

धरोहर

# दुलाईवाली

बंग महिला (राजेन्द्रबाला घोष)

काशी जी के दशाश्वमेध घाट पर स्नान करके एक मनुष्य बड़ी व्यग्रता के साथ गोदौलिया की तरफ़ आ रहा था। एक हाथ में मैली–सी तौलिया से लपेटी हुई भीगी धोती और दूसरे में सुरती की गोलियों की कई डिबियां और सुंघनी की एक पुड़िया थी। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। गोदौलिया की बाईं तरफ जो गली है, उसके भीतर एक और गली में थोड़ी दूर पर, एक टूटे मकान से पुराने मकान में वह जा घुसा। मकान के पहले खंड में बहुत अंधेरा था पर ऊपर की जगह मनुष्य के वासोपयोगी थी। नवागत मनुष्य धड़धड़ाता हुआ ऊपर चढ़ गया। वहाँ एक कोठरी में हाथ की चीजें रख दीं और 'सीता! सीता' कहकर पुकारने लगा।

"क्या है?" कहती हुई एक दस बरस की बालिका आ खड़ी हुई। तब उस पुरुष ने कहा, "सीता! जरा अपनी बहिन को बुला ला।"

"अच्छा," कहकर सीता चली गई और कुछ देर में एक नवीन स्त्री आकर उपस्थित हुई। उसे देखते ही पुरुष ने कहा, "लो, हम लोगों को तो आज ही जाना होगा।" इस बात को सुनकर स्त्री कुछ आश्चर्ययुक्त होकर और झुंझलाकर बोली, "आज ही जाना हो सकेगा? ऐसा था तो सबेरे भैया से कह देते। तुम तो जानते हो कि मुँह से कह दिया; बस छुट्टी हुई। लड़की कभी विदा की होती तो मालूम पड़ता। आज तो किसी सूरत में जाना नहीं हो सकता।"

"तुम आज कहती हो! हमें तो अभी जाना है। बात यह है कि आज ही नवल किशोर कलकत्ते से आ रहे हैं। आरे से अपनी नई बहू को भी साथ ला रहे हैं। सो उन्होंने हमें आज ही जाने के लिए इसरार किया है। हम सब लोग मुगलसराय से साथ ही इलाहाबाद चलेंगे। उनका तार मुझे घर से निकलते ही मिला। इसी से मैं झट नहा–धोकर लौट आया। बस अब करना ही क्या है? कपड़ा–वपड़ा जो कुछ हो बाँध–बूँधकर, घंटे–भर में खा–पीकर, चली चलो। जब हम तुम्हें विदा कराने आए ही हैं, तब कल के बदले आज ही सही।"

---

बीसवीं सदी की महिला कथाकारों की कहानियाँ (खंड–1) संपादकः सुरेंद्र तिवारी, नमन प्रकाशन नयी दिल्ली से साभार

"हाँ यह बात है! नवल जो चाहे करावें। क्या एक ही गाड़ी में न जाने से दोस्ती में बट्टा लग जाएगा? अब तो किसी तरह रुकोगे नहीं, जरूर ही उनके साथ जाओगे। पर मेरे तो नाकों दम आ जाएगी!"

"क्यों! किस बात से!"

"उनकी हँसी से और किस से! हँसी–ठट्ठा राह में अच्छी लगती है? उनकी हँसी मुझे नहीं भाती। एक रोज़ मैं चौके में बैठी पूड़ियाँ काढ़ रही थी कि इतने में न जाने कहाँ से आकर नवल चिल्लाने लगे, ''ए बुआ! ए बुआ! देखो तुम्हारी बहू पूड़ियाँ खा रही है।'' मैं तो मारे सरम के मर–सी गई। हाँ, भाभी जी ने बात उड़ा दी सही। वे बोलीं, "खाने दो, खाने–पहनने के लिए तो आई ही है। पर मुझे उनकी हँसी बहुत बुरी लगी।"

"बस इसी कारण से तुम उनके साथ नहीं जाना चाहतीं! अच्छा चलो, मैं नवल से कह दूँगा कि यह बेचारी कभी रोटी तक तो खाती नहीं, पूड़ी क्यों खाने लगी।" इतना कहकर वंशीधर कोठरी के बाहर चले आए और बोले, "मैं तुम्हारे भैया के पास जाता हूँ। तुम रो–रुलाकर तैयार हो जाना।"

इतना सुनते ही जानकीदेवी की आँखें भर आईं और असाढ़–सावन की झड़ी लग गई।

वंशीधर इलाहाबाद के रहने वाले हैं। बनारस में ससुराल है। स्त्री को विदा कराने आए हैं। ससुराल में एक साले, साली और सास के सिवा और कोई नहीं है। नवल किशोर इनके दूर के नाते में ममेरे भाई हैं। पर दोनों में नाते से मित्रता का ख्याल अधिक है। दोनों में गहरी मित्रता है। दोनों एक जान, दो कालिब हैं।

उसी दिन वंशीधर का जाना स्थिर हो गया। सीता बहन के संग जाने के लिए रोने लगी। माँ रोती–धोती लड़की की विदा की सामग्री इकट्ठी करने लगी। जानकीदेवी भी रोती–रोती तैयार होने लगी। कोई चीज भूलने पर धीमी आवाज से माँ को याद भी दिलाती गई। एक बजने पर स्टेशन जाने का समय आया। अब गाड़ी या इक्का लाने कौन जाए? ससुराल वालों की अवस्था अब आगे की–सी नहीं थी कि दो–चार नौकर–चाकर हर समय बने रहें। सीता के बाप के न रहने से काम बिगड़ गया है। पैसे वाले के यहाँ नौकर–चाकरों के सिवा और भी दो–चार ख़ुशामदी घेरे रहते हैं। छूछे को कौन पूछे? एक कहारिन है; सो वो भी इस समय कहीं गई है। सालेराम की तबीयत अच्छी नहीं। वह हर घड़ी बिछौने से बातें करते रहते हैं। तिस पर भी आप कहने लगे, "मैं ही धीरे–धीरे जाकर कोई सवारी ले आता हूँ। नज़दीक तो है।"

वंशीधर बोले, "नहीं, नहीं, तुम क्यों तकलीफ करोगे? मैं ही जाता हूँ।"

जाते–जाते वंशीधर विचारने लगे कि इक्के की सवारी तो भले घर की स्त्रियों के बैठने लायक नहीं होती, क्योंकि एक तो उतने ऊँचे पर चढ़ना पड़ता है दूसरे, पराए

पुरुष के संग एक साथ बैठना पड़ता है। मैं एक पालकी गाड़ी ही कर लूँ। उसमें सब तरह का आराम रहता है। पर जब गाड़ीवालों ने डेढ़ रुपया किराया माँगा, तब वंशीधर ने मन में कहा– ''चलो इक्का ही सही। पहुँचने से काम। नवल किशोर तो यहाँ से साथ है नहीं। इलाहाबाद में देखा जाएगा।'' वंशीधर इक्का ले आए और जो कुछ असबाब था, इक्के पर रखकर आप भी बैठ गए। जानकीदेवी बड़ी विकलता से रोती हुई इक्के पर जा बैठी। पर इस अस्थिर संसार में स्थिरता कहाँ? यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं। इक्का जैसे–जैसे आगे बढ़ता गया, वैसे–वैसे जानकी की रुलाई भी कम होती गई। सिकरौल के स्टेशन के पास पहुँचते–पहुँचते जानकी अपनी आँखें अच्छी तरह पोंछ चुकी थी। दोनों चुपचाप चले जा रहे थे कि अचानक वंशीधर की नज़र अपनी धोती पर पड़ी; और "अरे एक बात तो हम भूल ही गए" कहकर पछता–सा उठे। इक्के वाले के कान बचाकर जानकी ने पूछा, "क्या हुआ? क्या कोई जरूरी चीज भूल आए?"

"नहीं, एक देशी धोती पहिनकर आना था, सो भूलकर विलायती ही पहिन आए। नवल कट्टर स्वदेशी हुए हैं न? वे बंगालियों से भी बढ़ गए हैं। देखेंगे तो दो–चार सुनाए बिना न रहेंगे। और बात भी ठीक है। नाहक विलायती चीज़ें मोल लेकर क्यों रुपए की बरबादी की जाए? देशी लेने से भी दाम लगेगा सही, पर रहेगा तो देश ही में।"

जानकी ज़रा भौहें टेढ़ी करके बोली, "ऊँह, धोती तो धोती, पहिनने से काम। क्या यह बुरी है!"

इतने में स्टेशन के कुलियों ने आ घेरा। वंशीधर एक कुली करके चले। इतने में इक्के वाले ने कहा, "इधर से टिकट लेते जाइए। पुल के उस पार तो ड्योढ़े दरजे का टिकट मिलता है।"

वंशीधर फिर कर बोले, "अगर मैं ड्योढ़े दरजे ही का टिकट लूँ तो?"

इक्केवाला चुप हो गया। "इक्के की सवारी देखकर इसने ऐसा कहा".यह कहते हुए वंशीधर आगे बढ़े। यथासमय रेल पर बैठकर वंशीधर राजघाट पार करके मुग़लसराय पहुँचे। वहाँ पुल लाँघकर दूसरे प्लेटफ़ॉर्म पर जा बैठे। आप नवल से मिलने की ख़ुशी में प्लेटफॉर्म की इस छोर से उस छोर तक टहलते रहे। देखते–देखते गाड़ी का धुआँ दिखलाई पड़ा। मुसाफिर अपनी–अपनी गठरी सँभालने लगे। रेल देवी भी अपनी चाल धीमी करती हुई गंभीरता से आ खड़ी हुई। वंशीधर एक बार चलती गाड़ी में ही शुरू से आखिर तक देख गए, पर नवल का कहीं पता नहीं। वंशीधर फिर सब गाड़ियों को दोहरा गए, तेहरा गए; भीतर घुस–घुसकर एक–एक डिब्बे को देखा, किंतु नवल न मिले। अंत में आप खिजला उठे और सोचने लगे कि मुझे तो वैसी चिट्ठी लिखी और आप न आएं। मुझे अच्छा उल्लू बनाया, अच्छा जाएँगे कहाँ? भेंट होने पर समझ लूँगा। सबसे अधिक सोच तो इस बात की थी कि जानकी सुनेगी तो ताने पर ताना मारेगी। पर अब सोचने का समय नहीं। रेल की बात ठहरी। वंशीधर झट गए और जानकी को लाकर जनानी गाड़ी में बिठाया। वह पूछने लगी, "नवल की बहू कहाँ है?"

"वह नहीं आए, कोई अटकाव हो गया।" कहकर आप बगल वाले कमरे में जा बैठे। टिकट तो ड्योढ़े दरजे का था। पर ड्योढ़े दरजे का कमरा कलकत्ता से आने वाले मुसाफिरों से भरा था। इसलिए तीसरे दरजे में ही बैठना पड़ा। जिस गाड़ी में वंशीधर बैठे थे, उसके सब कमरों में मिलाकर कुल दस बारह ही स्त्री–पुरुष थे। समय पर गाड़ी छूटी। नवल की बातें और न जाने क्या अगड़–बगड़ सोचते–सोचते गाड़ी कई स्टेशन पार करके मिर्ज़ापुर पहुँची।

मिरजापुर में पेट राम की शिकायत शुरू हुई। उसने सुझाया कि इलाहाबाद पहुँचने में अभी देरी है। चलने के झंझट में अच्छी तरह उसकी पूजा किए बिना ही वंशीधर ने बनारस छोड़ा था। इसलिए आप झट प्लेटफ़ॉर्म पर उतरे; और पानी के बंबे से हाथ–मुँह धोकर, एक खोमचे वाले से थोड़ी–सी ताज़ी पूड़ियाँ और मिठाई लेकर, निराले में बैठ आपने उन्हें ठिकाने पहुँचाया। पीछे से जानकी की सुध आई। सोचा कि पहले पूछ लें, तब कुछ मोल लेंगे, क्योंकि स्त्रियाँ नटखट होती हैं। वह रेल पर खाना नहीं पसंद करतीं। पूछने पर वही बात हुई। तब वंशीधर लौटकर अपने कमरे में आ बैठे। यदि वह चाहते तो वे इस समय ड्योढ़े में बैठ जाते, क्योंकि अब भीड़ कम हो गई थी। पर उन्होंने कहा, थोड़ी देर के लिए कौन बखेड़ा करे।

वंशीधर अपने कमरे में बैठे तो दो–एक मुसाफ़िर अधिक दिखाई पड़े। आगे वाले में से एक उतर भी गया था। जो लोग थे सब तीसरे दर्जे के योग्य ही जान पड़ते थे, अधिक सभ्य कोई थे तो वो वंशीधर ही थे। उनके कमरे के पास वाले कमरे में एक भले घर की स्त्री बैठी थी। वह बेचारी सिर से पैर तक ओढ़े, सिर झुकाए, एक हाथ लंबा घूँघट काढ़े, कपड़े की गठरी–सी बनी बैठी थी। वंशीधर ने सोचा इनके संग वाले भद्र पुरुष के आने पर उनके साथ बातचीत करके समय बितावेंगे। एक, दो करके तीसरी घंटी बजी। तब वह स्त्री कुछ अचकचाकर, थोड़ा–सा मुँह खोल जंगले से बाहर देखने लगी। ज्यों ही गाड़ी छूटी, वह मानो काँप–सी उठी। रेल का देना–लेना तो हो ही गया था। अब उसको किसी की क्या परवाह, वह अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगी। प्लेटफ़ॉर्म पर भीड़ भी न थी। केवल दो–चार आदमी रेल की अंतिम विदाई तक खड़े थे। जब तक स्टेशन दिखलाई दिया तब तक वह बेचारी बाहर ही देखती रही। फिर अस्पष्ट स्वर से रोने लगी। उस कमरे में तीन–चार प्रौढ़ा ग्रामीण स्त्रियाँ भी थीं। एक, जो उनके पास ही थी, कहने लगी, "अरे इनकर मनई तो नाहीं अइलेन। हो देख हो रोवल करथईन।"

दूसरी, "अरे दुसर गाड़ी में बैठा होंइ हैं।"

"तऊ हो भल तो कहू।" कहकर दूसरी भद्र महिला से पूछने लगी, कौने गाँव उतरहू बेटा! मीरजेपूरा चढ़ी हऊ न?" इसके जवाब में उसने जो कहा, वह सुन न सकी। तब पहली बोली, "हट हम पुछिला न, हम कहा, काहाँ उतरबू हो! आँय इलाहाबाद!"

दूसरी– "इलाहाबाद कौन गाँव हौ गोइंयाँ"

पहली– "अरे नाही जनलूँ? पेयाग जी, जहाँ मनइ मकर नाहाए जाला।"

दूसरी– "भला पैयाग जी काहे न जानीथ; ले, कहैके नाहीं, तोहरे पंच के धरम से चार दाई नहाए चुकी हुई। ऐसो हो सोमवारी, अउर गहन, दका, दका, लाग रहा तउन तोहरै काशी जी नाहाय गई रहे।"

पहली– "आवै जाय के तो सब अऊते जात बटले बाटेन। फुन यह साइत तो विचारी विपत में न पड़ल बाटिन। हें हम पचा हइ, राजघाट टिकस कटुऊली, मोगल के सराय उतर लीह, हो दे पुनः चढ़ली है।"

दूसरी– "ऐसे एक ढाई हम आवत रहे। एक मिली औरो मोरे संघे रहीं। द कौने टिसनीया पर उकर मलिकवा उतरे से कि जुरतइहै गाड़िया खुली। अब भईया उः गरा फाड़–फाड़ नरियाय,–ए साहब गड़िया खड़ी कर। ए साहेब गड़िया तनी खड़ी कर। भला गड़िया दहिनाती का है कै खड़ी होय?"

पहली– "उ मेहररूवा बड़ी उजवक रहल। भला केहू के चिल्लाए से रेलीओ कहूँ खड़ी होला?"

इसकी इस बात पर कुल कमरे वाले हँस पड़े। अब जितने पुरुष–स्त्रियाँ थीं, एक–से–एक अनोखी बातें कहकर अपने–अपने तजुर्बे बयान करने लगीं। बीच–बीच में उस अकेली अबला की स्थिति पर भी दुःख प्रकट करती जाती थीं।

तीसरी स्त्री बोली, "टिकसिया पल्ले बाय दां नाही सहेबवां देखी ताई ले उतर ली है। अरे इटो तो नाही कि दूर से आवत रहलेन, फरागत के बदे उतरलेन।"

चौथी– "हम तो इनके संगे के आदमी के देखबो ना किहा गोइयाँ।"

तीसरी– "हम देखे रहली हो, मजेक टीपी दिहले रहलेन को!"

इस तरह उनकी बेसिर–पैर की बातें सुनते–सुनते वंशीधर ऊब उठे। तब वे उन स्त्रियों से कहने लगे, "तुम तो नाहक उन्हें और भी डरा रही हो। जरूर इलाहाबाद तार गया होगा और दूसरी गाड़ी से वे भी वहाँ पहुँच जाएँगे। मैं भी इलाहाबाद ही जा रहा हूँ। मेरे संग भी स्त्रियाँ हैं। जो ऐसा ही है तो दूसरी गाड़ी के आने तक मैं स्टेशन पर ही ठहरा रहूँगा। तुम लोगों में से कोई प्रयाग उतरे तो थोड़ी देर के लिए स्टेशन पर ठहर जाना। इनको अकेले छोड़ देना उचित नहीं। यदि पता मालूम हो जाएगा तो मैं इन्हें इनके ठहरने के स्थान पर भी पहुँचा दूँगा।"

वंशीधर की इन बातों से उन स्त्रियों की वाक्यधारा दूसरी ओर बह चली– "हाँ ई बात तो आप भली कही।''

नाही भइया! हम पचे का काहि के केहु से कुछ कहीं। के एक अरे एक करत न बाय तो दुनिया चलत कैसे बाय?" इत्यादि ज्ञानगाथा होने लगी। कोई तो उस बेचारी को सहारा मिलते देख खुश हुए और कोई–कोई नाराज भी हुए। क्यों, सो मैं आपसे नहीं बतला सकती।'' उस गाड़ी में जितने मनुष्य थे सभी ने इस विषय में

कुछ–न–कुछ कह डाला था। पिछली सीट में केवल एक स्त्री, जो फरासीसीं छींट की दुलाई ओढ़े अकेली बैठी थी, कुछ नहीं बोली। कभी–कभी घूँघट के भीतर से एक आँख निकाल कर वंशीधर की ओर ताक देती थी और सामना हो जाने पर फिर मुँह फेर लेती थी। वंशीधर सोचने लगे कि यह क्या बात है? देखने में तो यह भले घर की मालूम होती है, पर आचरण इसका अच्छा नहीं।

गाड़ी इलाहाबाद के पास पहुँचने को हुई। वंशीधर उस स्त्री को धीरज दे आकाश पाताल सोचने लगे। यदि तार से कोई खबर न आई होगी तो दूसरी गाड़ी तक स्टेशन पर ही ठहरना पड़ेगा और जो उससे भी कोई न आया तो क्या करुंगा? जो हो गाड़ी नैनी से छूट गई। अब साथ की उन अशिक्षिता स्त्रियों ने फिर मुँह खोला, "क भईया, जो केहु बिन टिक्कस के आवत होय तो ओकर का सजाय होला? अरे औन्हें ई नाहो चाहत रहा कि मेहरारू के तो बैठा दिहेन, अउर अपुआ तऊन टिक्कस लेइ के चल दिहन।" किसी–किसी आदमी ने यहाँ तक दौड़ मारी कि रात को वंशीधर इसके जेवर छीनकर रफूचक्कर हो जाएँगे। उस गाड़ी में एक लाठीवाला भी था। उसने खुल्लम–खुल्ला कहा, "का बाबू जी! कुछ हमरो साझा रही।" उसकी बात पर वंशीधर क्रोध से लाल हो गए। उन्होंने उसे खूब धमकाया। उस समय तो वह चुप हो गया, पर यदि इलाहाबाद उतरता तो वंशीधर से बदला लिए बिना न रहता।

वंशीधर इलाहाबाद में उतरे। एक बुढ़िया को भी वहीं उतरना था। उससे उन्होंने कहा कि "उनको भी अपने संग उतार लो।" फिर इस बुढ़िया को उस स्त्री के पास बिठाकर आप जानकी को उतारने गए। जानकी से सब हाल कहने पर वह बोली, "अरे, जाने भी दो, किस बखेड़े में पड़े हो।" पर वंशीधर ने न माना। जानकी को और उस भद्र महिला को एक ठिकाने बिठाकर आप स्टेशन मास्टर के पास गए। वंशीधर के जाते ही बुढ़िया, जिसे उन्होंने रखवाली के लिए छोड़ा था, किसी बहाने भाग गई। स्टेशन मास्टर से पूछने पर मालूम हुआ कि कोई तार नहीं आया। अब तो वंशीधर बड़े असमंजस में पड़े। टिकट के लिए बखेड़ा होगा। क्योंकि वह स्त्री बेटिकट है। लौटकर आए तो किसी को न पाया, "अरे सब कहाँ गईं?" यह कहकर चारों तरफ़ देखने लगे। कहीं पता नहीं। इस पर वंशीधर घबराए। आज कैसी बुरी साइत में घर से निकले कि एक के बाद दूसरी आफ़त में फँसते चले जा रहे हैं। इतने में अपने सामने उस दुलाईवाली को आते देखा। "तू ही उन स्त्रियों को कहीं ले गई है।" इतना कहना था कि दुलाई से मुँह खोलकर नवल किशोर खिलखिला उठे।

"अरे यह क्या? सब तुम्हारी ही करतूत है! अब मैं समझ गया। कैसा गजब तुमने किया है? ऐसी हँसी मुझे नहीं अच्छी लगती। मालूम होता है, वह तुम्हारी ही बहू थी। अच्छा तो वे लोग गई कहाँ?"

"वे लोग तो पालकी गाड़ी में बैठी हैं। तुम भी चलो।"

"नहीं मैं सब हाल सुन लूँगा तब चलूँगा। हाँ, ये तो कहो, तुम मिरजापुर में कहाँ से आ निकले?"

"मिरजापुर नहीं मैं तो कलकत्ता से, बल्कि मुग़लसराय से, तुम्हारे साथ चला आ रहा हूँ। तुम जब मुग़लसराय में मेरे लिए चक्कर लगाते थे, तब मैं ड्योढ़े दर्जे में ऊपरवाले बेंच पर लेटे—लेटे तुम्हारा तमाशा देख रहा था। फिर मिरजापुर में जब तुम पेट के धंधे में लगे थे, मैं तुम्हारे पास से निकल गया पर तुमने न देखा। मैं तुम्हारी गाड़ी में जा बैठा। सोचा कि तुम्हारे आने पर प्रकट होऊँगा। फिर थोड़ा और देख लें, करते—करते यहाँ तक नौबत पहुँची। अच्छा अब चलो, जो हुआ उसे माफ करो।"

यह सुन वंशीधर प्रसन्न हो गए। दोनों मित्रों में बड़े प्रेम से बातचीत होने लगी। वंशीधर बोले, "मेरे ऊपर जो कुछ बीती सो बीती पर वह बेचारी, जो तुम्हारे गुणवान के संग पहली बार रेल से आ रही थी, बहुत ही तंग हुई। उसे तो तुमने नाहक रुलाया। वह बहुत ही डर गई थी।"

"नहीं जी! डर किस बात का था? हम तुम दोनों गाड़ी में न थे?"

"हाँ, पर, यदि मैं स्टेशन मास्टर से इत्तिला कर देता तो बखेड़ा खड़ा हो जाता न?"

"अरे तो क्या, मैं मर थोड़े ही गया था! चार हाथ की दुलाई की बिसात ही कितनी?".

इसी तरह बातचीत करते—करते दोनों गाड़ी के पास आए। देखा तो दोनों मित्र बंधुओं में खूब हँसी हो रही थी। जानकी कह रही थी, "अरे, तुम जानो क्या! इन लोगों की हँसी ऐसी ही होती है। हँसी में किसी के प्राण भी निकल जाएँ तो भी इन्हें दया न आवे।"

खैर, दोनों मित्र अपनी—अपनी घरवाली को ले राज़ी—खुशी घर पहुँचे और मुझे भी उनकी ये राम—कहानी लिखने से छुट्टी मिली।

❑❑❑

स्मृति कलश

# लड़का—लड़की

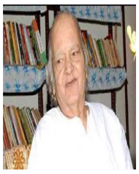

**अमरकान्त**

जुलाई 1925 – फरवरी 2014

सितंबर बीतते—बीतते बरसात समाप्त हो चुकी थी और आकाश निर्मल एवं नीला दिखाई देने लगा था। चंदर ने उन्हीं दिनों एक फिल्म देखी। वह एक गोरा, खूबसूरत और पतला—छरहरा नौजवान था, जिसको चलते हुए देखकर किसी वायु—प्रकम्पित ताजे बेंत की याद आ जाती। वह लाड़—प्यार में पला एक अच्छे खाते—पीते देहाती परिवार का लड़का था, जो बी.ए. की शिक्षा ग्रहण कर रहा था और विश्वविद्यालय के पास स्थित एक मोहल्ले में एक किराए के कमरे में रहता था। उस फिल्म का मुख्य अभिनेता उन्हीं फिल्मी लोकप्रिय नायकों की तरह था,जो सर्वगुणसंपन्न होते हैं और उछलकूद, फन, होशियारी और भावुकता का प्रदर्शन करके अंत में लड़की का हृदय जीत लेते हैं। फिल्में तो उसने बहुत देखी थीं, लेकिन इसने उस पर गहरा असर डाला और कई दिनों तक वह सड़कों पर बेचैन घूमता रहा और अंधेरी रातों में आकाश एवं तारों की रहस्यमयता को निहारता रहा। उसके बाद वह शहर की उग्र राजनीतिक हलचलों में भाग लेने लगा। वह कभी किसी जुलूस या प्रदर्शन में शामिल होकर नारे लगाता, कभी किसी सार्वजनिक सभा में भाषण करता और दो बार आगे बढ़कर उसने छात्रों की हड़ताल में हिस्सा लिया। इसी रास्ते से वह महानता के शिखर पर पहुँचेगा और अपने देश को महान बनाएगा। लेकिन कुछ ही दिनों बाद वह तेजी से साहित्य की ओर मुड़ा, क्योंकि किसी पत्रिका में एक कहानी पढ़कर उसको सहसा महसूस हुआ था कि साहित्य का क्षेत्र ऊँची प्रतिभाओं से शून्य है।

वह अब लंबी प्रेम—कहानियाँ और कविताएँ लिखने के साथ रतजगा करने लगा। उसने संपादकों के पास अपनी कुछ रचनाओं के साथ कुछ लंबे आदर्शवादी और व्यक्तिगत पत्र भेजे और जब कुछ रचनाएँ लौट आईं, तो वह शहीदाना ढंग से व्यंग्यपूर्वक मुस्कुराया कि ये लोग एक दिन उसके पैरों पर गिरेंगे। वह अब अपने से बेहद संतुष्ट रहने लगा और अब उसको एक सुंदर लड़की की जरूरत महसूस होने लगी, जो उसकी अद्वितीयता से प्रभावित होकर उस पर अपना जीवन न्योछावर कर

अमरकान्त की संपूर्ण कहानियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली से साभार।

दे, किंतु बहुत–सी घटनाओं में तलाश करने के बावजूद जब उसे ऐसी लड़की नहीं मिली, तो वह अत्यधिक परेशान हो उठा क्योंकि वह अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता था।

एक दिन सवेरे, जब हवा तेज चल रही थी तथा वह अपने कमरे के सामने टहल रहा था, तो उसकी दृष्टि तारा की ओर गई, जो खुली छत पर खड़ी अपने बाल सुखा रही थी। वह उसी मकान में रहने वाले एक क्लर्क की लड़की थी, जिसके एक कमरे का वह किराएदार था। लड़की का रंग साँवला था, शरीर लंबा तथा दोहरा; जिसके अलावा और कोई खास बात उसमें न थी। वह बार–बार अपने बालों को झटक रही थी और उनपर धूप पूरी तरह पड़ सके, इसके लिए शरीर को कभी बाईं ओर मोड़ लेती थी और कभी दाईं ओर। एक बार हवा इतनी तेज चली कि उसके बाल उड़ने लगे, गोया असंख्य काले सर्प भाग रहे हों। उसका आँचल भी उड़–उड़ जाता, जिसको सँभालने में उसको खेल का मजा आने लगा और वह शरारत से मुस्कुराई और तभी उसकी नजर नीचे चंदर की ओर गई। वह बेहद संकुचित हो गई और अपने शरीर को सिकोड़ तथा झुकाकर घर के अंदर भाग गई।

चंदर को बेहद आश्चर्य हुआ। उसने कभी सोचा भी न था कि उस लड़की में इतनी चंचलता और शोखी हो सकती है। कमल के नाल की तरह झूलती नंगी बाँहें और हथिनी की तरह मांसल शरीर। दरअसल उसने उस लड़की को कभी महत्त्व नहीं दिया था, यहाँ तक कि उसको ठीक से देखा भी नहीं था यद्यपि वह उसके घर के अंदर आता–जाता था और उसके यहाँ दावतों और समारोहों में कई बार शामिल भी हो चुका था। उसका ख्याल था कि वह एक भोंदू, गंदी और आलसी लड़की है, जैसे कि क्लर्कों की लड़कियों के बारे में उसकी राय थी। वह तीन मील पैदल चलकर कॉलेज पहुँचती थी, उतनी ही वापस लौटती थी, मामूली कपड़े पहनती थी तथा घर में डाँट–फटकार सुनती रहती थी।

यह सब सोचकर चंदर को उस लड़की पर इतनी दया आई कि वह वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति प्रबल आक्रोश से भर उठा। वह उस लड़की के भाग्य को सुधारेगा और इस तरह समस्त सामाजिक व्यवस्था पर क्रूर प्रहार करेगा तथा एक साधारण लड़की को प्यार करके देश के सामने अपनी महानता को सिद्‌ध कर देगा और इस महत्त्वपूर्ण निश्चय पर पहुँचकर उसको अपने ऊपर एक वीर नायक की तरह गर्व हुआ। वह बहुत ही आसानी से उत्साह एवं उमंग की मूर्ति बन गया और दूसरे दिन से ही उस लड़की को एक ऐसे प्रेमी की नजर से देखने लगा, जो अपने प्यार की खातिर बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार हो। जब वह कॉलेज जाने लगती, तो वह साफ–सुथरे कपड़े पहनकर कमरे से बाहर आकर खड़ा हो जाता और कॉलेज से लौटने के समय भी वह मौजूद मिलता, कभी–कभी वह कुछ दूर तक उसका पीछा

करता, कभी रास्ते में ही खड़ा दिखाई देता और कभी–कभी छुट्टी होने के समय कॉलेज के गेट के सामने व्यस्ततापूर्वक इधर–उधर जाते हुए नजर आता। इसके बाद वह उससे बातचीत करने की कोशिश करने लगा।

'क्या समय है?'

'आज देर से क्यूँ जा रही हो?'

'कॉलेज में आज छुट्टी नहीं है?'

उखड़े–उखड़े से प्रश्न। आँखों में दया, दुख और शहादत की भावनाएँ तैरा करतीं। फिर तो उसकी गतिविधियाँ कुछ इस ढंग से बढ़ीं कि लड़की को सचेत हो जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। पहले तो उसको अचंभा हुआ, फिर वह उसको अविश्वास से देखने लगी, यहाँ तक कि कुछ ही दिनों बाद उसकी आँखों से एक अजीब भय झाँकने लगा।

उस दिन चंदर काफी आगे बढ़ गया, जब वह अपने कमरे में बैठा था और तारा कॉलेज से वापस आई थी। चंदर ने पहले कमरे के दोनों दरवाजों के बाहर देखा और जब कोई दिखाई न पड़ा तो गलियारे से जल्दी–जल्दी गुजरती हुई तारा को उसने पास बुलाया। तारा ने उसको चौंककर देखा, फिर उसका चेहरा फक पड़ गया और वह डरती–डरती कमरे के अंदर आई और सर झुकाकर खड़ी हो गई।

'तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है तारा?' चंदर ने किसी हितैषी के अधिकार से पूछा।

'ठीक चल रही है।'

'कोई कठिनाई है?'

'नहीं।'

'कठिनाई महसूस होने पर पूछ सकती हो। मैं कोई भूत नहीं हूँ। बस, यही समझ लो कि मैं तुम्हारा कोई नुकसान नहीं देख सकता।'

तारा का सर झुका–का–झुका रहा। चंदर ने उठकर कमरे में दो बार चहलकदमी की, फिर वह तारा के एकदम निकट आकर बोला – 'तारा, तुमको डरना नहीं चाहिए। अपने को हीन नहीं समझना चाहिए। तुममें बहुत सी अच्छाइयाँ हैं। डरने की क्या जरूरत है?'

उसकी बातों का तारा पर न जाने कैसा असर हुआ कि उसका चेहरा रुदन की हल्की लकीरों में खो गया और वह अचानक छटककर कमरे के बाहर निकल गई।

तारा ने जल्दी से किताबें रखीं और एकांत कमरे में बैठकर चुपचाप आँखें पोंछने लगी, वह सचमुच अपने को बहुत छोटा महसूस करने लगी। गोया किसी ने संकेत करके यह बता दिया हो कि उसका स्थान कहाँ है। वह अपने माँ–बाप की प्रथम लड़की थी और उसको कभी बहुत लाड़–प्यार भी मिला था। उसका दिमाग बहुत

अच्छा था और अपने इम्तिहान बहुत अच्छे नंबरों से पास करती रहती थी। लेकिन धीरे–धीरे उसके परिवार की संख्या बढ़ती गई और बाजार में जरूरी सामान की कीमतें चढ़ती गईं और उसके परिवार पर काली छाया मँडराने लगी। अब घर में रोज ही लड़ाई–झगड़ा होने लगा। मामूली बात पर चख–चख और गाली–गलौज। पिता नाराज होकर घर से निकल जाते। कभी खाना–पानी छोड़कर अपने को कमरे में बंद कर लेती। स्वयं उस पर भी रोज डाँट–फटकार ही पड़ती। उसको छाती फाड़कर काम करने पड़ते, बच्चों को सँभालना पड़ता और छोटे भाई को गोद लादना पड़ता।

कई बार उसकी पढ़ाई छुड़ाने की बात आई, जिसके लिए कई बार उसकी माँ ने जिद ठान ली, लेकिन उसके पिता की वजह से ऐसा नहीं हो पाता था क्यूँकि वह जानते थे कि बिना पढ़ाई–लिखाई के शादी नहीं हो पाएगी और यदि शादी जल्दी न भी हो तो लड़की अपने पैरों पर खड़ी तो हो जाएगी। लेकिन घर के घुटन भरे वातावरण ने उसकी उमंग को समाप्त कर दिया था और वह घर तथा काम से भागने लगी। जब कॉलेज जाने का समय होता तो उसके उत्साह की सीमा न होती। उसकी टाँगों में अजीब सी स्फूर्ति आ जाती और वह सारा काम जल्दी निपटाकर बाहर निकल जाती। फुर्र–फुर्र बाहर निकलकर उसको अजीब सी शांति महसूस होती। काश वह अपने घर कभी न आ पाती और इसी तरह सड़कों पर घूमती रहती। लेकिन शाम को जब वह घर लौटती, तो उसको महसूस होता कि मानो उसके पाँवों में मन–मन के बोझे बाँध दिए गए हों और हृदय पर एक भारी शिला रख दी गई हो। कैसी मजबूर और हीनताभरी जिंदगी थी।

उसका रुदन सिसकियों में बदल गया, जिसके थमने पर वह चंदर की बातें सोचने लगी और उसको एक अजीब ताजगी और नवीनता का अनुभव होने लगा तथा यह भी कि उसका भी कुछ महत्त्व है। बादलों की तरह निरुद्देश्य भागते हुए उसके मन को एक ठोस आधार प्राप्त हुआ था। देखते ही देखते सब कुछ उलट–पुलट हो गया और उसके मन में एक प्रबल आँधी चलने लगी। रात में वह चारपाई छोड़कर चुपके से खुली छत पर आ जाती और अंधकार में कुछ तलाश करने लगी। लगातार बरसते हुए पानी को देखकर उसकी आँख भर आती और कुछ ही दिन बाद वह कुछ पूछने के बहाने किताब लेकर चंदर के कमरे में पहुँच जाती और शीघ्र ही इस पूछने और बताने के बीच प्यार का नाटक खेला जाने लगा। अंत में वे छिप–छिप कर मिलने लगे, कभी रात के अँधेरे में और कभी कॉलेज के फाटक पर।

'मेरा साथ दोगी?' चंदर कभी पूछता था।

'मैं नहीं जानती!' तारा शरमा जाती थी।

'नहीं मैं साफ–साफ बातें सुनने का आदी हूँ।'

'दूँगी... दूँगी!'

'मैं दुनिया को दिखा दूँगा...' चंदर गर्व से कहता था। इसके बाद चंदर बहुत ही ऊँचाई से अपना जीवन दर्शन पेश करने आ जाता। उसकी बात 'मेरे विचार में' या 'मैं यह सोचता हूँ' से शुरू होती थी। उसको पूरा विश्वास था कि वह एक महान क्रांतिकारी परोपकार का कार्य कर रहा है, जिसमें अपनी पूर्ण विजय और सर्वोच्चता की बात सोच कर वह सारे समाज को अपने शत्रु के रूप में कल्पना करने लगता। अपने प्यार को लेकर वह निरंतर संघर्ष और लड़ाई की बात सोचता था और इसीलिए तारा को तैयार करना चाहता था।

'तारा, तुमको बड़ी से बड़ी कुरबानी के लिए तैयार रहना चाहिए। तुमको किसी से डरना नहीं है, तुमको अधिक से अधिक परिश्रम करके, अधिक से अधिक पढ़ना है। किसी के सामने अपना सर झुकाने की जरूरत नहीं है। मैं सबको देख लूँगा। तारा मुझे योग्य स्वाभिमानी स्त्रियाँ पसंद हैं। तुम्हें मेरे विचारों के योग्य बनना है।'

जाड़ा और गर्मी बीत गई और फिर बरसात आ गई। तारा इंटरमीडिएट पास करके बी.ए. में पहुँच गई। इन कुछ महीनों में चंदर के प्यार और विचार ने उसके जीवन को संपूर्णतः बदल दिया। उसकी आँखों में सदा एक चमक दिखाई देती, जैसे प्रातःकाल पूर्वी क्षितिज का अँधेरा फट जाता है। उसने अपने और जीवन के दोषों को नई दृष्टि से देखा और वह जल्दी से जल्दी चंदर के अनुकूल बनने के लिए उत्सुक हो उठी।

उसके होठों पर सदा एक मधुर और विश्वासपूर्ण मुस्कराहट छाई रहती और वह उत्साह, स्फूर्ति, स्नेह और सद्भाव की मूर्ति बन गई। वह तड़के ही उठ जाती, घर की सफाई–वफाई करके खुद नहाकर अँगीठी जला देती और समय पर नाश्ता करके सबको आश्चर्यचकित कर देती। उसने दूसरों की अन्य आवश्यकताओं पर ध्यान देना शुरू किया। उसने सबके कपड़े प्रेस करने, पिता जी तथा छोटे भाइयों के जूते पॉलिश करने तथा माता जी के लिए तमाखू चढ़ाने का नियम बना लिया। अब माँ को सवेरे नियमित रूप से पानी भरे लोटे में रखी नीम की दातुन तथा भोजन के समय सबको प्याज और चटनी अवश्य मिल जाती। वह छोटे भाई–बहनों को समय पर उठाकर तैयार करा देती तथा उनको खिला पिलाकर पढ़ने के लिए बिठा देती। जब वह कॉलेज जाती, तो उसका मन सदा चंदर के प्यार से पुलकित रहता और वह अपनी सहेलियों के सामने भी बातचीत में सदा चंदर के विचारों को ही दुहराती रहती। उसका जीवन एक महान दिलचस्पी, विश्वास एवं प्रतीक्षा में परिवर्तित हो गया था।

एक दिन जब वह कॉलेज से लौटी तो उसकी माँ उसके छोटे भाई पप्पू को गालियाँ दे रही थी।

'माँ, यह ठीक नहीं है', तारा ने कहा

'क्या ठीक नहीं हैं?'

'गालियाँ देना।'

'अरे मेरी भौजी! तू मुझे सिखाने चली है? आ तो झाड़ू से बात करूँ।'

तारा का मुँह क्रोध से तमतमाने लगा और आँखें चमकने लगीं। उसने झनझनाती आवाज में कहा, 'आप मेरे प्रति ऐसी जबान में नहीं बोल सकतीं।'

'क्या? तेरी यह हिम्मत?'

'मैं अब बड़ी और जिम्मेदार हो गई हूँ। मैं यह सब बर्दाश्त नहीं करूँगी।'

'अरे पप्पू, बुला अपने बाप को!' उसकी माँ चीख पड़ी, 'आने दे उनको, मैं तेरा दीदा नवाती हूँ। बाप रे, यह लड़की हाथ से निकलती जा रही है! ठहर जा, मैं तेरा पढ़ना–लिखना छुड़ाती हूँ और इसी साल तुझे घर से भगाती हूँ...'

'मैं कहीं नहीं जाऊँगी।' तारा ने दृढ़ स्वर में कहा।

'क्या कहा? तू शादी नहीं करेगी?'

'नहीं... नहीं।'

'तो क्या करेगी, छाती पर मूँग दलेगी ?'

'मूँग क्यूँ दलूँगी? मैं अधिक से अधिक पढ़ूँगी और अपने पैरों पर खड़ी होऊँगी। मैं अपनी समस्या खुद हल करूँगी, तुमको चिंता करने की जरूरत नहीं है।'

'पढ़ूँगी!' माँ होठ विकृत करके बोली – 'तू पढ़ेगी क्या, सारे खानदान की नाक कटाएगी! ठहर, जबान लड़ाने का मजा चखाती हूँ!' उसके बाद उसकी माँ ने पास में रखे एक डंडे को उठा लिया और आगे लपककर उस पर प्रहार करने लगी। तारा पहले चीखी। इसके बाद काठ की तरह खड़ी होकर मार खाती रही। उसका मुँह लाल हो गया था और आँखों से झरझर आँसू गिर रहे थे। आँसुओं से भीगे हुए होठों में वह बुदबुदाई – 'मार कर तुम मेरी जान ले सकती हो, लेकिन मेरे विचारों को बदल नहीं सकतीं...'

तारा ने भोजन त्याग दिया। वह पहले की तरह ही सब काम करती रही, लेकिन अन्न को हाथ न लगाती। पहले तो माँ जिद में कुछ न बोली लेकिन जब दो दिन बीत गए तो माथा ठनका। इसको पता नहीं इधर क्या हो गया है, कहीं सचमुच जान न दे दे! इसके लक्षण इधर समझ में नहीं आते! देर तक बनाव–शृंगार करती रहती है। बातें भी बुजुर्ग की तरह करती है। लड़की को यह सब शोभा नहीं देता है। इज्जत आबरू के साथ दिन कट जाए, यही बहुत है। उसने अब पति से सारी बात कह देना उचित समझा और कहकर स्वयं रोने लगी।

पति ने पहले पत्नी को बहुत फटकारा, फिर वह तारा के पास जाकर बैठ गया। उसने साफ–साफ बात करना उचित समझा। प्रश्न–पर–प्रश्न! तारा पहले हिचकिचाई। लेकिन पिता ने कहा कि वह पढ़ी–लिखी लड़की है वह उससे साफ–साफ बातें सुनना चाहता है। पिता के स्वर में अपार सहानुभूति थी। तारा अपने को रोक न सकी। उसने सबकुछ बता दिया और उसकी हिचकियाँ बँध गईं।

पिता का चेहरा गंभीर हो गया और वह वहाँ से उठ आए। वह टहलने लगे। चुपचाप। कभी यह लड़की कितनी छोटी थी और आज बड़ी होकर ऐसी बातें कर रही है। जमाना कितना बदल गया है। क्या ऐसा हो सकता है? काश, ऐसा हो सकता। विभिन्न जातियों के बीच आज शादियाँ होने लगी हैं, इसमें क्या खास बात है? फिर वह तिलक, दहेज से बच जाएँगे, जिसके लिए कर्ज के अलावा कोई और चारा नहीं है। लड़का बुरा नहीं है। वह देर तक सोचते रहे, फिर भी किसी निश्चय पर नहीं पहुँच पाए, क्योंकि तर्क एवं सच्चाई के सहारे जब वह दो कदम आगे बढ़ते थे, पुराने संस्कार उनके कदम को पीछे खींच लेते थे।

रात में देर तक पति–पत्नी खुसुर–फुसुर करते रहे। बीच में पत्नी रोई–चिल्लाई। फिर पति देर तक समझाते रहे। स्पष्ट, दृढ आवाज। तर्कसंगत बातें। नए जमाने के विचारों को स्वीकार करने की दलीलें। पत्नी का विरोध मंद पड़ने लगा। फिर पता नहीं कब सब–कुछ खामोशी में खो गया। तारा सारी बातें छिपकर सुन रही थी। जब वे सो गए, तो वह चुपके से पैर दबाकर निकली। खुशी के मारे उसकी देह थरथरा रही थी। चंदर को वह कब यह–सब सुनाएगी? चारों ओर घना अंधेरा कुंडली मारकर बैठा था। हवा गुमसुम थी, जैसे किसी षड्यंत्र में लीन हो। चंदर अभी सोया नहीं था। खटखटाहट सुनते ही दरवाजा खोल दिया और हाथ बढ़ाकर तारा को अपने पास खींच लिया।

'मैं आज बहुत खुश हूँ।' तारा ने मुस्कराकर कहा। उसकी आँखें प्यार से चमक रही थीं।

'क्या बात है? चंदर ने लापरवाही से पूछा।

'मिठाई खिलानी पड़ेगी।'

'जरूर! अब बताओ।'

'पिताजी राजी हो गए हैं।'

'राजी हो गए हैं? क्या मतलब?' चंदर कुछ समझ नहीं पाया था।

तारा ने विस्तार से सब बात सुनाई। उसके स्वर में उमंग की तेज़ी और चमक थी। चंदर का चेहरा सहसा फक पड़ गया। उसने अपने को आलिंगन से मुक्त कर लिया और खिड़की के बाहर अँधेरे में देखने लगा। शादी! वह अपने को महान समझाता था और उसकी कल्पना थी कि उसका प्यार महान संघर्ष, महान तूफान और महान कुर्बानी के दौर से गुजरेगा। उसके प्यार की ऐसी साधारण परिणति होगी, ऐसा उसने सोचा भी न था। उसका मुँह देखते ही देखते कठोर हो गया।

'क्या बात है?' तारा डर गई।

'यह धोखा है!' उसने घृणा से मुँह बिचकाते हुए कहा।

'क्या धोखा है?'

'तुम धोखेबाज हो। तुमने शुरू से आखिर तक मेरे साथ धोखा किया है।'

'क्या धोखा किया है, आप बताते क्यूँ नहीं?' तारा ने रुआँसे स्वर में कहा...

'हाँ, किया है। इसी के लिए तुम मेरे पीछे पड़ी हुई थीं, पर आज मैं समझ गया कि तुम जीवन में कुछ नहीं कर सकतीं। तुमसे कोई बड़ा काम नहीं हो सकता।'

'बड़ा काम और कैसे हो सकता है? तारा का चेहरा अपमान से तमतमाने लगा'।

'बड़े काम करने के बड़े तरीके होते हैं। उसके लिए बड़े संघर्ष से गुजरना पड़ता है। तुम उनके काबिल नहीं हो।'

'मैं अब समझ गई।' तारा के स्वर में तीखापन था।

'क्या समझ गई?'

'आप मुझे प्यार नहीं करते। आप प्यार कर ही नहीं सकते।'

'क्या मतलब?' चंदर चौंक पड़ा।

'मतलब स्पष्ट है। प्यार की चरम परिणति है शादी, इसी मंजिल तक पहुँचने के लिए संघर्ष और कुरबानियाँ दी जाती हैं। लेकिन अब यह मंजिल प्राप्त हो जाती है, तो आपको खुशी नहीं होती। इसका अर्थ है कि आपके संघर्ष की बातें जिम्मेदारियों से बचने और स्वार्थ को छिपाने का बहाना है। मैंने तो जीवन के आरंभ से ही संघर्ष किया है, आपने क्या किया? आप भूख जानते हैं? आपको गरीबी, जलालत, घुटन, ऊब, निराशा का पता है? साफ तो यह है कि आपको एक नारी–देह की जरूरत है और जरूरत है अपने अहंकार की तृप्ति की।'

'तुम वाहियात बक रही हो।' चंदर ने घूरकर कठोर स्वर में कहा।

'हाँ, वाहियात बक रही हूँ।' तारा और भी तीखी आवाज में बोली– 'लेकिन आज आपको सबकुछ सुनना पड़ेगा। मैं आपको कितना प्यार करती हूँ यह नहीं बता सकती, लेकिन आज आपकी भी गलत बातों को मैं बर्दाश्त नहीं कर सकती। आपका भी ऐसा ही कहना है। आपके लिए तो मैं बड़ा से बड़ा त्याग करने को तैयार थी, लेकिन इधर मैंने यह महसूस करना शुरू कर दिया है कि आप केवल अपनी बातों को महत्त्व देते हैं, दूसरों की भावनाओं की आपको कतई परवाह नहीं। कितनी बार मेरी इच्छा हुई कि आपसे अपने मन की बातें कहूँ...। अपने दुख–सुख की, अपनी कल्पनाओं की, भविष्य की। कई बार मैं कोई अच्छी किताब पढ़कर आती थी और उसके बारे में आपसे बातें करना चाहती थी, लेकिन आप मेरी हर बात को काटकर अपनी बातें शुरू कर देते थे, वही उपदेश। वही छात्र आंदोलन के अनुभव। आपको दो ही बातों से मतलब है, एक मेरी देह से और दूसरे मुझे उपदेश देने से। मैं मेहनत करूँ, मैं कुरबानी देने को तैयार हो जाऊँ। आप क्या करोगे? आप क्या मेहनत करते हैं? बात तो यह है कि आप सदा हवा में उड़ते रहना चाहते हैं और आज जब जमीं पर उतरने का मौका आया है त्याग करने का समय आया है, तो आप जान बचाना चाहते हैं, इसलिए आप नाराज हैं, अपने

लिए मौजपूर्ण गैरजिम्मेदार और दूसरों के लिए परिश्रम, कर्तव्य और जिम्मेदारी, यही आपका जीवन दर्शन है। पर मैं आपसे यह पूछती हूँ कि आपने मेरा जीवन क्यों बरबाद किया? खैर आप यह बात गाँठ बाँधकर रख लीजिए कि मैं किसी की दया पर निर्भर नहीं रहना चाहती।'

अंत में उसकी बातें रुदन में बिखर गईं और वह तेजी से बाहर निकल गई।

चंदर कुछ देर तक कमरे में सुन्न खड़ा रहा। ऐसी उम्मीद उसको न थी। कुछ क्षणों के लिए उसको लगा कि तारा की बातें सही हैं। तब वह अपने को बहुत ही छोटा महसूस करने लगा। लेकिन शीघ्र ही उसने अपने को इस भावना से मुक्त कर लिया। अब उसका मुँह क्रोध और घृणा से विकृत हो गया। एहसान करने का यह फल मिलता है! जिसको उसने कीचड़ से निकाला था, वह अब उसी पर प्रहार कर रही है! यह है दुनिया! उसने अंधेरे में थूका और जोर से दरवाजा बंद कर लिया।

❑❑❑

**आज नदी बिलकुल उदास थी।**
**सोई थी अपने पानी में,**
**उसके दर्पण पर–**
**बादल का वस्त्र पड़ा था।**
**मैंने उसको नहीं जगाया,**
**दबे पाँव घर वापस आया।**

**केदारनाथ अग्रवाल**

# हिंदी पत्रकारिता के 200 वर्षः अभिव्यक्ति, संघर्ष और उत्कर्ष की अविरल यात्रा

**शैलेश शुक्ला**

साहित्यकार, पत्रकार एवं संपादक। संप्रतिः उपप्रबंधक (राजभाषा) एनएमडीसी लिमिटेड, हीरा खनन परियोजना, मझगवाँ, पन्ना (मध्यप्रदेश)

हिंदी पत्रकारिता की यात्रा केवल समाचारों की प्रस्तुति नहीं, बल्कि भारतीय जनचेतना, स्वतंत्रता–संघर्ष, लोकतंत्र, सामाजिक उत्थान और भाषायी अस्मिता की जीवंत गाथा है। 1826 ई. में पंडित युगल किशोर शुक्ल द्वारा 'उदन्त मार्तण्ड' के माध्यम से जिस आंदोलन का शुभारंभ हुआ, वह समय के साथ आंदोलनों का पर्याय बन गया। यह यात्रा मात्र छपाई की यात्रा नहीं थी; यह संवेदना, विचार और विरोध की ऐसी धारा थी, जिसने भारत में राष्ट्रीय चेतना को पंख दिए। 'उदन्त मार्तण्ड' के पहले अंक से लेकर आज के डिजिटल पोर्टलों तक हिंदी पत्रकारिता ने समय के अनेक थपेड़े सहे, लेकिन वह न कभी रुकी, न झुकी। प्रस्तुत लेख हिंदी पत्रकारिता की 200 वर्षों की यात्रा को समास शैली में कम शब्दों में अधिक अर्थ देने की कोशिश के साथ ऐतिहासिक, सामाजिक, भाषायी, तकनीकी और सांस्कृतिक संदर्भों में प्रस्तुत करने का प्रयास है।

**प्रारंभिक दौर–'उदन्त मार्तण्ड' से आरंभ, आंदोलन तक अभ्युदय**

30 मई 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित 'उदन्त मार्तण्ड' ने हिंदी पत्रकारिता के युग का शुभारंभ किया। पंडित युगल किशोर शुक्ल ने हिंदीभाषियों की आवाज को पहली बार छपाई की स्याही से जोड़कर जनता तक पहुँचाया। हालांकि इसे सरकारी सहायता नहीं मिली और इसका पाठक वर्ग सीमित था, फिर भी यह हिंदी के आत्मसम्मान की पहली उद्घोषणा थी। 'उदन्त मार्तण्ड' का जीवन काल एक वर्ष से भी कम रहा, लेकिन उसका ऐतिहासिक प्रभाव कालजयी रहा। इस युग में हिंदी पत्रिकाएँ जैसे 'बनारस अख़बार', 'सुधाकर', 'बिहार बंधु', 'हिंदी प्रदीप', 'सार सुधानिधि' आदि पत्रिकाओं ने धार्मिक, सामाजिक और सुधारवादी चेतना का प्रसार किया। पत्र–पत्रिकाएँ केवल समाचार नहीं देती थीं, वे आंदोलन का औजार बनती थीं। बंगाल नवजागरण और आर्य समाज के आंदोलन हिंदी पत्रकारिता के माध्यम से गाँव–गाँव

पहुँचे। यह वह युग था जब संपादक लेखक थे, आंदोलनकारी थे और समाज सुधारक भी थे।

**राष्ट्रीय चेतना का निर्माण–स्वाधीनता संग्राम और हिंदी पत्रकारिता**

1857 की क्रांति के पश्चात अंग्रेजी शासन और कठोर हुआ, लेकिन हिंदी पत्रकारिता और अधिक जुझारू हो गई। 'अखंडानंद', 'भारतमित्र', 'सरस्वती', 'हिंदुस्तान', 'प्रताप', 'कर्मयोगी' और 'अभ्युदय' जैसे पत्रों ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में आत्मा का कार्य किया। गणेश शंकर विद्यार्थी ने 'प्रताप' को जनसंघर्ष का प्रतीक बनाया। बालमुकुंद गुप्त और माधवराव सप्रे जैसे पत्रकारों ने पत्रकारिता को विचारधारा से जोड़ा। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने साहित्य और पत्रकारिता को एक मंच पर लाकर हिंदी को राष्ट्रीय आंदोलन का वाहक बना दिया। 'सरस्वती' के संपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा, विचार और दर्शन का अद्वितीय समन्वय प्रस्तुत किया। स्वराज, स्वदेशी और असहयोग जैसे आंदोलनों की चेतना हिंदी अखबारों के माध्यम से देशभर में फैली। गांधी जी के 'हरिजन' और 'यंग इंडिया' अंग्रेजी में होते हुए भी हिंदी पत्रकारिता को दिशा देने वाले प्रेरक साधन बने। यह युग पत्रकारिता का तपस्वी युग था, जब पत्रकार केवल कलम से नहीं, अपने जीवन से भी लेखनी को विश्वसनीय बनाते थे।

**उत्तर स्वातंत्र्योत्तर काल–नवनिर्माण, बाजारवाद और पुनराविष्कार**

1947 के पश्चात जब भारत आजाद हुआ, तब हिंदी पत्रकारिता को स्वतंत्रता के साथ उत्तरदायित्व भी मिला। स्वतंत्र भारत में 'नवभारत', 'आज', 'राजस्थान पत्रिका', 'हिंदुस्तान', 'नई दुनिया', 'दैनिक जागरण', 'अमर उजाला' जैसे अखबारों ने सूचना और जनजागरण की दोहरी भूमिका निभाई। जनतांत्रिक मूल्य, संवैधानिक चेतना और ग्रामीण भारत की समस्याओं को राष्ट्रीय विमर्श में लाना हिंदी पत्रकारिता की प्राथमिकता बनी। लेकिन धीरे–धीरे पत्रकारिता में व्यवसायीकरण का प्रवेश हुआ। विज्ञापन और सर्कुलेशन की दौड़ में संपादकीय मूल्यों को चुनौती मिली। इसके बावजूद आपातकाल (1975) में हिंदी पत्रकारिता ने अद्वितीय साहस दिखाया। सेंसरशिप के विरुद्ध मौन प्रतीकार्थ बगावत की गई। लघु पत्रिकाओं और वैकल्पिक मीडिया ने लोकतंत्र को जीवित बनाए रखा। रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, प्रभाष जोशी, राजेंद्र माथुर और सुरेंद्र प्रताप सिंह जैसे संपादकों ने पत्रकारीय गरिमा को बनाए रखा। इस युग में पत्रकारिता एक ओर जनतांत्रिक स्तंभ बनी रही, वहीं दूसरी ओर बाजारवादी दबाव से संघर्षरत भी रही।

**डिजिटल युग में हिंदी पत्रकारिता– अवसर और अंतर्द्वंद्व**

21वीं सदी ने पत्रकारिता के माध्यम को बदल डाला। छपाई से डिजिटल की ओर बढ़ती हिंदी पत्रकारिता ने 'वेब पत्रकारिता' के युग में प्रवेश किया। 'भास्कर', 'जागरण', 'हिंदुस्तान', 'आज तक', 'NDTV India' आदि ने वेबसाइट और ऐप के जरिए डिजिटल उपस्थिति दर्ज की। इसके समानांतर 'द वायर हिंदी', 'कविता कोश',

'प्रेस प्रसंग', 'हंस पोर्टल', 'जनचौक', 'न्यूज़लॉन्ड्री हिंदी', 'डाउन टू अर्थ हिंदी' जैसे वैकल्पिक डिजिटल माध्यमों ने गंभीर पत्रकारिता को एक नयी पहचान दी। सोशल मीडिया पर यूट्यूब चैनल्स, ब्लॉग, पॉडकास्ट और फेसबुक लाइव के माध्यम से लाखों लोग न केवल खबरें बना रहे हैं, बल्कि जनमत को भी प्रभावित कर रहे हैं। इस दौर में फेक न्यूज़, ट्रोलिंग, पेड न्यूज़ और नैतिक संकट ने पत्रकारिता की विश्वसनीयता को प्रश्नांकित किया है। फिर भी, डिजिटल हिंदी पत्रकारिता ने क्षेत्रीय मुद्दों को राष्ट्रीय मंच दिया है। पत्रकारिता अब बहुपरतीय हो गई है. जहाँ तकनीक, भावना और विचार एक साथ चलते हैं।

**भाषायी संघर्ष और राजभाषा का प्रश्न–हिंदी पत्रकारिता की संवैधानिक भूमिका**

भारत में हिंदी को 1950 के संविधान द्वारा राजभाषा का दर्जा दिया गया किंतु उसका संपूर्ण कार्यान्वयन आज भी संघर्षरत है। इस संघर्ष का प्रमुख मंच हिंदी पत्रकारिता ही बनी। 'राजभाषा आंदोलन', 'तीन भाषा सूत्र', 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' जैसे अभियान मीडिया के सहारे ही आमजन तक पहुँचे। पत्रकारिता का यह योगदान किसी अधिनियम से कम नहीं। 1965 में जब दक्षिण भारत में हिंदी विरोधी आंदोलन हुआ तब हिंदी पत्रकारिता ने संयमित एवं तर्कपूर्ण लेखों के माध्यम से राष्ट्रभाषा की पक्षधरता में जनमत तैयार किया।

हिंदी अखबारों और पत्रिकाओं ने यह भूमिका दो स्तरों पर निभाई एक ओर हिंदी को प्रशासनिक और शैक्षिक माध्यम के रूप में स्थापित करने का प्रयास, दूसरी ओर जनसंचार के आधुनिक माध्यमों में हिंदी की तकनीकी उपस्थिति की माँग। इस दौर में 'राष्ट्रभाषा', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', 'कादंबिनी', 'नंदन', 'धर्मयुग', 'सारिका' जैसी लोकप्रिय पत्रिकाओं ने हिंदी भाषा और पत्रकारिता को सांस्कृतिक गर्व का विषय बनाया। राजभाषा विभाग की समितियों, संसदीय प्रस्तावों, भाषा आयोग की रिपोर्टों को भी हिंदी पत्रकारिता ने पाठकों तक पहुँचाकर जनजागरण का काम किया। हिंदी भाषा के तकनीकी सशक्तीकरण, टाइपिंग सॉफ्टवेयर, यूनिकोड, हिंदी ब्राउज़र और की–बोर्ड लेआउट से संबंधित रिपोर्टों को बार–बार प्रकाशित करके हिंदी पत्रकारिता ने डिजिटल युग में हिंदी के सशक्तीकरण में भूमिका निभाई।

**लोकतंत्र और हिंदी पत्रकारिता–चौथे स्तंभ की सामाजिक भूमिका**

भारतीय लोकतंत्र को मजबूत बनाने में हिंदी पत्रकारिता की भूमिका निर्णायक रही है। चुनावी जनमत निर्माण, सामाजिक मुद्दों की अनदेखी के विरोध, भ्रष्टाचार के विरुद्ध जनजागरण, शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए नीति निर्माण की माँग आदि सभी क्षेत्रों में हिंदी पत्रकारिता एक सजग प्रहरी के रूप में खड़ी रही। 1975 के आपातकाल में जब सेंसरशिप के तहत समाचारों को रोक दिया गया तब भी कुछ हिंदी अखबारों ने सफेद खाली कॉलम छापकर विरोध दर्ज कराया, यह पत्रकारिता का मौन, लेकिन मुखर प्रतिरोध था।

जनता पार्टी शासन, मंडल–कमंडल राजनीति, राम जन्मभूमि आंदोलन, गुजरात दंगे, अन्ना हजारे आंदोलन, निर्भया कांड, नोटबंदी, किसान आंदोलन, कोरोना महामारी, इन सब घटनाओं में हिंदी मीडिया ने जनता की पीड़ा, आकांक्षा और सवालों को मंच दिया। यह भी सत्य है कि कई बार हिंदी पत्रकारिता पर एकतरफा रिपोर्टिंग, जातिवाद, भाषायी पूर्वाग्रह और TRP की भूख के आरोप भी लगे, किंतु संपूर्ण परिदृश्य में हिंदी पत्रकारिता का लोकतंत्र के प्रति समर्पण असंदिग्ध रहा। आज भी ग्रामीण भारत में लोकतंत्र की वास्तविक जानकारी और उसका मूल्य हिंदी अखबारों और न्यूज़ चैनलों के माध्यम से ही आम नागरिक तक पहुँचता है। जिला स्तर के संवाददाता और ब्लॉक स्तरीय पत्रकार लोकतंत्र के असली सैनिक हैं जिनके पास संसाधन भले सीमित हों, मगर प्रतिबद्धता असीमित है।

### हिंदी पत्रकारिता का वैश्विक विस्तार–प्रवासी हिंदी और नवसंप्रेषण

21वीं सदी में हिंदी केवल भारत तक सीमित नहीं रही। मॉरिशस, सूरीनाम, फिजी, त्रिनिदाद, यूएई, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में बसे प्रवासी भारतीयों ने हिंदी पत्रकारिता को अंतरराष्ट्रीय स्वरूप दिया। 'गिरमिटिया भारतवंशी' समुदाय के लिए हिंदी भाषा अस्मिता की पहचान बनी और पत्रकारिता उनके जीवन का दर्पण। आज 'सृजन ऑस्ट्रेलिया', 'भारत दर्शन (न्यूज़ीलैंड)', 'वतन से दूर (दुबई)', 'गवर्नेंस नाउ हिंदी', 'सृजन मॉरिशस', 'सृजन अमेरिका', 'सृजन कतर' जैसी पत्रिकाएँ डिजिटल माध्यम से विश्व के हिंदी पाठकों से जुड़ चुकी हैं। अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रकारिता अब केवल संस्कृति और साहित्य की वाहक नहीं बल्कि वैश्विक राजनीतिक तथा आर्थिक और सामाजिक विमर्श की सहभागी भी बन चुकी है। यूट्यूब पर प्रवासी हिंदी चैनल, वेब पोर्टल, हिंदी रेडियो पॉडकास्ट और ब्लॉग्स हिंदी की पहुँच को भूमंडलीय बना रहे हैं। इस वैश्विक हिंदी पत्रकारिता में तकनीक, भाव, संस्कृति और पत्रकारिता का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

### नारी विमर्श और हिंदी पत्रकारिता–आवाज की विविधता

हिंदी पत्रकारिता ने नारी प्रश्नों को भी विस्तृत स्थान दिया है। 'गृहलक्ष्मी', 'वामा', 'नई दुनिया' के स्त्री केंद्रित कॉलमों से लेकर आज के 'गाँव कनेक्शन', 'हंस', 'जनचौक' और 'सृजन संवाद' जैसे डिजिटल मंचों ने महिला अधिकारों, लैंगिक समानता, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, शिक्षा, स्वास्थ्य और प्रतिनिधित्व के मुद्दों को उभारा है। प्रभा दत्त, मृणाल पांडे, मधु पूर्णिमा 'किश्वर', रचना खैरा, रमा शर्मा जैसी महिला पत्रकारों ने हिंदी पत्रकारिता को संवेदनशीलता और धार दी। सामाजिक मुद्दों से लेकर युद्ध संवाद तक में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी पत्रकारिता को समावेशी बना रही है। नारी विमर्श अब केवल स्त्रियों की पीड़ा तक सीमित नहीं, बल्कि महिला सशक्तीकरण, निर्णय प्रक्रिया और नेतृत्व में सहभागिता तक विस्तृत हो चुका है और इसका श्रेय हिंदी पत्रकारिता को भी जाता है।

**नवीन प्रवृत्तियाँ और तकनीकी संक्रमण–हिंदी पत्रकारिता का पुनराविष्कार**

हिंदी पत्रकारिता अब सूचना–आधारित समाज में कदम रख चुकी है जहाँ पाठक केवल समाचार नहीं चाहता, बल्कि विश्लेषण, संदर्भ, आंकड़े और सत्यापन भी चाहता है। इस संदर्भ में पत्रकारिता को अपनी भूमिका पुनःपरिभाषित करनी पड़ी है। डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर हिंदी पत्रकारिता की उपस्थिति अब बहुआयामी हो चुकी है। समाचार पोर्टल, वेब टीवी, पॉडकास्ट, ब्लॉग, सोशल मीडिया रिपोर्टिंग और इन्फोग्राफिक्स इसका हिस्सा बन चुके हैं। आज 'लाइव हिंदुस्तान', 'जनसत्ता', 'दैनिक भास्कर डिजिटल', 'पत्रिका ऑनलाइन', 'न्यूज़ 18 हिंदी', 'आज तक डिजिटल', 'लोकमत हिंदी', 'जनचौक', 'द वायर हिंदी' जैसे वेब पोर्टल्स ने हिंदी पत्रकारिता को न्यूज़रूम से निकालकर मोबाइल स्क्रीन तक पहुँचा दिया है। रील्स (Reel), स्टोरीज़ (Stories) ट्वीटर थ्रेड्स (Twitter threads), शॉट्र्स (Short) और लाइव सेशन्स ने रिपोर्टिंग के तरीकों को पूरी तरह बदल दिया है।

डिजिटल परिवर्तन ने कुछ गंभीर प्रश्न भी खड़े किए हैं, जैसे फेक न्यूज़ (Fake News), डीपफेक (Deepfake), पेड न्यूज़, प्रायोजित सामग्री (Sponsored Content), एल्गोरिद्मिक पक्षपात (Algorithmic Bias) और टीआरपी आधारित विषय–चयन। परंतु इन चुनौतियों के बीच हिंदी पत्रकारिता ने डिजिटल साक्षरता, डेटा जर्नलिज्म और फैक्ट चेकिंग की ओर बढ़ते कदमों से उम्मीद की नयी राहें खोली हैं। यह युग पत्रकारिता का समवेत काल है जहाँ प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक, वेब और सोशल मीडिया एक–दूसरे को समृद्ध करते हैं। अब पत्रकार संवाददाता भर नहीं, कंटेंट क्रिएटर, डेटा एनालिस्ट, वीडियो एडीटर, सोशल मीडिया मैनेजर और डिजिटल साक्षरक भी बन चुका है।

**पत्रकारिता की नैतिकता और उत्तरदायित्व–समर्पण बनाम सेंसेशन**

पिछले दो दशकों में पत्रकारिता की सबसे बड़ी चुनौती उसकी नैतिकता (Ethics) और जवाबदेही (Accountability) को लेकर बनी रही है। हिंदी पत्रकारिता, जो पहले जनपक्षधरता और विचारधारा से संचालित थी, अब कई बार सनसनी, भावनात्मक उत्तेजना और झूठी राष्ट्रभक्ति की ओर झुकती दिखाई दी। कुछ चैनलों और पोर्टलों ने TRP की दौड़ में पत्रकारिता को तमाशा बना दिया, बहस के नाम पर शोर, खबर के नाम पर नफरत और विश्लेषण के नाम पर एजेंडा। इस परिप्रेक्ष्य में पत्रकारिता की आचार संहिता, प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया, न्यूज ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (NBA) और डिजिटल न्यूज एथिक्स कोड जैसे उपायों की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। हिंदी पत्रकारिता को न केवल लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करनी है, बल्कि अपने भीतर भी पारदर्शिता, विविधता, समावेशिता और भाषा की गरिमा को बनाए रखना है। पत्रकारों की सुरक्षा, प्रेस की स्वतंत्रता, जमीनी संवाददाताओं को आर्थिक और विधिक संरक्षण जैसे प्रश्न अब हिंदी पत्रकारिता की आत्मा के लिए अनिवार्य बन चुके हैं अन्यथा,

पत्रकारिता जनसेवा से व्यवसाय और अंततः केवल प्रचार का औजार बनकर रह जाएगी।

**शिक्षा, शोध और प्रशिक्षण—हिंदी पत्रकारिता का अकादमिक आधार**

आज की हिंदी पत्रकारिता को व्यावसायिक प्रशिक्षण, शोध और नवाचार की आवश्यकता है। देश के अनेक विश्वविद्यालयों जैसे– माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय (भोपाल), काशी हिंदू विश्वविद्यालय (वाराणसी), दिल्ली विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया इस्लामिया (दिल्ली), कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, पंजाब विश्वविद्यालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा), लखनऊ विश्वविद्यालय आदि में पत्रकारिता की पढ़ाई हो रही है। परंतु प्रशिक्षण और मीडिया उद्योग के बीच समन्वय की कमी, शोध में नवाचार का अभाव और हिंदी मीडिया की वैश्विक पहुँच को लेकर रणनीतिक दृष्टि का अभाव एक बड़ी चुनौती है। हिंदी पत्रकारिता को अब केवल समाचार लेखन तक सीमित नहीं रहना चाहिए। उसे सांस्कृतिक अनुवाद, इंटरनेशनल रिपोर्टिंग, डेटा स्टोरीज़, विज्ञान पत्रकारिता, पर्यावरण पत्रकारिता, आपदा रिपोर्टिंग और बाल पत्रकारिता जैसे नये क्षेत्रों में कदम बढ़ाने चाहिए। अकादमिक शोध में अब मीडिया साहित्य, मीडिया समाजशास्त्र, मीडिया मनोविज्ञान और डिजिटल मीडिया की तुलनात्मक समीक्षा जैसे उपविषयों को अपनाना होगा जिससे पत्रकारिता का अध्ययन केवल इतिहास नहीं, समकालीन व्यवहार का प्रतिबिंब बन सके।

हिंदी पत्रकारिता की यह द्विशताब्दी केवल एक कालक्रम नहीं बल्कि राष्ट्र की स्मृति, समाज की संवेदना और जनसंघर्ष की चेतना का दस्तावेज है। इस यात्रा में 'उदन्त मार्तण्ड' की छोटी सी कोशिश से लेकर आज के 24 × 7 डिजिटल प्लेटफॉर्म तक की यात्रा में असंख्य कहानियाँ, बलिदान, प्रयोग, विवाद और उपलब्धियाँ छिपी हुई हैं। हिंदी पत्रकारिता ने भाषा को केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं बल्कि संघर्ष, विचार और अस्मिता की आवाज बनाया। चाहे आज़ादी का आंदोलन हो, संविधान निर्माण की प्रक्रिया हो, नवोन्मेष की चाह हो या लोकतंत्र की रक्षा। हर चरण में हिंदी पत्रकारिता की उपस्थिति मौन गवाह की नहीं, सक्रिय सहभागी की रही है। आज जब हिंदी पत्रकारिता 200 वर्षों की इस यात्रा के मील के पत्थर पर खड़ी है तब यह आत्मनिरीक्षण और नवचिंतन का अवसर है। हमें पूछना चाहिए कि क्या हम अब भी उस मूल उद्देश्य के साथ खड़े हैं जहाँ पत्रकारिता लोकतंत्र की आत्मा कहलाती थी? या फिर हम सूचना के भीषण शोर में सत्य की आवाज़ खो बैठे हैं? आवश्यक है कि हम इस विरासत को केवल स्मरण तक सीमित न रखें, बल्कि उसे प्रेरणा बनाकर नव पत्रकारिता की ऐसी संस्कृति रचें जिसमें संवेदनशीलता हो, सत्य के प्रति प्रतिबद्धता हो और जनपक्षधरता सर्वोपरि हो। यही द्विशताब्दी का सच्चा सम्मान होगा, पत्रकारिता की आत्मा को पुनर्जीवित करने का संकल्प।

**संदर्भ सूची**


1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रभात प्रकाशन, (2021) आईएसबीएन : 9789384344412
2. हिंदी साहित्य का इतिहास, संपादक : डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, पचासवाँ संस्करण (2016) मयूर पेपर बैक्स, आईएसबीएन : 81–7198–036–8
3. हिंदी का गद्य–साहित्य, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 9वाँ संस्करण, आईएसबीएन : 978–93–5146–039–8
4. हिंदी पत्रकारिता दिवस : जानिए कैसे शुरू हुई थी हिंदी पत्रकारिता, दूरदर्शन न्यूज, https://ddnews.gov.in/know-how-hindi-journalism-started/
5. पत्रकारिता का इतिहास, विकीपीडिया (हिंदी), https://hi.wikipedia.org/wiki/ पत्रकारिता का इतिहास
6. हिंदी पत्रकारिता के दो सौ वर्षों की यात्रा, प्रभात खबर, https://www.prabhatkhabar.com/opinion/two-hundred-years-of-hindi-journalism
7. हिंदी पत्रकारिता, विकीपीडिया (हिंदी), https://hi.wikipedia.org/wiki/ हिंदी पत्रकारिता
8. हिंदी पत्रकारिता के 200 साल पर विशेष : मूल्यबोध और राष्ट्रहित बने मीडिया का आधार, प्रो. संजय द्विवेदी, कोलकाता सारांश न्यूज, https://kolkatasaranshnews.com/archives/66846
9. हिंदी पत्रकारिता के 200 साल : संवाद–संचार की दुनिया में बज रहा हिंदी का डंका, प्रो. संजय द्विवेदी, https://www.sabseaagenews.com/200-years-of-hindi-journalism-hindi-is-ruling-world-of-communication-12443-2064105
10. आजादी की आवाज से लेकर डिजिटल युग तक कैसा रहा है हिंदी पत्रकारिता का सफर?, चेतन मंच, https://chetnamanch.com/national/how-has-been-the-journey-of-hindi-journalism-from-the-voice-of-freedom-to-the-digital-age-196629/
11. हिंदी के पहले अखबार उदन्त मार्तण्ड के 200 साल पूरे... प्रिंट से डिजिटल तक कितनी बदली पत्रकारिता, राज खन्ना, https://www.tv9hindi.com/knowledge/hindi-journalism-day-2025-udant-martand-200-years-of-first-hindi- newspaper-how-much-changed-news-world-from-print-to-digial- 3316302.html#google_vignette

12. हिंदी पत्रकारिता के 199 साल : 19वीं सदी से लेकर डिजिटल युग तक, जयसिंह रावत, https://www.amarujala.com/columns/blog/1999-years-of-hindi-journalism-from-the-19th-century-to-the-digital-age-2025-05-30
13. हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के 150 वर्ष, कृपा शंकर चौबे, हिंदी समय वेब पत्रिका, https://www.hindisamay.com/content/10151/1/ कृपाशंकर–चौबे–आलोचना–हिंदी– की– साहित्यिक– पत्रकारिता– के– 150–वर्ष.cspx
14. Hindi Journalism Day : 198 साल पुराना है हिंदी पत्रकारिता दिवस का इतिहास, आप भी जानें, सौरभ पोद्दार, https://www.prabhatkhabar.com/life-and-style/hindi-journalism-day-date-history-significance-sbh
15. Origin And Development of Hindi Journalism, इंजीनियर प्रभात किशोर, https://tripuratimes.com/ttimesarticle/origin-and-development-of-hindi-journalism-er-prabhat-kishore-104.html
16. हिंदी पत्रकारिता दिवस पत्रकारों के आत्ममंथन का दिन, सुशील शर्मा, https://www.rashtriyajanmorcha.in/hindi-journalism-day-day-of-introspection-of-journalists-sushil-sharma/
17. स्वतंत्रता संग्राम से लेकर विश्व शक्ति बनने तक के सफर में हिंदी पत्रकारिता का है महत्त्वपूर्ण योगदान, डॉ. पवन सिंह मलिक, https://www.prabhasakshi.com/column/hindi-journalism-has-an-important-contribution-in-indian-development
18. नवजागरण काल और स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता के योगदान पर एक अध्ययन, डॉ. दिलावर सिंह, इंडियन जर्नल ऑफ रिसर्च, खंड–12, अंक–1, जनवरी 2023, ISSN : 2250–1991
19. भारत में पत्रकारिता का आरंभ, दीप्ति, डॉ. मधु बाला शर्मा, कॉसमॉस,खंड–8, अंक–2, जुलाई–दिसंबर 2019, ISSN : 2319–8966

❑❑❑

# मानवी प्रगति के आयाम और साहित्य

**प्रत्यूष वत्सला**
प्राचार्य, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

मानव का विकास मूलतः उसकी चेतना का विकास है। जन्म ग्रहण करते ही उसे प्रकृति का साहचर्य प्राप्त हुआ और उसी के माध्यम से मानवी चेतना का उद्बोधन संपन्न होने लगा। इस मायाविनी छलना ने मानव को आकर्षित भी किया और आशंकित भी। बहिर्जगत् के रमणीय रूपों ने उसे सौंदर्य का आसव पिलाया और उसकी अननुभूत अभिनव घटनाओं ने मानव के अंतर्मानस में ईषत् उद्वेगमूलक विस्मय का जनन किया। रूप और घटना, दोनों ही द्विविध प्रतिक्रियाएँ घटित हुई हैं। प्रथम का परिणाम हुआ जीवन के प्रति एक प्रबल ममता, एक गाढ़ी आसक्ति और दूसरे का परिणाम हुआ एक गहरी चित्तवृत्ति। एक ने मनुष्य को रोमांटिक बनाया, दूसरे ने चिंतक। एक ने जगत् की माया लीला के संपूर्ण उपभोग के लिए, जीवन की रंगभूमि से सौंदर्य एवं माधुर्य की जो–जो कनक–कटोरियाँ भरी जा सकती थीं, उनके संचयन और आस्वादन के लिए उसे उत्प्रेरित किया। दूसरे ने संयम, चिंतन एवं विवेचन के लिए अंतः प्रेरणा प्रदान की। एक ने उसे बहिर्मुख बना दिया, दूसरे ने अंतर्मुख। एक ने उसे स्थूलदर्शी बनाया, दूसरे ने सूक्ष्मचेता। एक ने उसकी क्रियाशीलता को उद्बुद्ध किया, दूसरे ने उसकी मननशीलता को उद्दीप्त। एक ने उसे जीवन–संभोग की बलीयसी लालसा से अनुप्राणित कर अपने परिवेश को विजित एवं स्वायत्त करने का एक नित्य नवीन संकल्प प्रदान किया, दूसरे ने जीवन के आकर्षण–विकर्षण गर्भित चित्रपट का भेदन कर उसके अंतर्निहित सत्य के अन्वेषण के लिए उसे अनुप्रेरित किया। लौकिक परितृप्ति और मानसिक समाधान, जीवन–गंगा के इन दो निकटवर्ती कूलों के बीच मानव–चेतना का पोत अनादिकाल से अद्यावधि अग्रसर होता जा रहा है।

उपर्युक्त दो प्रेरक शक्तियों में एक है सभ्यता और दूसरी है संस्कृति। इस बात का प्रचुर संकेत कर दिया गया है कि मानवीय प्रगति का बहिरंग पार्श्व सभ्यता है और अंतरंग पार्श्व है संस्कृति। यद्यपि इन दोनों की सीमाएँ बिहारी की नव–प्रस्फुटित यौवना के 'दिपनि ताफता रंग' के समान परस्पर पूर्णतया विभक्त नहीं की जा सकतीं,

तथापि इतना नितांत स्पष्ट है कि जीवन के वैभवनिष्ठ क्षेत्र में सभ्यता प्रतिफलित होती है और वैचारिक अंतर्भूमि में संस्कृति का निर्मल आलोक उच्छलित होता है। मैत्रेयी ने कहा था– 'येनाहं नामृतास्यात् किमहं तेन कुर्याम्?' (जिस ज्ञान से मुझे अमृत न प्राप्त हो, उसे लेकर मैं क्या करूँगी?) वास्तव में, संस्कृति का मौलिक महत्त्व यही है कि उससे जीवनदायी 'अमृत' की उपलब्धि होती है जिसे एक बार आकंठ पान कर लेने पर कोई जाति चिर–काल के लिए अमर बन जाती है। यहाँ अत्यंत गौरव की वस्तु है भारतीय साहित्य–मनीषा की सत्य–साधना, जीवन के 'रूपों' के इंद्रधनुषी चित्रपट का भेदन कर मनुष्य की 'मनुष्यता' का उन्मीलन करना, उसके अंतर्जगत् को परिचालित करने वाली मूल वृत्तियों का अनुसंधान और अनावरण कर उसे एक सामान्य भावभूमि पर प्रतिष्ठित करना जहाँ से वह मानव–सुलभ क्षमताओं एवं दुर्बलताओं का सोमपान कर सके। भारतीय कवि ने 'रूप' की अवहेलना नहीं की, वस्तुतः कहना यह चाहिए कि उसने सदा–सर्वदा प्रारंभ से ही रूप–माधुरी की मादक मंदाकिनी में डुबकी लगाई है। किंतु जहाँ वह अधिक प्राणवान, अधिक मर्मस्पर्शी, अधिक स्फूर्तिदायक हुआ है, वहाँ उसने 'घटना' को प्रश्रय अवश्य दिया है। घटना के घटाटोप में सौंदर्य की जो उपलब्धि हो सकती है, उसका बड़े मनोनिवेश के साथ उसने संकलन एवं निदर्शन किया है। यद्यपि हाल की सतसई, आर्यासप्तशती, अमरू–शतक, बिहारी सतसई–प्रभृति रचनाओं में सौंदर्य–लिप्सा और रूप चर्वणा का प्रशंसनीय अभिव्यंजन हुआ है, तथापि सनातन महत्त्व के अधिकारी रामायण, महाभारत आदि काव्य–ग्रंथ और अभिज्ञानशाकुंतलम–प्रभृति नाट्य–कृतियाँ ही हैं।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि मानवी विकास के जो दो स्वरूप दृष्टिगोचर होते हैं–सभ्यता और संस्कृति; दोनों का ही वाहक साहित्य है। वे साहित्य में प्रतिफलित होते हैं और कभी–कभी शक्तिशालिनी प्रतिभा के पारस से संयुक्त होकर स्वयं गतिशील होते हैं। 'कभी–कभी' इसलिए कहा गया कि शक्तिगर्भित, महान उद्देश्य की प्रेरणा से साहित्य–सृष्टि करने वाले दूर–दृष्टि संपन्न कलाकारों की संख्या परिसीमित होती है।

इस वक्तव्य से संभवतः इस बात का संकेत मिलता है कि संस्कृति का तत्त्व साहित्य में मिश्रित होकर उसे अपेक्षाकृत सनातन महत्त्व प्रदान करता है। संस्कृति के मूल में जो एक संयमशील, गंभीर अंतर्वृत्ति विद्यमान रहती है, वही काव्य में प्रविष्ट होकर उसकी प्राणवत्ता की सृष्टि करती है। उच्चकोटि के काव्य में जिस जीवन–दृष्टि का हम संधान करते हैं, वही रचनाकार की संस्कृति की द्योतक होती है जिसे वह दो स्रोतों से उपलब्ध करता है– एक, अपनी जातीय परंपरा की संकुल चिंता–राशि से और दूसरे, अपने स्वतंत्र तथा 'संवेदनामूलक' चिंतन–मनन से। संवेदन–मूलक इसलिए कहा जा रहा है कि कवि या साहित्यकार विशुद्ध चिंतक अथवा दार्शनिक बन सकता है। 'अनुभूति' उसका प्रकृत एवं प्रधान संबल है और 'विचार' उसके निकट तात्त्विक

दृष्टि से द्वितीय कोटि का महत्त्व रखता है। कवि अपनी संवेदनाओं के माध्यम से जीवन और जगत् का अनुवचन (Interpretation) करता है। जो तथ्य उसके संवेदनात्मक अस्तित्व को हिला देते हैं, जिनसे उसकी अंतरात्मा में एक विद्युत–दीप्ति का उद्रेक हो उठता है, वास्तव में वे तथ्य ही कुछ क्षणों के पश्चात् उसकी चिंतावृत्ति को भी उद्‌बुद्ध करते हैं। इस प्रकार जब जीवन और समाज के सत्यों की प्रतिक्रिया–स्वरूप उत्थित भावों को कलाकार के चिंतन का सुवर्ण संयोग प्राप्त हो जाता है, तब कला में कोमलता और सुकुमारता के साथ शक्ति का भी उद्रेचन हो जाता है तथा कवि की जीवन–संबंधिनी दृष्टि सुस्पष्टतया निखर आती है। प्रसिद्ध आलोचक H. W. Garrod ने कहा है–' जहाँ तक संसार सुंदर और स्पृहणीय है, वहाँ तक कवि उसके विषय में जो 'रिपोर्ट', जो व्याख्या प्रस्तुत करता है उसी की सच्चाई तथा ईमानदारी पर संसार निर्भर करता है।' ("Upon the veracity of his report of the world, the world, so far as it is beautiful and fit to live in, depends; and the guarantee of his veracity, to him and to us, is himself-", H. W. Garrod: "The Profession of Poetry") जीवन और जगत् से संबद्ध यही रागमूलक व्याख्या कवि की अपनी जीवन–दृष्टिभंगी है जिसे उसने कुछ परंपरा से, कुछ स्वतंत्र चिंतन से, उसकी संपूर्णता में उपलब्ध किया है।

अब यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि संस्कृति वाहक साहित्य सभ्यतावाहक साहित्य से निश्चित ही श्रेष्ठतर होता है। सभ्यता, जैसा कि ऊपर कहा गया है, बहिरंग 'सौंदर्य' का अन्वेषण एवं स्थापन करती है। सभ्यता की तनिक और मीमांसा कर लेना वक्तव्य–वस्तु को स्पष्ट करने में सहायक होगा। पहले कहा जा चुका है कि सभ्यता 'रूप' की उपासना करती है। यह तो नहीं कह सकते कि इस रूप साधना में मानव–हृदय का मधु मिश्रित नहीं होता; किंतु जो मूल महत्त्व की बात है, वह यह है कि इस रूप अर्चना में 'प्रदर्शन' की सूक्ष्म अंतर्वृत्ति कार्यशील रहती है। दूसरी प्रेरक भावना होती है प्रयोजन–संपादन की। अतएव 'प्रदर्शन' और 'प्रयोजन', क्षितिज के दोनों समानांतर बिंदुओं तथा उनकी मध्यवर्ती भूमिका पर सभ्यता की सृष्टि और विकास में अपेक्षाकृत अधिक जागरूक रहता है। वर्तमान जीवन को सभ्यता की दीर्घकालीन परंपरा से सुख–सौविध्य के जो उपादान उपलब्ध हुए हैं, जिस अभूतपूर्व ऐश्वर्यमूलक उपकरण राशि से यह आज दीप्ति–दीप्त हो उठा है, उसकी उत्पादिका मनोवृत्ति का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि सभ्यता का पथ–प्रदर्शक तत्त्व मूलतः प्रयोजनीयता ही रहा है। आवेष्टन को स्वायत्त करके, उसका पूर्णातिपूर्ण उपभोग करने की ललक सभ्यता की मौलिक प्रेरणा रही है। इस केंद्रीय मनोवृत्त की साधना में मनुष्य ने सौंदर्य का संधान किया है, उसकी सृष्टि भी की है। प्रकृति ने प्रांगण में उपलब्ध सुंदरता का कभी हरण किया है, कभी उसका अपने मनोनुकूल संशोधन या परिवर्द्धन किया है। कभी उसके वैभव को सर्वथा विनष्ट कर अपनी निजी सुंदरता का सर्जन किया है। जीवन के क्षेत्र में भी जो सुंदरता वह पा सका है, उसका

वहीं स्वच्छंदतापूर्वक उसने उपभोग किया है और इस सौंदर्योपभोग में मनुष्य सदैव बाह्यार्थनिरूपिणी भौतिक दृष्टिभंगी से संचालित तथा शासित हुआ है। उसे यदि कहीं अंतर्वृत्ति–परायणता का दर्शन हो जाए तो समझना चाहिए कि वह संस्कृति का प्रसाद है, 'सभ्यता' का नहीं; यद्यपि सामान्य बोलचाल में हम बहुधा संस्कृति और सभ्यता में भेद नहीं करते।

काव्य पर इन दोनों शक्तियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है; किंतु उनसे प्रेरणा ग्रहण करने की क्षमता सभी कलाकारों में समान भाव से विद्यमान नहीं रहती। अधिकतर देखा यह जाता है कि सभ्यता का आकर्षण संस्कृति से अधिक शक्तिमान होता है। कारण स्पष्ट है– प्रथम को ग्रहण और अभिव्यक्त करने की क्षमता में कोई प्रथम श्रेणी की मार्मिक अंतर्दृष्टि अपेक्षित नहीं होती जो कलाकार को अपने मानस तथा आत्मा का मंथन करने के लिए बाध्य करे। उसे केवल चाहिए एक सहज प्रसन्न ग्राहिका शक्ति और शिष्ट, अलंकृत वाणी में अपनी वक्तव्य–वस्तु को अभिव्यंजित कर देने का कौशल। लेकिन दूसरी अर्थात् संस्कृति को ग्रहण करना और सही–सही उसकी 'स्पिरिट' को पकड़कर उसे मूर्त रूप प्रदान करना, दोनों ही कष्टसाध्य व्यापार हैं। संस्कृति की व्याख्या करने वाला कलाकार बाह्य यथार्थ का परीक्षण अपनी उद्‌बुद्ध चेतना के माध्यम से करता है। साथ ही, जब वह लेखनी उठाता है तब एक बार उसके गहन दायित्व के संस्मरण का समग्र मानसिक एवं आध्यात्मिक व्यक्तित्व हिल उठता है। उसे ऐसा लगता है, जैसे उसको किसी 'वायवी शून्य' को रूप एवं स्थिति नहीं प्रदान करनी है' (Gives to airy nothing, a local, habitation a name', शेक्सपीयर) और न तो काँटे सी कसक उत्पन्न करने वाली किसी 'कँटीली भौंह' के 'मैजिक' का उन्मीलन करना है, अपितु जैसे वह उस जीवन–जाह्नवी के पुनीत सलिल–प्रवाह के कूल पर खड़ा है जो अनादिकाल से प्रवाहित हो रही है और जिसको प्रवहमान बनाए रखने के लिए कोटि–कोटि प्राणमयी आत्माओं ने अपने जीवन रस का सहर्ष दान कर दिया है। भावों, विचारों, लालसाओं, प्रेरणाओं की जो समृद्ध जटिल विरासत उसे पूर्व–पीढ़ियों से प्राप्त हुई है, उसे वह और भी परिष्कृत तथा समृद्ध बनाकर और यदि ऐसा वह न कर सके तो उसे कम से कम यथातथ्य रूप में, अविकृत भाव से आगे आने वाली पीढ़ियों के उपभोग हेतु अग्रसर कर देने की अभिलाषा से तो अनुप्राणित होना ही पड़ेगा। भारतीय चिंता ने त्रिविध ऋणों में 'ऋषिऋण' का विधान कर संस्कृति प्रवाह की अखंडता की ही संयोजना की है।

विश्व की लगभग सभी जातियों के काव्य–विलास के इतिहास पर दृष्टि–निक्षेप करने से हमारा दृष्टिकोण अधिक स्पष्ट हो जाएगा। हिंदी साहित्य के पूर्व मध्यकाल में जो साहित्य सृष्ट हुआ, उसके मूल में सूर, तुलसी सदृश महीयान आत्माओं की प्राण–गर्भित साध स्पंदनशील थी। तत्सामयिक भौतिक आवेष्टनों से प्रभावित होने पर भी उनकी काव्य वीणा के संगीत ने लोकजीवन को रस और शक्ति से परिप्लावित कर

दिया। उन साधक कवियों की अंतर्दृष्टि ने लोकमानस को चिर–परिचित सांस्कृतिक भूमि पर प्रतिष्ठित कर तत्सामयिक भौतिक यथार्थ की उद्वेगजनक परिधि से बाहर कर दिया और इस प्रकार तात्क्षणिक लौकिक सत्य को आमूलचूल परिवर्तित कर दिया।

संस्कृति के प्रभाव का प्रतिफलन कलाकार की कृति में, उसकी एक निश्चित, सुचिंतित जीवन–दृष्टि के रूप में होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी जाति–विशेष की संस्कृति, जीवन और जगत् के संबंध में, भौतिक तथा ऐतिहासिक परिस्थितियों के फलस्वरूप, उसका एक चिर–अभ्यस्त, दीर्घ कालव्यापी सुस्थिर दृष्टिकोण ही है। सभ्यता का आधार मुख्यतया भौतिक और स्थूल होता है, संस्कृति की आधारभूमि पूर्णतया मानसिक तथा आध्यात्मिक होती है। इस कारण जीवनमूल्यों का जितना गहनगंभीर विवेचन संस्कृति में उपलब्ध होता है, उतना सभ्यता में नहीं। सुतरां, किसी जाति की अधोगति का मूल कारण उसकी परंपरा–प्राप्त संस्कृति–धारा, उसके भावों, विचारों, प्रेरणाओं की जीवनमयी स्रोतस्विनी का खंडित हो जाना, सूख जाना है। सभ्यता के 'स्केल' में यथेष्ट सम्मानित आसन पर अधिष्ठित होने पर भी किसी जाति की सांस्कृतिक प्राण–धारा सर्वथा विलुप्त हो सकती है। पराधीन जातियों के इतिहास में ऐसी स्थितियाँ सहज ही अनुसंधेय और अनुभूयमान हो सकती हैं। जो साहित्य बहिरंग सभ्यता से प्रेरणा और उपादान संकलन करता है, उसमें रूप का सौष्ठव तो प्रभूत परिमाण में उपलब्ध होता है, लेकिन उसमें कोई शक्तिशालिनी आत्मा नहीं रहती। कवि या साहित्यकार की दृष्टि जीवन की बहिरंग, स्थूल माया–माधुरी पर ही उसी प्रकार अटक जाती है जिस प्रकार मधुलोलुप भ्रमर गुलाब की अपत, कँटीली डार पर ही उलझ जाता है और अपनी सौरभसंचयिनी अन्नवृत्ति को थोड़ी देर के लिए विस्मृत कर जाता है। किंतु, भौरे को कदाचित वसंतश्री के पुनरागमन की मनोमोहक आशा बँधी रहती है। कलाकारों के जीवन में अधिकतर सभ्यतामूलक रमणीयता के 'मैजिक' में एक बार फँस जाने पर, संभवतः उनका संपूर्ण रागात्मक व्यक्तित्व उसी की भेंट चढ़ जाता है। हिंदी साहित्य का रीति काव्य और आंग्ल–साहित्य का 'क्लासिकल' युग इस तथ्य के प्रमाणभूत विवेच्य हो सकते हैं। दोनों ही जातियों का यह साहित्य (काव्य) एक क्षयिष्णु, व्यक्तित्व–संकोचक रूप लिप्सा से अधिग्रस्त है। वक्तव्य–वस्तु और शिल्पकौशल, दोनों दृष्टियों से इस साहित्य का स्वरूप अत्यंत संकीर्ण, मादक तथा स्थूलनिष्ठ हो गया है। एक में दरबारों की शोभा और गौरव बढ़ाने वाला मिथ्या–दंभ–ग्रस्त सौंदर्य–रानियों के भृकुटि–विलास तथा रूप–पिपासु सामंतों की बेबसी का, नपे–तुले छंदों में और नपी–तुली भाषा–शैली में, मोहक चित्रण हुआ है (पोप का 'रेप आफ द लौक' ऐसी ही प्रतिनिधि रचना है); दूसरे में रूप–सौंदर्य के ऐंद्रिय पक्ष का इतना पृथुल एवं मादक प्रत्यक्षीकरण हुआ है कि ऐसा प्रतीत होता है, मानो रूप–विलासिनियों के आकर्षण–भंडार में अब कोई नवीन माया अवशिष्ट ही न रह गई हो। 'श्रृंगार–साहित्य के भूषण' बिहारीलाल ने एक ओर नवयौवना मुग्धा की

'धूपछाँही' (ताफतारंग) जैसी चकमक करने वाली तथा क्षणे–क्षणे विकसनशील नव–यौवन की, पकड़ में न आने वाली सुकुमार किंतु मादक शरीरदीप्ति को, रंग और रूप की संकीर्ण सीमा में बाँध देने में चतुर चितेरों को कुंठितबुद्धि घोषित कर भावुकों की उत्सुकता उद्बुद्ध कर दी और दूसरी ओर रसिकता की यह कसौटी भी उपस्थित कर दी–

तंत्री–नाद, कवित्त–रस, सरस राग, रति रंग।
अनबूड़े बूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग।।

सुतरां, काव्यानंद वस्तुतः 'रतिरंग' का सहोदर बन गया, उसका पर्याय हो गया। स्थूल सौंदर्य की उपासना ने कवि–कर्म को इतना अभिभूत कर लिया कि रीति–काव्य विलास की वस्तु बन गया। दासोन्मुख मुगल वैभव और आत्मविस्मृतिशील पतनोन्मुख सामंतीय रईसी वातावरण में जो भौतिक सभ्यता पनपी तथा पल्लवित हुई, उसकी सर्वांगीण छाप रीति–कविता पर स्पष्टतया, अत्यंत स्थूल रेखाओं में चित्रित है। जन–जीवन की जाह्नवी में तत्सामयिक 'सभ्यता' ने कवियों को, जो वस्तुतः रस–सिद्ध कवि–पुंगव थे और उचित प्रेरणा मिल सकने पर प्रणय–वृत्ति का अत्यंत मंजुल, मर्मस्पर्शी तथा उन्नायक उन्मीलन कर सकते थे, स्वतंत्र भाव से डुबकी न लगाने दी। ऐतिहासिक परिस्थितियों से अशक्त होकर, इन कला–मर्मज्ञों की अंतर्दृष्टि जन–जीवन के मूल प्रेरणा–स्रोतों की खोज न कर सकी। किसी भी जाति का जीवन–पोषक द्रव्य उसकी संस्कृति में अंतर्निहित रहता है और संस्कृति–मानव–इतिहास का एक सचमुच कुतूहलजनक सत्य है– 'ग्रामवासिनी सभ्यता शिक्षा के आलोक से वंचित भोली–भाली जनता के सजग संरक्षण में जीवित एवं पोषित होती रहती है।' जो कलाकार अपेक्षाकृत गंभीर एवं स्थायी सौंदर्य की सृष्टि करने के अभिलाषी हैं, उन्हें नव–स्फूर्ति के तत्त्व संचयन के लिए विशाल, व्यापक और भावसंकुल लोकजीवन की ही ओर उन्मुख होना चाहिए। इस सत्य को रीतिकालीन कलाकार हृदयंगम नहीं कर सके। सूर–तुलसी जैसी सूक्ष्म अंतर्दृष्टि और नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा इन पंगुवेता कवियों में निःशेष हो चुकी थी।

'सभ्यता' से प्रेरणा ग्रहण करने वाले काव्य में अवश्य एक रमणीय कलात्मकता विद्यमान रहती है। जीवन की बाह्य तड़क–भड़क और मनोवृत्ति की चटक–मटक कलाकार को अपनी कृतियों को सँवारने–सजाने की प्रेरणा प्रदान करती है। सभ्यता की एक मुख्य प्रवृत्ति–'प्रदर्शन' उसे सतत उद्बुद्ध करता रहता है। 'प्रदर्शन' के साथ 'प्रयोजन' तो संलग्न रहता ही है। मम्मट ने काव्य की प्रयोजनीयता का यह स्वरूप निर्धारित किया है–

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।

इस तालिका में स्पष्ट ही प्रथम चार प्रयोजन कवि के लिए हैं और अंतिम दो

पाठक या भावक के लिए हैं। वस्तुतः मम्मट ने अपनी समन्वयवादी मनोभूमि के कारण इन पंक्तियों में विविध युगों एवं विविध देशों में प्रतिपादित काव्य–सिद्धांतों को एकत्र कर संग्रथित कर दिया है। यदि कवि के प्रति उदारता बरतनी हो और यह चाहिए भी, तो 'सद्यः परनिर्वृतये' का अर्थ, कवि और पाठक दोनों से संबद्ध करना चाहिए। भारतीय कवि भी आनंद तत्त्व से परिचित था ही। यह दूसरी बात है कि आधुनिक कलाकारों की तरह उसने अपने व्यक्तिगत पक्ष की, स्पष्ट शब्दों में, अभिव्यक्ति नहीं की। तो भी, तुलसी ने 'स्वांतः सुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति' कहकर मम्मट के 'परनिर्वृतये' के कंठ–स्वर का अनुमोदन किया है। डॉ. देवराज एक निबंध में कहते हैं कि काव्य लोकहित–संपादन में क्यों कर सहायक होता है, इस विषय में डॉ. रिचर्ड्स के पद some special senses (किसी विशिष्ट अर्थ में) की भाँति मम्मट भी 'उपदेशयुजे' की पद्धति का रहस्योन्मीलन नहीं कर सके हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि मम्मट इस विषय में अपना वक्तव्य अत्यंत स्पष्ट कर चुके हैं। काव्य से पाठक को मूलतः आनंद मिलना चाहिए, किंतु वह आनंद 'वायवीय शून्य' से संघटित नहीं होगा; उसमें कुछ ठोस 'सार' चाहिए जिसका कांतासम्मित, मनमोहक रूपांतर पाठक के हृदय–तत्त्व को आकर्षित कर सके, उसे अपने माया–जाल में बाँध सके। आनंद यदि कांतासम्मित शैली का नहीं होगा तो वह दार्शनिक कोटि का बन सकता है जो सामान्य सहृदय भावक को आकृष्ट करने में असमर्थ रहेगा। स्पष्ट शब्दों में, मम्मट के 'कांतासम्मिततयोपदेशयुजे' में अनुभूति और अभिव्यक्ति, दोनों की रमणीयता की ओर संकेत किया गया है। अस्तु।

मूल वक्तव्य यह है कि रीतिकाव्य में मम्मट के प्रथम दो और अंतिम प्रयोजन स्वीकार किए गए– अर्थ, यश और आकर्षण। 'आकर्षण' का स्थूल रूप ही, 'सूक्ष्म' तो इन कवियों के लिए वर्जित क्षेत्र था– प्रयोजन की इसी त्रिकोणात्मक आधारभूमि में इन कलाकारों ने अपनी वाणी के अमर वरदान का उपयोग किया। 'सभ्यता' की आवश्यकताओं और कांतासम्मितत्त्व के अनुरोध से, इनकी कला सजग, 'कांशस', शिल्पचातुरी और रचनानैपुण्य की मादक प्रभा से जगमगा उठी। 'रूप–तत्त्व' और 'आकर्षणतत्त्व' को जितनी रमणीय, जितनी सम्मोहक, जितनी सुकुमारतापूर्ण भाषा–शैली में इस युग के कलाकारों ने सजाया–सँजोया उतनी प्रिय और मृदुल–मसृण तथा ध्वन्यात्मक शैली शायद छायावादी संप्रदाय के अतिरिक्त हिंदी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। संभवत बिहारी को 'उपदेशयुजे' के कंठ–स्वर के प्रति किंचित मोह उत्पन्न हुआ था, जब उन्होंने अपने संरक्षक अधिराज को नव–परिणय के सम्मोहक मायाजाल से उन्मुक्त कराने के लिए एक क्षीण क्षणिक स्वर–लहरी निस्पंदित की थी किंतु वह स्वर तत्सामयिक 'सभ्यता' के स्वर के मेल में नहीं पड़ता था, अतएव बिहारी शीघ्र ही अपने वाग्वैदग्ध्यपूर्ण 'अंगूरी आसव' की निर्बाध, अनियंत्रित आस्वादना तत्कालीन सामंतीय रसिकों को कराने लगे। मतिराम इत्यादि में जो सहज–प्रसन्न भाव–चित्र

मिल जाते हैं उनके मूल में भी अर्थलिप्सा और यशोलिप्सा तथा आकर्षण–शवलता की मनोवृत्ति दीख पड़ सकती है।

अतएव, रीतिकाव्य में सभ्यता की चटक–मटक तो प्रभूत परिमाण में वर्तमान है, किंतु लोक–हृदय की तड़पन और धड़कन का प्रतिबिंब उसमें दृष्टिगोचर नहीं होता। लोक–हृदय की अवहेलना कर यह काव्यश्री जनता के सांस्कृतिक प्रवाह से पृथक् और अविच्छिन्न हो गई। आंग्ल कवि सौंदर्योपासक कीट्स की तरह इन कलाकारों ने अपने काव्य–मंदिर को, चक्षुर्ग्राह्य सौंदर्य के बारीक–से बारीक संकेतों को पकड़कर और अपनी कल्पना के समृद्ध रंगों की तरंगावली में आस्नात कर, मादक चित्रों की एक अभूतपूर्व 'गैलरी' से सजा दिया है। सभ्यता 'रूप' तो सँवारती है; किंतु 'आत्मा' का आविर्भाव नहीं कर सकती।

छायावाद अवतीर्ण हुआ एक सांस्कृतिक ठेस के प्रतिफलन के रूप में, एक विशिष्ट चेतना से अनुप्राणित होकर। जिस जीवन–चित्र का निर्माण रीति–परंपरा और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की अधिशासक छत्रछाया में पनपने वाली नैतिकता–निष्ठ कविता ने किया था, उसके किसी भी पक्ष से, किसी भी परिपार्श्व से, नवीन राष्ट्रीय चेतना की तृप्ति नहीं हो सकती थी। अतिशय श्रृंगारिकता और अतिशय नैतिकता दोनों ने ही अल्पाधिक परिमाण में लोकतत्त्व की अवहेलना की थी। एक ने निष्क्रिय विलासिता के आसव का आकंठ पान कराकर जीवन–दृष्टि को पंगु, विकृत और श्वयिष्णु बना दिया था। दूसरी ने नैतिकता के अविवेकपूर्ण अनुमोदन– पल्लवन से जीवन की प्राणधारा के नैसर्गिक प्रवाह–पथ में कृत्रिम अवरोध उत्पन्न कर दिया था। छायावादी चेतना के लिए दोनों दृष्टियाँ घातक थीं। इसने लोक–मानस और लोक–हृदय, दोनों से ही प्रेरणा प्राप्त की, दोनों की ही संवाहिका बनने का उद्योग किया। किंतु, दो तत्त्वों ने इस कविता को भी थोड़े काल के उपरांत जन–मानस की प्रकृत धारा से विच्छिन्न कर दिया। प्रथम तत्त्व था इसमें वैयक्तिकता की वृत्ति का अभूतपूर्व विस्फोट और दूसरा था राष्ट्रीय आदोलन की सफलता में रह–रहकर अवरोध की उत्पत्ति। प्रथम ने एक शक्तिशाली प्रतिक्रिया का रूप धारण कर कवि को समाजविमुख एवं आत्मनिष्ठ बना दिया। दूसरे ने इस अंतर्मुखी वृत्ति को 'फ्रस्ट्रेशन' के पंक से पंकिल कर और भी लोक–निरपेक्ष बना दिया। जब राष्ट्रीय स्वाधीनता का सुनहला स्वप्न वस्तु–जगत् की परिधि में नहीं आ सका, तब इन कोमल तंतु निर्मित कलाकारों की चेता जैसे गहन नैराश्य तिमिर में ढकेल दी गई, जिसके फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व की सुकुमार कनक–कटोरी विषाद–रस से आकंठ परिपूर्ण हो उठी और उन्हें किसी शांत–स्निग्ध कल्पना–लोक में पलायन करने को अनुप्रेरित कर दिया। इन कोमल–चेता कलाकारों को जन्मते ही एक कर्कश–वृत्ति–प्रधान आलोचना का आघात सहना पड़ा था। उस प्रहार से निकलकर जब इन्होंने अपनी नवल–नवीन लालसाओं एवं तड़पनों को रूप प्रदान करना प्रारंभ किया, तब उन्हें जातीय 'फ्रस्ट्रेशन'

की आँच में झुलसना पड़ा। इन परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ कि 'प्रतिरोध और युयुत्सा' की उनकी भावनाएँ उद्दीप्त हो सकीं और ये 'अज्ञेय' के शब्दों में एक प्रकार के अस्वस्थ और दुर्बलता–जन्य घर वापस लौटने के दर्द–Nostalgia से अधिग्रस्त हो गए। 'माँ' के आँचल की माँग को मुखरित करने की प्रवृत्ति के कारण छायावादी काव्य–धारा लोक–मानस की प्रकृत मंदाकिनी के अनवरत प्रवाह से विच्छिन्न हो गई।

जैसा कहा गया है, इस कविता का आविर्भाव लोक–संस्कृति की एक अभिनव विकास–सरणि के पूर्त्यर्थ हुआ था; किंतु उसकी आरंभिक जीवन–चेतना परिस्थितियों की लपट में झुलस गई। कला का श्रृंगार इसके कवियों द्वारा भी संपन्न हुआ, किंतु इस श्रृंगार–सजावट में 'सभ्यता' अर्थात् प्रदर्शन से कोई सबल प्रेरणा नहीं मिली। जिस लाक्षणिकता–मूलक प्रतीक–शैली का इन्होंने प्रश्रय ग्रहण किया, उसके पीछे सुकुमार भाव–मूर्तियों को ही सुंदर परिधान में अभिव्यक्त करने की ललक क्रियाशील थी। संभवतः चिर–काल तक उपेक्षित हृदय की कोमलतम भूखों और अतृप्तियों को मुखरित करने, उन्हें मूर्तरूप प्रदान करने के लिए एक विशिष्ट नवल–नवीन परिष्कृत वाणी–स्वरूप की आवश्यकता थी क्योंकि जीवन की 'घिस–घिस' में क्षीयमाण भाषा इस नव्य–भाव–संपदा को अपनाने और प्रेषणीय बनाने में सर्वथा अशक्त बन गई थी। अतएव, छायावादी कलाकारों द्वारा जिस अभिनव शिल्प–नैपुण्य का विकास किया गया, उसमें रीतिकालीन चटक–मटक की मनोवृत्ति वर्तमान नहीं थी, अपितु वह एक अपेक्षणीय आवश्यकता के अनुरोध से प्रादुर्भूत हुआ था।

काव्य–क्षेत्र में जिस सांप्रतिक परिपाटी का विकास हो रहा है, वह तीव्र प्रतिक्रिया की मनोभूमि से उद्भूत प्रतीत हो रही है। यद्यपि प्रतिक्रियावाला मूल भाव अब शनैः–शनैः सिद्धहस्त कवियों की कृतियों में एक निश्चित दार्शनिक विश्वास का रूप ग्रहण करता जा रहा है, तथापि प्रतिक्रिया का प्रवर्तन ('फ्रेज') अब भी कम शक्तिशाली नहीं है। इस प्रगतिशील कविता की भाव–धारा लोक–मानस की भावधारा के मेल में अग्रसर होने का स्तुत्य उद्योग कर रही है अर्थात् उसकी प्राण–शक्ति को 'संस्कृति' से पोषण मिल रहा है, वर्तमान 'पूँजीवादी सभ्यता' से नहीं। शायद यह कहना सत्य से अधिक दूर न होगा कि प्रगतिशील कलाकार में संप्रति 'सभ्यता' के विरोध की एक बलवती प्रेरणा कार्य–शील है। आज वह वंचन–विहीन स्वच्छंदता की वायु में श्वास ले रहा है। सुतरां, छंद और संगीत से सम्मोहक आच्छादन ('ये अलंकार बहु भार मोह के बंधन हैं, दे तोड़ इन्हें।'– श्री नरेंद्र शर्माः 'हंसमाला') को उसने जड़–मूल से उखाड़ फेंका है। संभवतः उसका विश्वास है कि वाणी की सुकुमार माधुरी या लय–तान का स्निग्ध–तरल संभार उसे अपनी नवीन प्रेरणाओं को अभिव्यक्ति देने में असमर्थ बनाएगा, उसमें अवरोध उत्पन्न करेगा। (श्री गिरिजाकुमार माथुरः 'प्रतीक') उसे भय है कि वाणी का संस्कार करने में कहीं उसकी प्रेरणाएँ धूमिल न हो जाएँ, विलुप्त न हो जाएँ। (डॉ. रामविलास शर्माः 'प्रगति और परंपरा') उसके सामने

रीतिकालीन एवं छायावादी काव्य के शैली–प्रयोगों की स्मृति बिल्कुल हरी और ताजी बनी हुई है। संभवतः रस–निष्पत्ति, वाणी–अलंकरण और संगीत–मूलक छंदयोजना को वह सामंतीय किंवा अभिजात्य–वर्गीय (बुर्जुआ) सभ्यता का प्रतीक समझता है। सबसे बड़ी बात यह है कि वह अपनी नवीन प्रेरणाओं को दृढ़ता और सुस्थिरता के साथ आत्मसात् नहीं कर पाया है क्योंकि जिस नवीन संस्कृति का बीजारोपण वह करना चाहता है, उसका स्वरूप समग्रता के साथ वह अभी निर्धारित नहीं कर सका है। अतिशय बौद्धिकता का जो विस्फोट इस कविता में घटित हो रहा है, वह भी शायद उस मानसिक उधेड़बुन की उपज है जो मूल्यों एवं दृष्टि–भंगियों के संक्रांति–काल में अनिवार्यतः उत्पन्न होती है। इस श्रेणी के कवि शिल्प–शृंगार की थोड़ी प्रवृत्ति को भी प्रश्रय दें तो वे सुंदर साहित्य का सर्जन कर सकेंगे।

अब केवल एक बात की ओर ध्यान आकृष्ट करना ही शेष रह गया है। वह है संस्कृति की आपेक्षिक गतिशीलता एवं सुस्थैर्य। समस्त मानवी उपादानों और व्यवस्थाओं में परिवर्तन होता है। टेनीसन का यह कथन – 'Old order changeth, yielding place to new, Lest one good custom should corrupt the world" –आज आप्त वाक्य जैसे महत्त्व का अधिकारी होता जा रहा है। 'गति–शील या 'डायनमिक' मूल्यों की चर्चा आज प्रत्येक शिक्षित के मुख से सुनी जा रही है। इस विषय में स्मर्तव्य यह है कि संस्कृति अपने विशुद्ध प्रेरणात्मक अर्थ में क्वचित–कदाचित् ही परिवर्तित होती है। मेरे निवेदन का अभिप्राय यह है कि जहाँ तक संस्कृति जीवन और जगत् के प्रति हमारे एक चिर–अभ्यस्त, चिराचरित दृष्टिभंगी का प्रतीक है– अर्थात् और स्पष्ट शब्दों में, हमारी अतीत की अनुभूति–परंपरा, हमारी विश्व–संघटना के विषय में एक चिर–परिचित सामंजस्य बुद्धि की संवाहिका है। वहाँ तक उसमें परिवर्तन लाने का प्रयास करना अविवेकपूर्णता का सूचक है। प्रत्येक जाति, जिसकी एक तारतम्यपूर्ण विचार–विकास की सुश्रृंखल ऐतिहासिक परंपरा होती है, अपने अतीत की मूल भाव–भूमिका से संलग्न रहकर ही विकास पथ पर अग्रसर होती है; वही उसके लिए वांछनीय एवं श्रेयस्कर होगा। पुरानी होने से ही कोई चीज बासी नहीं हो जाती और नवीन होने से ही कोई चीज ग्राह्य नहीं होती।

हाँ, जहाँ 'संस्कृति' शब्द से सभ्यता' संबद्ध उपादानों अथवा समाज–संगठन या आर्थिक संगठन का अभिप्राय लिया जाता हो, वहाँ वह अवश्य परिवर्तित परिस्थितियों के आलोक में संशोधित, परिमार्जित या आवश्यक हो तो मूलोच्छिन्न भी की जा सकती है। इस संक्रमण–सरणि में केवल इस पर एक अत्यंत सजग एवं जागरूक दृष्टि रखनी चाहिए कि हमारी शताब्दियों में अर्जित जीवन–दृष्टि पर आँच न लगने पावे। अवश्य ही युग–युग का साहित्य मानव संस्कृति के इस सनातन तत्त्व को परस्पर स्नेह, सौहार्द, सहयोग, सहिष्णुता और सबसे बढ़कर उस आनंदमूलक सामंजस्य–बुद्धि

को जिसमें संघर्ष की भावना का सर्वथा विलोप हो चुका रहता है, प्रवद्र्धित तथा पोषित–पल्लवित करता है।

संस्कृति की वह अंतर्धारा जब साहित्य–सरस्वती का अमर वरदान प्राप्त कर लेती है तब काव्य के अनुभूति और अभिव्यक्ति–पक्ष का मंजुल समन्वय संपन्न हो जाता है। भक्ति–काव्य में एक ऐसा ही सहज–प्रसन्न संयोग घटित हुआ था। तब से आज तक 'संस्कृति' और 'सभ्यता' के बीच की खाई काव्य–साहित्य में उतनी पूर्णता के साथ पाटी नहीं जा सकी है।

कहा गया है कि सभ्यता की कृत्रिमता और गोपन–शीलता (अरुचिकर तथ्यों पर पर्दा डालकर, न कि उनका उपादान कर, एक शिष्ट–सुंदर बहिरंग उपस्थित करना) के कारण हमारी अंर्तवृत्तियाँ कुंठित होती जा रही हैं, जिससे सच्चे काव्य–सर्जन की प्रतिभा भी कुंठित होती जाएगी। इस आशंका में विशेष बल नहीं प्रतीत होता जब तक कि मानव की मानवीयता का ही उन्मूलन संभावित न समझ लिया जाए। किंतु, यह मानवीयता संस्कृति की अपनी वस्तु है, अपनी मूल्यवान् संपदा है और इस विध्वंसक युग में भी इसका मूलोच्छेद कल्पनातीत ही समझना चाहिए। यदि समास–शैली में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि–

संस्कृति के 'शिवं' के साथ सभ्यता के 'सुंदरं' (इस 'सुंदर' में कलात्मक अभिव्यक्ति और युगधर्म की अनुभूति, दोनों का अंतर्भाव समझना चाहिए।) का जब मणिकांचन संयोग संपन्न होता है, तभी साहित्य का 'सत्यं' प्रतिफलित होता है। इसी सर्वांगपूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति चिर–काल से मनुष्य की मर्म–वाणी करती चली आई है।

❑❑❑

# आधुनिक भाषाविज्ञान को भारतीय भाषाचिंतन की देन

**त्रिभुवननाथ शुक्ल**

पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी एवं भाषाविज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भाषाविज्ञान और भारतीय ज्ञान परंपरा विषयक लेखन में विशेषज्ञता

संस्कृत के कारण भाषाविज्ञान का अतीत समृद्ध, वर्तमान महत्त्वपूर्ण तथा भविष्यत् अनेक संभावनाओं से भरा हुआ है। प्राचीन भारत में संस्कृत के माध्यम से जो भाषीय विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, वह पूर्णरूप से वैज्ञानिक होने के साथ–साथ सरल, संक्षिप्त तथा पूर्ण भी है।

1. भाषीय विश्लेषण प्रमुख रूप से स्वन, रूप, रूपस्वन तथा वाक्य स्तर पर किया जाता है। संस्कृत में इन सभी स्तरों पर उच्च स्तर का भाषीय विश्लेषण उपलब्ध होता है। संस्कृत के प्राचीन शिक्षाकार तथा प्रातिशाख्यकारों ने संस्कृत तथा उसके विभिन्न रूपों का स्वनिमिक एवं रूपस्वनिमिक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। तत्कालीन संप्रदाय अथवा परिषदों के भेद से संस्कृत स्वनों के उच्चारण आदर्श रूप से भिन्न भी थे। इसीलिए भिन्न–भिन्न शिक्षाग्रंथों में एवं प्रातिशाख्यों में संस्कृत के भिन्न–भिन्न उच्चारणों का उल्लेख किया गया है। 'सात्यमुग्रि' तथा 'राणयन' परिषदों में ए तथा ओ का ह्रस्व उच्चारण भी प्रचलित था। महाभाष्यकार ने इनको क्रमशः अर्ध एकार तथा अर्ध ओकार कहा है। (पतंजलि : महाभाष्य)

1.1 आधुनिक भाषाविज्ञान के अनुसार किसी भी भाषा के स्वनों का वर्गीकरण उच्चारण स्थान, उच्चारण करण तथा उच्चारण प्रकार या प्रयत्न के आधार पर किया जाता है। इस विश्लेषण में अत्याधुनिक विकसित यांत्रिक उपकरणों की भी सहायता ली जाती है परंतु यह विवेचन अभी तक उस सूक्ष्मता को प्राप्त नहीं कर सका है जिसका विवरण प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए बाह्य प्रयत्नों की दृष्टि से आधुनिक भाषाविज्ञान स्वनों की घोषता–अघोषता तथ अल्पप्राणता–महाप्राणता तक ही पहुँच सका है। संवार–नाद तथा विवार श्वास के संबंध में अभी तक कोई अधिकृत निर्णय नहीं हो सका है।

1.2 इसमें कोई संदेह नहीं कि अघोष स्वनों के उच्चारण काल में स्वरतंत्रियाँ विवृत तथा घोष स्वनों के उच्चारण में संवृत रहती हैं। इन्हीं स्थितियों को क्रमशः विवार तथा संवार कहा जा सकता है। परंतु श्वास तथा नाद के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में कहा गया है– 'संवृतं कंठे यः शब्दः क्रियते, स नाद संज्ञा भवति'– अर्थात् कंठ के संवृत होने पर जो शब्द उत्पन्न होता है उसकी नाद संज्ञा होती है। परंतु नागेश के अनुसार– 'वर्णोत्यत्यत्तरभावी अनुरणनरूपः शब्दः नादः'– अर्थात् वर्ण की उत्पत्ति के पश्चात् अनुरणन (गूँज जैसा) शब्द ही नाद कहलाता है (नागेश भट्ट)। प्रातिशाख्यकार के अनुसार– 'नाद के उच्चारण में कंठ की स्थिति वही होती है जो घोष के उच्चारण में होती है।' नागेश के अनुसार 'नाद अनुरणन है' जो घोष की ही व्याख्या प्रतीत होती है।

1.3 इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि अघोष स्वनों के उच्चारण के समय स्वरतंत्रियाँ विवृत रहती हैं। प्राणवायु श्वास के रूप में रहती है। घोष स्वनों के उच्चारण में स्वरतंत्रियाँ संकुचित (संवृत) हो जाती हैं तथा प्राणवायु नाद में परिणमित हो जाता है। परंतु इस व्याख्या में घोष का नाद से तथा प्राणवायु का श्वास से अंतर स्पष्ट नहीं होता। यंत्रों पर किए गए प्रयोगों में केवल घोष–अघोष तथा अल्पप्राण–महाप्राण का ही अंतर स्पष्ट होता है, श्वास तथा नाद का नहीं।

1.4 संस्कृत स्वनों के गुणों में विचार–श्वास–अघोष तथा संवार–नाद–घोष का साहचर्य कभी व्यभिचरित नहीं होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन वर्गों के तीनों शब्द पर्यायवाची हैं। यही कारण है कि प्राचीन आचार्यों ने इन वर्गों में से श्वास अथवा अघोष तथा नाद अथवा घोष में से एक–एक का ही प्रयोग किया है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्यकार ने केवल नाद का ही उल्लेख किया है। इसी प्रकार पाणिनीय शिक्षा में भी नाद तथा श्वास का ही उल्लेख है, घोष तथा अघोष का नहीं। महाभाष्यकार ने परिगणन की दृष्टि से विवार–संवार, श्वास–नाद, घोष–अघोष, अल्पप्राण–महाप्राण– इन आठ प्रयत्नों का उल्लेख अवश्य किया है (पतंजलि)। परंतु इस संबंध में अभी और शोध की आवश्यकता है तथा आधुनिक भाषाविज्ञान यांत्रिकी की सहायता से इस समस्या का समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

1.5 पाणिनीय शिक्षा के अनुसार नाद तथा श्वास के ईशन्नाद तथा ईषच्छ्वास भेद भी होते हैं। शिक्षाकार के अनुसार 'ह' तथा घ, झ, ध, भ अर्थात् वर्गों के चतुर्थ वर्ण नाद हैं। य, र, ल, व तथा ग, ज, ड, द, ब, अर्थात् वर्गों के तृतीय वर्ण ईषन्नाद हैं। वर्गों के द्वितीय वर्ण ख, छ, ठ, थ, फ श्वास तथा प्रथम वर्ण क, च, ट, त, प, ईषच्छ्वास हैं। परंतु परवर्ती वैयाकरणों ने इस सूक्ष्म भेद को स्वीकार नहीं किया है। भट्टोजी दीक्षित आदि के अनुसार वर्गों के तीसरे, चौथे, पाँचवें वर्ण, अंतस्थ तथा ह संवार, नाद, घोष हैं। वर्गों के पहले, दूसरे तथा ऊष्मवर्ण विवार, श्वास, अघोष हैं (भट्टो जी दीक्षित)। शिक्षाकार ने जिस सूक्ष्म भेद की ओर संकेत किया है वह एक ऐसा भाषीय

तथ्य है जिसकी पुष्टि यंत्रों से नहीं की जा सकती।

2. स्वरतंत्रियों की अवस्था के अतिरिक्त करण तथा स्थान के मध्यवर्ती अवकाश को ध्यान में रखकर भी विवृत तथा संवृत स्थितियों की चर्चा की गई है। प्रातिशाख्यों में इन दशाओं को 'करण' कहा है। वाजनसनेयी प्रातिशाख्य के अनुसार 'द्वे करणे संवृतविवृताख्यं' अर्थात् करण दो होते हैं– एक संवृत तथा दूसरा विवृत। नागेश के अनुसार 'कंठ विलस्य विकासः विवारः' अर्थात् कंठविल का खुला रहना विवार है। ज्ञानेंद्र सरस्वती ने विवृत की व्याख्या करते हुए कहा है– 'तत्रांत्पतैः प्राग्यदा जिव्हाग्रोपाग्र मध्यमूलानि तत्तद्वर्णोत्पत्ति स्थानानां ताल्वादीनां दूरतां वर्तन्ते तदा विवृतता' अर्थात् वर्णों की उत्पत्ति से पूर्व जब जिह्वाग्र, जिह्वाग्रोपाग्र, जिह्वामध्य, जिह्वामूल उन–उन वर्णों के उत्पत्ति स्थान आदि से दूर ही रहते हैं तो इस स्थिति को विवृत कहा जाता है (ज्ञानोदय सरस्वती)। वैयाकरणों के अनुसार 'संवृत' तथा 'विवृत' आभ्यंतर प्रयत्न हैं जो 'करण' तथा स्थान के मध्यवर्ती अवकाश की न्यूनता तथा अधिकता का बोध कराते हैं।

2.1 पाणिनीय शिक्षा के अनुसार विवृतता ही अस्पृष्टता है क्योंकि इस स्थिति में करण उच्चारणकाल में स्थान का स्पर्श नहीं करते। इस शिक्षा के अनुसार स्वर अस्पृष्ट हैं। अंतस्थ ईषत्स्पृष्ट, ऊष्म अर्धस्पृष्ट तथा शेष वर्गीय व्यंजन स्पृष्ट हैं। भट्टो जी दीक्षित के अनुसार स्पर्श अर्थात् वर्गीय 25 वर्ण स्पृष्ट, अंतस्थ, ईषत्स्पृष्ट तथा ऊष्म एवं स्वर विवृत हैं। कौमुदीकार का यह विवेचन महाभाष्यकार के निम्न कथन पर आधृत हैः– 'तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्, ईषत्स्पृष्टिमन्तः स्थानाम्, विवृतमूष्मणाम्, स्वराणांच।' परंतु भाष्य के तीसरे वाक्य में दूसरे वाक्य से ईषत् पद की अनुवृत्ति आती है। इस प्रकार ऊष्मौ का ईषद् विवृत प्रयत्न होता है। अंतिम सूत्र में विवृत की अनुवृत्ति है तथा ईषद् की अनुवृत्ति नहीं। अतः स्वरों का विवृत प्रयत्न है। ऊष्म और स्वरों का प्रयत्न भेद स्पष्ट है। इसीलिए आधुनिक भाषाविज्ञान के अनुसार ऊष्म सतत संघर्षी स्वन हैं, अतः व्यंजन हैं। जबकि स्वरों के उच्चारण में वायु स्थान तथा करण के मध्य से अबाध गति से निकलती रहती है।

2.2 पाणिनीय शिक्षा के अनुसार ए, ओ विवृततर तथा ऐ, औ, विवृततम, परंतु इन स्वरों का वर्तमान उच्चारण वैदिक अथवा लौकिक संस्कृत काल से नितांत भिन्न है। उस समय 'स' का उच्चारण अइ, आं का अइ, ऐ का आइ तथा ओ का आइ सदृश था। संधि में स्वर परे ए, आं, ऐ, औ को क्रमशः अव, अय, आय, आव् आदेश उपरिनिर्दिष्ट उच्चारण के साक्षी हैं।

2.3 स्वर होते हुए भी अ विवृत नहीं, संवृत है। इसीलिए पाणिनि ने शब्दसिद्धि प्रक्रिया में संक्षेप के लिए न को विवृत माना है परंतु उच्चारण की दृष्टि से वह संवृत ही था। इसी का निर्देश उन्होंने (अष्टाध्यायी पाद 8 सूत्र 4) में किया है। यही कारण है कि अ तथा आ के उच्चारण में हमारे मुख की स्थिति एक सी नहीं रहती

जबकि इ ई तथा उ ऊ के उच्चारण में ह्रस्व तथा दीर्घ का उच्चारण करते समय मुख की स्थिति में कोई अंतर नहीं आता।

2.4 आधुनिक भाषाविज्ञान के अनुसार सभी स्वर एक जैसे विवृत नहीं हैं और यदि आ अधिकतम विवृत है तो 'ई' न्यूनतम विवृत है। इस दृष्टि से स्वर विवृत, अर्ध विवृत, अर्ध संवृत तथा संवृत—इन चार स्थितियों में उच्चरित होते हैं। प्राचीन भारतीय विचारकों ने अभिन्न सभी स्वरों को विवृत श्रेणी में ही रखा है। कुछ स्वरों की विवृततरता तथा विवृततमता का उल्लेख तो किया है परंतु उनकी संवृततरता तथा संवृततमता का उल्लेख नहीं हुआ।

2.5 पाणिनि ने य् तथा व् उच्चारण लघु प्रयत्नतर भी माना है। इसी उच्चारण का संकेत उन्होंने— 'व्योलेघु प्रयत्नतर शाकटायनस्य पा. 8, 4' सूत्र में किया है। कातंत्रकार के अनुसार यह उच्चारण ईषत्स्पृष्टतर है। 'क' इह का वैकल्पिक उच्चारण कयिह भी था। यहाँ यकार ईषत्स्पृष्टतर है अर्थात् यहाँ करण तथा स्थान का संपर्क अत्यंत क्षीण है, परंतु है अवश्य।

2.6 भाषा के प्रयोगकाल में हम स्वनानुक्रमों का प्रयोग करते हैं परंतु प्रत्येक स्वन एक दूसरे से असंपृक्त रहता है। इसी असंपृक्तता के कारण स्थानों के क्रम का ज्ञान होता है। ऋक्तंत्र के अनुसार दो वर्णों के मध्य में परमाणु विद्यमान रहता है। वाजसनेयी प्रातिशाख्य के अनुसार परमाणु अर्धाणुमात्रा अर्थात् अर्ध अणु के मात्राकाल को परमाणु कहते हैं।

2.7 भारतीय मनीषियों ने उच्चारण सामान्य के गुण तथा दोषों का भी उल्लेख किया है। महाभाष्यकार ने उच्चारण दोषों के संबंध में दो आचार्यों के मत उद्धृत किए हैं। प्रथम मत के अनुसार संवृत, कल, ध्मात, एकीकृत, अम्पूकृत अर्द्धक, ग्रस्त, निरस्त, प्रगीत उपगीत, क्ष्विण्ण, रोमश वा लोमश— ये बारह उच्चारण दोष होते हैं। दूसरे मत के अनुसार—ग्रस्त, निरस्त, अवम्बित, निर्हत, अम्बूकृत, ध्मांत, विकंपित, संदष्ट, एणीकृत, अर्द्धक, दूत तथा विकीर्ण ये बारह दोष हैं। इनमें अविलंबित निर्हत, संद्दष्ट तथा विकीर्ण—ये चार अतिविशिष्ट हैं तथा प्रगीत, उपगीत, क्ष्विण्ण तथा रोमश को छोड़ दिया गया। कैयट ने इन सभी सोलह दोषों की व्याख्या प्रस्तुत की है। शौनकीय ऋग्वेद प्रातिशाख्य में ग्रस्त, निरस्त, अम्बूकृत, संदष्ट, क्ष्विण्ण, रोमश इन सात का ही उल्लेख है। परंतु पाणिनीय शिक्षा में—शंकित, भीत, उद्घृष्ट, अव्यक्त, अनुनासिक, काकस्वर, शिरसिगत, स्थान—विवर्जित, उपांशुदष्ट, त्वरित, निरस्त, विलंबित, गद्गदित, प्रर्गीत, निष्पीडित तथा ग्रस्तपदाक्षर (ग्रस्ताक्षर तथा ग्रस्तपद) इन दोषों को माना है।

2.8 उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि उच्चारण के संबंध में प्राचीन भारतीय आचार्यों ने अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यह विश्लेषण आधुनिक भाषाविज्ञान को और गंभीर चिंतन के लिए प्रेरणा दे सकता है। साथ ही आधुनिक भाषाविज्ञान यांत्रिकी की सहायता से इस विश्लेषण के वास्तविक स्वरूप को निर्धारित करने में

अमूल्य योगदान दे सकता है।

3. व्याकरण के स्तर पर आधुनिक भाषाविज्ञान में रूपांतरणपरक अथवा निष्पादक व्याकरण की बड़ी चर्चा रही है। अभी तक यही धारणा रही है कि प्रत्येक भाषा का व्याकरण स्वतंत्र होता है। अतः व्याकरण में सार्वभौमिकता जैसी कोई बात हो ही नहीं सकती। परंतु निष्पादक–विपरिवर्तक व्याकरण के पक्षपाती इस संभावना के साथ चल रहे हैं कि विश्वभर की भाषाओं का व्याकरण लिखने की एक निश्चित प्रणाली खोजी जा सकती है। अब तक ज्ञात तथा अधीत भाषाओं की शब्दराशि में यह समानता उपलब्ध हुई है कि उसमें प्रयुक्त शब्द राशिनाम वाचक तथा क्रियावाचक पदों में विभक्त हैं जिसे उन्होंने संज्ञा पदबंध तथा क्रिया पदबंध नाम दिया है। भारतीय निरुक्तकारों ने इन्हें क्रमशः नाम तथा आख्यात कहा था। यास्क के अनुसार 'सत्वप्रधानानि नामानि तथा भाव–प्रधानमाख्यातम्' अर्थात् जिन शब्दों से द्रव्य का बोध होता है, वे नाम तथा जिनसे क्रिया का बोध होता है, वे आख्यात हैं। आधुनिक भाषाविज्ञान के अनुसार इन्हीं दो इकाइयों से वाक्य बनता है। वार्तिककार ने 'एकतिङ् वाक्यम् आख्यातं सविशेषणं वाक्यम्, सक्रिया विशेषणं', कहकर इसी तथ्य का प्रतिपादन किया है। पाणिनि ने वाक्य की घटक इन दो प्रधान इकाइयों को सुबन्त (नाम) तथा तिङंत पद माना है। अमरकोशकार ने– 'सुप्तिङ्न्तयो वाक्यं क्रिया वा कारकान्विता' कहकर इसे ठीक आधुनिक परिभाषा का मूल बना दिया है।

3.1 निष्पादक या विपरिवर्तक व्याकरण नियम प्रधान है। किसी भी भाषा का प्रयोग कुछ नियमों के अधीन होता है। उन्हीं नियमों की खोज व्याकरणकार या भाषिक का कार्य होता है। व्याकरण के ये नियम कुछ विशेष चक्रों तथा क्रमों में ही लागू होते हैं। संस्कृत के वैयाकरणों ने इस तथ्य को बहुत पहले जान लिया था। पाणिनि के सूत्र विशेषक्रम में ही लागू होते हैं। उनके नियमन के नियम सूत्र तथा परिभाषाएँ हैं। इन्हीं के अधीन सारे सूत्र कार्य करते हैं। निष्पादक विपरिवर्तक व्याकरण के पक्षधरों की धारणा है कि इस व्याकरण के पूर्ण विकसित होने पर किसी भी भाषा का व्याकरण कंप्यूटर जैसे यंत्र से तैयार किया जा सकता है। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि नियमों की देखरेख में यंत्र किसी भाषा में प्रयुक्त सारी इकाइयों को ही जन्म दे सकता है। इस कसौटी पर पाणिनि व्याकरण एक ऐसा यंत्र है जो संस्कृत भाषा को जन्म दे सकता है। यदि आज संस्कृत का सारा साहित्य नष्ट हो जाए तथा केवल पाणिनिकृत सूत्र पाठ, गणपाठ, धातुपाठ, उणादिपाठ तथा पाणिनि व्याकरण में प्रयुक्त परिभाषाएँ शेष रह जाएँ तो भी संस्कृत भाषा की रचना पुनः की जा सकती है। यह संस्कृत पाणिनि की संस्कृत होगी। नॉम चाम्स्की आदि आधुनिक भाषावैज्ञानिक जिस व्याकरण की खोज में लगे हैं उन्हें पाणिनि व्याकरण ही निश्चित दिशा दे सकता है और दे भी रहा है।

4. अबसे चालीस वर्ष पूर्व भाषाविज्ञान के क्षेत्र में संरचनावादियों की धूम थी।

उनका विश्वास था कि भाषा मात्र संरचना प्रधान तत्त्व है। इस संरचना में भाषा के विभिन्न घटक स्वन, अर्थ रूप तथा वाक्य भाषा को जन्म देते हैं। इस संरचना का बोध तथा विश्लेषण अर्थज्ञान के बिना भी संभव है। अतः संरचना के ज्ञान के लिए अर्थबोध की कोई आवश्यकता है नहीं। वास्तव में भाषा–विश्लेषण के लिए अर्थ के तिरस्कार का आग्रह एक अतिवाद ही था। उस युग में अर्थ को भाषाविज्ञान के क्षेत्र से एकदम बहिष्कृत कर दिया था तथा इसे मनौवैज्ञानिकी का अंग समझा जाता था, भाषा विज्ञान का नहीं। भाषाविज्ञान का कार्य इतने से ही चल जाता था कि अमुक इकाई सार्थक है। उसका क्या अर्थ है– यह जानना नितांत अनावश्यक माना जाता था। परंतु रूढ़ या यादृच्छिक वाक्प्रतीकों (सार्थक ध्वनियों) की व्यवस्था को भाषा मानने वाले भाषाविज्ञान के क्षेत्र से अर्थ को अधिक समय के लिए उपेक्षित नहीं कर सके। आज अर्थ को पुनः भाषाविज्ञान का अभिन्न अंग माना जाने लगा है।

4.1 वास्तव में अर्थशोध के लिए ही भाषा का प्रयोग किया जाता है, अतः भाषा विश्लेषण में अर्थ संबंधी विचार का तिरस्कार नहीं किया जा सकता। इसीलिए अर्थ के संबंध में भारत में न केवल वैयाकरणों द्वारा ही अपितु दार्शनिक तथा साहित्यिकों द्वारा भी गंभीर विचार किया गया है। भर्तृहरि का अर्थ संबंधी विवेचन आज भी दिशा निर्देशक है। नैयायिकों तथा साहित्यिकों द्वारा किया गया अभिधा, लक्षणा, व्यंजना तथा तात्पर्या संबंधी विचार पर्याप्त प्रौढ़ हैं। अन्विताभिधानवाद तथा अभिहितान्वयवाद का विवाद भाषाविज्ञान की दृष्टि से परस्पर विरोधी नहीं अपितु पूरक हैं।

4.2 अन्विताविधानवाद के अनुसार वाक्य में प्रयुक्त पद नामक इकाइयाँ स्वभावतः अन्वित रूप में ही प्रयुक्त होती हैं अर्थात् अन्वितपद की अभिधा द्वारा प्रतिपादित होती हैं। इस मत के अनुसार अन्वयबोध के लिए किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं है। 'रामः पठति' में 'राम': तथा 'पठति' पदों का कर्ता तथा क्रिया के रूप में पहले ही अन्वय विद्यमान है।

4.3 अभिहितान्वयवाद के अनुसार पद केवल अन्वयरहित पदार्थ की ही उपस्थिति कराता है। अन्वय का बोध पदार्थ की उपस्थिति के पश्चात् तात्पर्य नामक शक्ति से होता है। उपर्युक्त वाक्य में रामः पद से राम पद के अर्थ का ही बोध होता है तथा पठति पद वर्तमानकालिक एक अन्य व्यक्ति द्वारा की गई पठन क्रिया का बोधक है। कर्ता तथा क्रिया के रूप में दोनों का अन्वय पदार्थ उपस्थिति के पश्चात् तात्पर्यार्थ द्वारा वाक्यार्थ के रूप में होता है। भाषाविज्ञान अथवा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपर्युक्त दोनों मत दृष्टि भेद से ठीक हैं। पहला मत वक्ता की दृष्टि से अक्षरशः सत्य है। भाषा के प्रयोग के समय वक्ता पहले ही शब्दों का अन्वय करके अर्थात् वाक्यार्थ का निर्धारण करके क्रमशः शब्दों का प्रयोग करता है परंतु श्रोता की दृष्टि से दूसरा मत ही ठीक है। श्रवण काल में–श्रोता वक्ता द्वारा प्रयुक्त पदों को क्रमशः सुनता है। उस समय उसे प्रत्येक पद का स्वतंत्र अर्थ ही ज्ञात होता है। पूरा वाक्य सुनने पर ही पदों

का अन्वय करता है। इसलिए उसकी दृष्टि से पदार्थोपस्थिति के बाद ही अन्वय होने पर वाक्यार्थ की उपस्थिति होती है। वाक्यांतर्गत सभी पदों के पृथक्–पृथक् बोध के पश्चात् ही उनका सामूहिक ज्ञान होता है। इस प्रकार दोनों मतों का भेद केवल परिस्थितिजन्य है। स्थितिभेद से दोनों मत ठीक हैं।

5. भाषा का भौतिक स्वरूप ध्वनि या शब्द है। शब्द की उत्पत्ति आघात से होती है। भाषा में प्रयुक्त शब्द करणों द्वारा उच्चारणावयवों के किसी बिंदु विशेष पर किए गए वायु के प्रभावन से होती है। भारतीय दार्शनिकों, विशेष रूप से भर्तृहरि ने शब्द के संबंध में अनेक मतों का उल्लेख किया है। स्थूल रूप से तो वक्ता का प्राणवायु ही करण तथा स्थान के मध्य आघात प्राप्त करने पर शब्द रूप में परिवर्तित हो जाता है परंतु अंतःस्फोटी ध्वनियों में बाह्य वायु ही शब्द रूप में परिणत होता है। रसना द्वारा तिक्त मिर्ची का स्वाद चखने पर जिस सीत्कार ध्वनि का जन्म होता है वह बाहर से अंदर को खींची जाती है।

5.1 परंतु वायु क्या है? जब इस प्रश्न की गहराई में जाते हैं तो वायु भी अन्य पदार्थों के समान अणुओं अथवा परमाणुओं से मिलकर बनता है, अतः 'अणु' ही शब्द है। संयोग विभाग द्वारा अणु ही संपूर्ण पदार्थों की सृष्टि करते हैं। भर्तृहरि ने तो छाया, आतप, तम तथा शब्द को अणुओं का ही परिणाम माना है।

5.2 उपर्युक्त दोनों मत सामान्य शब्द के संबंध में एकदम सटीक हैं परंतु भाषीय शब्द इससे भी कुछ भिन्न हैं। यह भेद अर्थ के कारण है। अन्य शब्द प्रायः निरर्थक हैं परंतु भाषायी शब्द सार्थक ही होता है। अतः उसके साथ ज्ञान या बोध अवश्य लगा रहता है। इसीलिए भर्तृहरि ने भाषायी शब्द को ज्ञान का ही विवर्त कहा है–

अथायमान्तरा ज्ञाता सूक्ष्मवागात्म स्थितः।
व्यवर्तये, स्वस्थ रूपस्य शब्दस्वेन विवर्तते। (वाक्यपदीयम्)

अर्थात वक्ता का आंतरिक चैतन्य ही, जो सूक्ष्म वाक् के रूप में विद्यमान है, अभिव्यक्ति के लिए शब्द रूप में परिणत हो जाता है।

5.3 आधुनिक भाषाविज्ञान के अनुसार शब्दोत्पत्ति की प्रक्रिया फेफड़ों से निकलने वाली वायु से प्रारंभ होती है। परंतु भारतीय विचारकों ने इस संबंध में अधिक गंभीरता से विचार किया है। आधुनिक भाषावैज्ञानिकों का विचार भाषा के भौतिक पक्ष (स्वनिमिकता) से प्रारंभ होता है परंतु भारत में उसके मानसिक या मनौवैज्ञानिक पक्ष पर भी विचार किया है जो उच्चारण के समय भाषा के भौतिक रूप से पूर्व संप्रेष्य अर्थ या ज्ञान के रूप में विद्यमान रहता है। भर्तृहरि के अनुसार वह ज्ञाता है जो मन के रूप में परिवर्तित हो जाता है तथा तेज (जठराग्नि) से पाक को प्राप्त करके प्राणवायु में प्रवेश करता है जिसके कारण वायु ऊपर की ओर प्रेरित होता है। स्थानकरण भेद से वायु विभिन्न प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करके उन ध्वनियों में ही लीन हो जाता है। यद्यपि वह अपने उत्पादन के कारण भूत वायु के द्वारा ही प्रकट होता है जैसे

आकाश से सर्वत्र व्याप्त वायु अपने निमित्तकारण व्यंजन आदि से ही प्रकट होता है।

5.4 पाणिनीय शिक्षा में इसी भाव को निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया गया है–

आत्माबुद्धया समेत्यर्थान् मनोयुक्ते विवक्षया।
मनः कार्याग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतन्।।
मारुतस्तूरसि चरन् मन्दः जनयति स्वरम्।.....
सोदीर्णामूर्धन्यामिद्दतां यस्त्रमापघ मारुतः
वर्णाभ् जनवयते तेषां विभागः पंचधा मत।

भारतीय विचारकों ने भाषा के श्रुत के उच्चरित रूप को वैखरी कहा है तथा इससे पूर्व इसके सूक्ष्म, सूक्ष्मतर तथा सूक्ष्मतम रूपों को क्रमशः मध्यमा, पश्यंती तथा परा नाम दिया है। नागेश के अनुसार इनकी स्थिति इस प्रकार है– 'परावां मूल चक्रस्था पश्यन्ती नाभिदेशशा। हृदिस्था मध्यमा ज्ञेया वैखरी कंठ देशगा।।' रूस में एक विद्वान वैज्ञानिक ने भाषा की उत्पत्ति के समय होने वाली शारीरिक प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए नाभिप्रदेश तक की क्रियाशीलता का आंशिक अनुभव होने की बात स्वीकार की है परंतु अभी इस संबंध में विस्तृत शोध की आवश्यकता है। भाषा की उत्पत्ति अर्थात् उच्चारण प्रक्रिया के संबंध में उपर्युक्त विचार पर्याप्त प्रेरणाप्रद हैं तथा आधुनिक भाषावैज्ञानिक यंत्रों की सहायता से उन पर निश्चित प्रकाश डाल सकते हैं।

मानवीय भाषा का जन्म कैसे हुआ, इस संबंध में पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने पर्याप्त विचार किया है। अखिल ब्रह्मांड का रचयिता ईश्वर, भाषा का भी रचयिता है। नामरूपं व्याकरणवाणि आदि श्रुति वचन तथा–

सर्वेषां स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेद सद्र्धम्य आदाय पृथक् संस्थांश्च निर्ममे।। (मनुस्मृति)

परंतु आस्तिकों के श्रद्धापात्र में विचार तर्कबुद्धियों को अरुचिकर हो सकते हैं। शतपथ ब्राह्मण में झिल्ली की झंकार साँपों की फुंकार को भाषा की प्राथमिक अवस्था कहा गया है। पक्षियों की चहचहाहट कुछ और विकसित अवस्था है। पशुओं का रंभाना, चिंघाड़ना, हिनहिनाना, भौंकना या मिमियाना उनसे अगली अवस्था मानी गई है। मानव की वैखरी वाक् जिसे ऋग्वेद ने 'तुरीयंवाचामनुष्या वदन्ति' कहकर स्पष्ट किया है–भाषा की विकसिततम स्थिति है। भारतीय विद्वानों के ये विचार भाषा विकास के इतिहास का मार्गदर्शन कर सकते हैं। ये विचार संस्कृत में ही निहित हैं। अतः भाषाविज्ञान के संदर्भ में संस्कृत की प्रासंगिकता अभी भी असंदिग्ध है।

❑❑❑

# नयी शिक्षा नीति–2020 और आदिवासी भाषाएँ

**राठोड पुंडलिक**

आदिवासी साहित्य, हिंदी नवजागरण और पर्यावरणीय विमर्श में विशेष रुचि। संप्रतिः माउंट कार्मेल कॉलेज, बेंगलूरू में सहायक प्राध्यापक

नयी शिक्षा नीति और आदिवासी भाषाएँ एक ऐसा विषय है, जिसके संदर्भ में व्यापक विश्लेषण की आवश्यकता है क्योंकि देश में कुल 1635 आदिवासी भाषाएँ–बोलियाँ प्रचलित हैं जिनमें करीबन 200 भाषाएँ यूनेस्को की संकटग्रस्त श्रेणी में सम्मिलित हैं। अब सवाल यह उठता है कि नयी शिक्षा नीति के अंतर्गत मातृभाषा के रूप में क्या इन सभी भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाएगी या कुछ चयनित भाषाओं को इसमें शामिल किया जाएगा? नयी शिक्षा नीति के अंतर्गत भाग एक, अध्याय चार के परिच्छेद 4.11 में 'बहुभाषावाद और भाषा की शक्ति' उपशीर्षक में क्षेत्रीय/घर की भाषा/मातृभाषा/क्षेत्रीय समुदायों की भाषा में प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने की पेशकश की गई है। विचारणीय विषय यह है कि क्षेत्रीय भाषाएँ तो संविधान की आठवीं अनुसूचित में स्पष्ट रूप से परिभाषित हैं किंतु क्षेत्रीय समुदायों की मातृभाषा की परिभाषा क्या होगी? यदि आदिवासी भाषाओं की बात करें तो कुल 1635 भाषाओं में केवल तीन या चार भाषाएँ ही आठवीं अनुसूची में सम्मिलित हैं, तब अन्य भाषाओं का क्या होगा? क्या उन भाषाओं को भी अधिकारिक भाषाएँ घोषित किया जाएगा? या आज तक जिस प्रकार होता आया है, उसी प्रकार चलता रहेगा। इन सभी भाषाओं को आधिकारिक दर्जा प्रदान करने पर सरकार के समक्ष अनेक चुनौतियाँ खड़ी होंगी। इसमें एक विचारणीय मुद्दा यह है कि आदिवासी भाषाओं में कुछ भाषाओं को आधिकारिक दर्जा देने पर अन्य भाषा बोलनेवालों द्वारा विवाद खड़ा किया जा सकता है। इस भाषायी भूराजनीति के उदाहरण हम पिछले वर्षों में त्रिपुरा, मणिपुर, नागालैंड, असम, झारखंड, गारो, खासी, जयंतिया और मिजो आदि समुदायों में देख चुके हैं। यदि मातृभाषा की इस चुनौती का निराकरण हो जाता है, तब भी आदिवासी भाषाओं में शिक्षा की नयी व्यवस्था के अंतर्गत अवसंरचना निर्माण, सामग्री निर्माण, शिक्षकों की बहाली तथा आदिवासी समुदायों को इस प्रणाली के साथ जोड़ने जैसी कई अन्य चुनौतियाँ विद्यमान हैं। 1986 की शिक्षा नीति तथा संशोधित नीति में

भी ये अधिकांश प्रावधान थे किंतु उनका उचित क्रियान्वयन न होने के कारण सकारात्मक परिणाम नहीं मिल पाए हैं। अतः देखना होगा कि बहुभाषावाद पर यह नयी शिक्षा नीति किस प्रकार का रूप–स्वरूप अपनाकर आगे बढ़ती है। इन सारी समस्याओं का समाधान कर यदि आदिवासी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया गया तो यह सपनों का भारत जैसा होगा किंतु नीति का क्रियान्वयन कहाँ तक सफल हो पाएगा, यह आज कह पाना कठिन है।

**बहुभाषावाद और आदिवासी भाषाएँ:**

नयी शिक्षा नीति के अध्याय चार के 11वें परिच्छेद में बहुभाषावाद पर जोर दिया गया है और कहा गया है कि "शिक्षा का माध्यम, घर की भाषा/मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा होगी। इसके बाद घर/स्थानीय भाषा को जहाँ भी संभव हो भाषा के रूप में पढ़ाया जाता रहेगा। सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के स्कूल इसका अनुपालन करेंगे। विज्ञान सहित सभी विषयों में उच्चतर गुणवत्ता वाली पाठ्यपुस्तकों को घरेलू भाषाओं/मातृभाषा में उपलब्ध कराया जाएगा।"[1] यहाँ ध्यान देने योग्य बिंदु यह है कि घर की भाषा या मातृभाषा की परिभाषा क्या है? नीति में ही स्पष्ट किया गया है कि छोटे बच्चे जो अपने घर में बोलते हैं या माता द्वारा बोली जानेवाली भाषा ही घर की भाषा है। किंतु आगे यह भी कहा गया है कि मातृभाषा या स्थानीय समुदायों द्वारा बोली जानेवाली भाषा ही मातृभाषा है। कहना न होगा कि देश में आदिवासी जनसंख्या कुल आबादी का 8.6 प्रतिशत है जिनके रीति–रिवाजों, भाषाओं, बोलियों में व्यापक विविधताएँ हैं। करीबन दो सौ से अधिक आदिवासी भाषाएँ संकटग्रस्त सूची में सम्मिलित हैं। तो क्या इन सभी स्थानीय समुदायों की भाषाओं में शिक्षा प्रदान की जाएगी? यह एक विचारणीय बिंदु है।

कोई भाषा अपने बोलनेवाले समुदाय की संस्कृति, सभ्यता, रीति–रिवाज, ऐतिहासिक संदर्भ तथा उनके जीवन मूल्यों के साथ–साथ उस समुदाय की समग्र विश्वदृष्टि को अपने में समेटे अथवा सँजोए रहती है। अतः एक भाषा का अंत होने पर उस समुदाय का सब कुछ समाप्त हो जाता है। उस समुदाय की विश्वदृष्टि लुप्त हो जाती है लेकिन उस समुदाय का जीवन–दर्शन और विश्वदृष्टि, हो सकता है कि भविष्य में हमारे लिए बहुमूल्य और मार्गदर्शक हो इसलिए भाषाओं की रक्षा करना अति महत्त्वपूर्ण है। यूनेस्को की 'अटलस ऑफ़ द वर्ल्ड्स लैंग्वेजेस इन डेंजर' 2010 की सूची में भारत शीर्ष पर है अर्थात "भारत में 197 लुप्तप्रायः भाषाएँ हैं। इन लुप्तप्रायः भाषाओं में लगभग सौ भाषाएँ भारत के पूर्वोत्तर के आदिवासी बहुल क्षेत्र से हैं। इसके अलावा 13 भाषाएँ गंभीर रूप से संकटग्रस्त हैं।"[2] इस संदर्भ में नयी शिक्षा नीति द्वारा मातृभाषा या क्षेत्रीय समुदाय की भाषा को प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम बनाने की नीति एक सराहनीय कदम है क्योंकि जो भाषा शिक्षा का माध्यम बनती है, वह अपने आप में रक्षित हो जाती है।

सवाल अब भी यह है कि इतनी सारी भाषाओं में शिक्षा प्रदान करना क्या संभव हो पाएगा? यदि संभव है, तब तो इस नीति को लागू करने का एक रोडमैप आवश्यक होना चाहिए, जो अभी नहीं बना है।

**घर की भाषा/मातृभाषा/क्षेत्रीय समुदाय की भाषा का तात्पर्यः**

घर की भाषा या मातृभाषा का तात्पर्य क्या है? संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल भाषाएँ ही मातृभाषा होंगी या फिर विशिष्ट भाषा बोलनेवाले लोगों की गणना के पश्चात् एक निश्चित संख्या से अधिक जनसंख्या वाली भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाएगा? या उन भाषाओं को अधिकारिक दर्जा दिया जाएगा? ये विषय भारत में आदिवासी भाषाओं को लेकर गंभीर रूप से हमारे समक्ष खड़े होते हैं क्योंकि संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल कुल 22 भाषाओं में मात्र पाँच आदिवासी भाषाएँ शामिल हैं। यदि इन्हीं भाषाओं को मातृभाषा माना गया तो अन्य सैंकड़ों भाषाएँ ऐसी भी हैं जिनके बोलनेवालों की संख्या एक लाख से अधिक है। यह उन भाषाओं के साथ अन्याय होगा।

लोकसभा में गृहमंत्री को आठवीं अनुसूची में भाषाओं को शामिल करने पर एक अतारांकित प्रश्न पूछा गया था। (09/12/2014/18) सवाल का जवाब देते हुए गृह मंत्रालय के राज्यमंत्री ने कहा कि "क. संविधान की आठवीं अनुसूची में कुल 22 भाषाएँ शामिल हैं। ख., ग., और घ. इस समय संविधान की आठवीं अनुसूची में 38 और भाषाओं को शामिल किए जाने की माँग है। ये हैं; अंगिका, बंजारा, बज्जिका, भोजपुरी, भोटी, भोटिया, बुंदेलखंडी, छत्तीसगढ़ी, गढ़वाली पहाड़ी, गोंडी, गुजर/गुज्जरी, हो, कचाच्छी, कातमपुरी, कारबी, खासी, कोडवा (कूर्ग), काकबराक, कुमाऊँनी (पहाड़ी), कुरूख, कुर्माली, लेपचा, लिम्बू, मिजो (लूशाई), मगही, मुंदारी, नागपुरी, निकोबारी, पहाड़ी (हिमाचली), पाली, राजस्थानी, संबलपुरी, कोसली, शौरसेनी (प्राप्त), सिरैकी, तेनियादी और तुलू।"[3] आदि भाषाओं के नाम सुनाते हुए वे कहते हैं कि "संविधान की आठवीं अनुसूची में भाषाओं को शामिल करने के लिए विषयपरक मानदंडों का कोई स्थापित सेट नहीं है और इसलिए संविधान की आठवीं अनुसूची में और भाषाओं को शामिल करने की माँगों पर विचार करने के लिए कोई समय–सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती।"[4] यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रस्तावित 38 भाषाओं में से अधिकांश आदिवासी भाषाएँ हैं। यदि इन भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल कर इन भाषाओं को भी नयी शिक्षा नीति के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाया जाता है, तो यह शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कदम हो सकता है।

नयी शिक्षा नीति का 'बहुभाषावाद और भाषा शक्ति' अध्याय का परिच्छेद 4.11 यह भी कहता है कि "जहाँ घर की भाषा की पाठ्य सामग्री उपलब्ध नहीं है, शिक्षकों और छात्रों के बीच संवाद की भाषा भी जहाँ संभव हो, वहाँ घर की भाषा बनी रहेगी।

शिक्षकों को उन छात्रों के साथ जिनके घर की भाषा/मातृभाषा शिक्षा के माध्यम से भिन्न है, द्विभाषी–शिक्षण–अधिगम सामग्री सहित द्विभाषी एप्रोच का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहन किया जाएगा।... एक भाषा को अच्छी तरह से सिखाने और सीखने के लिए इसे शिक्षा का माध्यम होने की आवश्यकता नहीं है।"[5] यह संदर्भ उन भाषाओं और बोलियों के लिए प्रोत्साहनदायक है, जिनके बोलनेवालों की संख्या बहुत कम है, किंतु जब बोलनेवालों की संख्या लाखों से अधिक है क्या उन भाषाओं और समुदायों के प्रति भी यही एप्रोच होगा? क्या 'यदि संभव हो' या 'भाषा सिखाने और सीखने के लिए शिक्षा का माध्यम होना आवश्यक नहीं' जैसे बिंदुओं का फायदा उठाकर प्रशासनिक मशीनरी आदिवासी भाषाओं की उपेक्षा नहीं करेगी इसकी कोई गारंटी नीति के अंतर्गत नहीं है। अतः इस तरह के सूक्ष्म बिंदुओं पर ध्यान रखते हुए इस नीति को उचित रूप से लागू करने की आवश्यकता है।

**स्कूल की ड्रॉपआउट दर में मातृभाषा की भूमिकाः**

2011 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों की साक्षरता दर 59 प्रतिशत थी जबकि अखिल भारतीय स्तर पर समग्र साक्षरता दर 73 प्रतिशत थी। अर्थात् आदिवासी साक्षरता दर कम होने के कई कारण हैं। उनमें एक कारण तो यह है कि आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा नीति का क्रियान्वयन उचित ढंग से नहीं होता है और दूसरा कारण यह है कि जहाँ भी शिक्षा व्यवस्था है, वहाँ आदिवासी बच्चों की ड्रॉपआउट दर सर्वाधिक है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय (अब शिक्षा मंत्रालय) के स्कूली शिक्षा विभाग के अनुसार "कक्षा 1 से 10 तक आदिवासी विद्यार्थियों की ड्रापआउट दर सामान्य बच्चों से कहीं अधिक है।"[6] नयी शिक्षा नीति के भाग–1, अध्याय–6 के परिच्छेद– 6.2.1 में भी यही चिंता व्यक्त की गई है कि "U-DISE 2016–17 के आंकड़ों के अनुसार, प्राथमिक स्तर पर लगभग 19.6% छात्र अनुसूचित जाति के हैं, किंतु उच्चतर माध्यमिक स्तर पर यह प्रतिशत कम होकर 17.3% हो गया है। नामांकन में यह गिरावट अनुसूचित जनजाति के छात्रों (10.6% से 6.8%) की है।... इनमें प्रत्येक श्रेणी में महिला छात्रों के लिए इन नामांकनों में और भी गिरावट आई है। उच्चतर शिक्षा में नामांकन में गिरावट और भी अधिक है।"[7] सवाल यह है कि ऐसा क्यों होता है? आदिवासी बच्चा जब पहली कक्षा में प्रवेश लेता है तब हिंदी और अंग्रेजी अथवा अन्य क्षेत्रीय भाषा उसे पहाड़ जैसी लगने लगती है। वह अपनी मातृभाषा में पिछले पाँच वर्षों से जो अपने माता–पिता से सीखा था जैसे पंछियों, वृक्षों तथा प्राणियों के नाम, प्रतीक चिह्न, अंक ज्ञान तथा कलाएँ सब कुछ प्रथम कक्षा में ही शून्य हो जाता है। यहीं से उसके मस्तिष्क में कुंठा, भय तथा एक नयी दुनिया में अकेलेपन का भाव पनपने लगता है। यहीं से प्रारंभ होता है ड्रॉप आउट का सिलसिला क्योंकि हमारी शिक्षा नीति प्रतिभा और कौशल को कुछ भिन्न मानदंडों से मान्यता

प्रदान करती है और आदिवासी बच्चों की प्रतिभा इन मानदंडों में शून्य हो जाती है।

आदिवासी बच्चों की इसी स्थिति पर विचार करते हुए नयी शिक्षा नीति के अध्याय–6 के परिच्छेद–6.2.3 में कहा गया है कि "विभिन्न ऐतिहासिक और भौगोलिक कारकों के कारण जनजातीय समुदाय और अनुसूचित जनजातियों के बच्चे भी कई स्तरों पर प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करते हैं। आदिवासी समुदाय के बच्चे अकसर अपनी स्कूली शिक्षा को सांस्कृतिक और शैक्षणिक रूप से अप्रासंगिक और विदेशी पाते हैं।"[8] इन तमाम चुनौतियों का सामना करते हुए शिक्षा नीति 2030 तक प्री स्कूल से माध्यमिक स्तर तक 100% सकल नामांकन अनुपात प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित करती है। लेकिन यह होगा कैसे? शिक्षा नीति इसके लिए कई प्रेरणादायी सुझाव देती है किंतु आदिवासी बच्चों का ड्रॉपआउट दर रोकने का सबसे प्रभावी तरीका है, उनकी अपनी मातृभाषा में प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करते हुए उन्हीं के माहौल में धीरे–धीरे उन्हें अन्य भाषाओं में सम्मिलित करना। इस प्रयास को अपनाने पर आदिवासी बच्चे प्रारंभिक कक्षा से ही अपनी प्रतिभा और कौशल प्रदर्शन में बेहतर करते नज़र आएँगे।

**बालकों के समग्र विकास में मातृभाषा का महत्त्व:**

आदिवासी समुदाय के बच्चे बचपन से ही अपने अभिभावकों के साथ खेतों, वनों में भ्रमण करते हुए विभिन्न प्रकार के जीवन–मूल्यों, रीति–रिवाज, मान्यताओं और उस समुदाय में प्रचलित गीत, नृत्य, वादन, तीरंदाज़, तैरना, मधु निकालना जैसी अनेक कलाओं और तकनीकियों का कौशल प्राप्त करते रहते हैं। आदिवासी बच्चे एकता व संगठन में विश्वास रखते हुए प्रकृति तथा जीव–जंतुओं के प्रति भावुक होते हैं। एक आदिवासी बच्चा कई प्रकार के वाद्य बजा सकता है। इस पर श्रीचंद्र जैन अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि "अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे थे... ढोल, ढीमकी, सारंगी, थाली, लोटा, चिमटा, झालर, कटोरा, मटका, शंख, खड़ताल, बांसुरी, अलगोजा, ढपली, घुँघरू, रमलूना, शहनाई, रूपघंटा, नगाड़े आदि कई वाद्य प्रकृति को मोहित कर रहे थे।"[9] स्पष्ट है कि इन बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने पर वे अपनी कलाएँ, अपना कौशल दिखाने में हिचकिचाएँगे नहीं और उनका सर्वांगीण विकास होगा।

नयी शिक्षा नीति के भाग–1 के अध्याय–4 के परिच्छेद–4.4 में कहा गया है कि "वास्तव में ज्ञान एक छुपा हुआ खजाना है और शिक्षा व्यक्ति की प्रतिभा के साथ इसे प्राप्त करने में मदद करती है।"[10] आदिवासी बच्चों में प्रकृति के संदर्भ में व्यापक ज्ञान और अनेक प्रतिभाएँ छुपी होती हैं किंतु एक भिन्न भाषा, अलग माहौल के कारण वे अपने इस ज्ञान और प्रतिभा का विकास नहीं कर पाते हैं। यदि इन बच्चों को उनका अपना माहौल अपनी भाषा में प्राप्त हो जाए तो ये बच्चे राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर तैराकी, तीरंदाज़ी, कबड्डी, दौड़, गायन, वादन आदि कई खेलों एवं प्रतिस्पर्धाओं

में अपने समाज, देश का नाम रोशन कर सकते हैं। नयी शिक्षा नीति यह भी कहती है कि "विशिष्ट कौशल और मूल्यों की पहचान की जाएगी। शिक्षण और अधिगम प्रक्रिया में इन कौशल और मूल्यों को आत्मसात किया जा रहा है, यह सुनिश्चित करने के लिए पाठ्यचर्या ढाँचा और संपर्क तंत्र विकसित किया जाएगा।"[11] यह प्रतिभा कौशल की सुनिश्चितता प्रमुख भाषाओं में तो होगी किंतु आदिवासी भाषा माध्यम की पाठशालाओं में भी हो तब तो आदिवासी समाज कुछ ही वर्षों में मुख्यधारा में शामिल होकर देश के विकास में अपना योगदान प्रदान करने लगेगा।

**आदिवासी भाषाओं का शिक्षा का माध्यम बनने में चुनौतियाँ :**

ऐसा नहीं है कि इस शिक्षा नीति के पहले मातृभाषा में अथवा आदिवासी भाषाओं में शिक्षा प्रदान करने की बात पर जोर नहीं दिया गया। 1952 का 'माध्यमिक शिक्षा आयोग', 1956 में 'केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड' द्वारा 'त्रिभाषा सूत्र', 1964–66 के 'कोठारी आयोग' द्वारा अद्यतन त्रिभाषा सूत्र प्रस्तावित किया गया। 1968 में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' ने त्रिभाषा योजना शुरू करने की सिफारिश की। इसके पश्चात् सन–1986 में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' द्वारा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप बना। 1986 की शिक्षा नीति के अनुसार अनुसूचित जनजातियों से संबंधित प्रावधानों में परिवर्तन कर इन्हें भाषा या द्विभाषा के रूप में स्वीकार नहीं किया गया बल्कि अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश को स्वीकार करते हुए जनजातीय भाषाओं को क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में स्वीकार करने का निर्णय लिया गया। इस व्यवस्था के अंतर्गत आदिवासी भाषाओं में पाठ्यक्रम विकसित करने तथा शिक्षण सामग्री तैयार करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया और कुछ चुने हुए क्षेत्रों में आदिवासी भाषाओं में शिक्षा प्रदान करने का कदम उठाया गया।

उपर्युक्त तमाम प्रावधानों द्वारा जैसे राज्यों में आदिवासी भाषा को आधिकारिक दर्जा प्राप्त है और भाषायी अल्पसंख्यक हितों की सुरक्षा की गारंटी देनेवाले सांवैधानिक प्रावधान (अनुच्छेद–29,1) होने के बावजूद आदिवासी बच्चों को उनकी अपनी भाषाओं में नहीं बल्कि स्थानीय भाषाओं में शिक्षा प्रदान की जा रही है।

**नीति के क्रियान्वयन पर निर्भर है इन भाषाओं का विकास :**

कहना न होगा कि सरकार ने नीति तो बना दी किंतु उस नीति को लागू करने वाली नौकरशाही की उदासीनता के कारण 1986 की शिक्षा नीति व्यवहार में लागू नहीं हो पाई। इस पर सामाजिक कार्यकर्ता रमणिका गुप्ता लिखती हैं कि "जनजातीय क्षेत्रों के अधिकांश स्कूलों, जहाँ जनजातीय भाषा शिक्षा का माध्यम है, के पास मात्र भवन का तुच्छ ढाँचा है, शिक्षाकर्मियों का अभाव और शिक्षण सामग्रियों की कमी है।"[12] कोई भी नीति कितनी भी सुसंगत और अच्छी क्यों न हो, उसकी सफलता उचित क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। नीति को व्यावहारिक रूप देने का कार्य प्रशासनिक

मशीनरी का है किंतु प्रशासन की उदासीनता कहें या फिर जानबूझकर उपेक्षा करने की सुनियोजित रणनीति जिसके फलस्वरूप आदिवासी भाषाएँ शिक्षा के माध्यम के रूप में सफल नहीं हो पा रही हैं। नयी शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में ही एक मामला झारखंड में सामने आया है। केंद्र सरकार द्वारा स्पष्ट अध्यादेश के बावजूद प्रशासन द्वारा ऐसी कक्षा नियमावली बनाई गई जिसके तहत विद्यार्थी या तो हिंदी पढ़ सकता है या उनकी अपनी मातृभाषा 'कूँडुख' पढ़ सकता है अर्थात नियमावली के अनुसार इन दो भाषाओं में कोई एक ही भाषा विद्यार्थी पढ़ पाएगा।

रणेंद्र ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में 1986 की शिक्षा नीति के तहत बने एक स्कूल का चित्रण करते हुए लिखा है कि "पाथरपाठ विद्यालय ...असली और फुसलावन स्कूल का फर्क।...भौरपाठ स्कूल सूअर का बखार नज़र आता है आधी–अधूरी बिल्डिंग जैसे–तैसे बना हॉस्टल मुर्गी खाना जैसा शिक्षक आवास। जहाँ साफ़–सफाई होनी चाहिए वहीं सबसे ज्यादा गंदगी। बच्चियों के मेस में कभी झाड़ू–पोंछा लगता भी था कि नहीं, कोई जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं। केवल मेस की खरीदारी के लिए मारामारी। असल कमाई वहीं थी। हेडमिस्ट्रेस मुझ पर ही झल्लाई, इन मक्काई के घट्टा खानेवालों को यहाँ काम–धाम मिल जाता है, वही बहुत है। आप अपने हिसाब से क्यों सोचते हैं? कौन इन्हें अपने घरों में खीर–पूड़ी भेंटता है कि आप मेस की व्यवस्था में सुधार के लिए मरे जा रहे हैं।"[13] कहने का तात्पर्य है कि नयी शिक्षा नीति–2020 एक प्रगतिशील और शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है किंतु उसकी सफलता उचित क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। आदिवासी भाषाओं के संदर्भ में क्रियान्वयन का विषय और भी गंभीर बन जाता है।

उपर्युक्त चुनौतियों के अलावा आदिवासी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने में और बहुत–सी चुनौतियाँ हैं, जैसे शिक्षा योजना बनाना, उस योजना को लागू करने हेतु उसका विकेंद्रीकरण करना, पाठ्यक्रमों का निर्माण, पाठ्यपुस्तक सामग्री को बच्चों तक पहुँचाना, शिक्षकों की भर्ती, स्कूल अवसंरचना निर्माण, आदिवासी भाषा बोलनेवालों बच्चों की पहचान करना, उच्चस्तरीय सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग के साथ आदिवासी बच्चों की प्रतिभा को पहचानना, राष्ट्रव्यापी डेटाबेस बनाना आदि। हालाँकि नयी शिक्षा नीति के अध्याय–4 के परिच्छेद–4.3.0 में कहा गया है कि "स्कूल शिक्षा के लिए एक नयी और व्यापक पाठ्यचर्या रूपरेखा NCFSC 2020–21, NCERT द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के सिद्धांतों, अग्रणी पाठ्यचर्या आवश्यकताओं के आधार पर तथा राज्य सरकारी, मंत्रालयों, केंद्र सरकार के संबंधित विभागों और अन्य विशेषज्ञ निकायों सहित सभी हितधारकों के साथ परामर्श करके तैयार की जाएगी।"[14] सभी हितधारकों में आदिवासी विशेषज्ञ को भी स्थान देना आवश्यक है ताकि वे आदिवासी

समाज, संस्कृति, जीवन मूल्य एवं भाषायी अनुकूलता के आधार पर अपने सुझाव दे सकें। आशा रखते हैं कि नयी शिक्षा नीति–2020 को उचित क्रियान्वयन के द्वारा जमीनी धरातल पर उतारा जाएगा। यदि ऐसा हुआ तो आदिवासी भाषाओं और समुदायों के लिए यह नीति एक वरदान सिद्ध होगी।

कहना न होगा कि यह नीति अपने आप में प्रगतिशील है। इस नीति में भारत के भविष्य को कल्पित किया गया है। भाषा की दृष्टि से भारत की सारी भाषाओं का ध्यान रखने का आश्वासन दिया गया है किंतु आदिवासी भाषाओं के संदर्भ में यह नीति तभी सफल हो पाएगी जब सारी आदिवासी भाषाओं की पहचान कर कुछ मानदंडों के साथ उन भाषाओं को आधिकारिक दर्जा प्रदान करते हुए उन्हें प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाया जाएगा। आदिवासी भाषाओं के संबंध में पहले भी नीतियों में प्रावधान थे किंतु सरकार तथा नौकरशाही की उदासीनता के कारण वे प्रावधान धरातल तक उतर नहीं पाए। नयी शिक्षा नीति–2020 के अंतर्गत भी प्रगतिशील प्रावधान रखे गए हैं लेकिन आदिवासी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने में अनेक तकनीकी चुनौतियाँ भी विद्यमान हैं। इन सारी चुनौतियों को सुलझाकर इस नीति का यदि सरकार और नौकरशाही मशीनरी द्वारा उचित क्रियान्वयन होता है, तो यह नीति न केवल आदिवासी भाषाओं बल्कि भारत के 550 से भी अधिक आदिवासी समुदायों के लिए वरदान साबित होगी।

**संदर्भ सूची:**


1. नयी शिक्षा नीति–2020, अध्याय–4, परिच्छेद–1, पृ. 19, शिक्षा मंत्रालय www.education.gov.in
2. UNESCO–2010 Report - list of endangered Languages in India, www-unesco-org
3. लोकसभा–अतारांकित प्रश्न संख्या–2554 दि. 09–12–2014 / 18 अग्रहायण– गृह मंत्रालय, भारत सरकार, www.mha.gov.in
4. लोकसभा–अतारांकित प्रश्न संख्या –2554 दि. 09–12–2014 / 18 अग्रहायण– गृह मंत्रालय, भारत सरकार, www.mha.gov-in
5. नयी शिक्षा नीति–2020, भाग एक, अध्याय–4, परिच्छेद–11 पृ. 19–29, www.education.gov.in
6. स्कूली शिक्षा विभाग, शिक्षा मंत्रालय, www.education.gov.in
7. नयी शिक्षा नीति–2020, अध्याय–6, परिच्छेद–6.2.1, शिक्षा मंत्रालय पृ. 38, www.education.gov.in
8. नयी शिक्षा नीति–2020, अध्याय–6, परिच्छेद–6.2.3, शिक्षा मंत्रालय, पृ. 39, www.education.gov.in

9. श्रीचंद्र जैन–आदिवासियों के बीच, शिवानी बुक्स, दिल्ली, प्र. सं. 2017 पृ. 24
10. नयी शिक्षा नीति–2020, अध्याय–4, परिच्छेद–4.4, शिक्षा मंत्रालय पृ. 17, www.education.gov.in
11. नयी शिक्षा नीति–2020, अध्याय–4, परिच्छेद–4.4, शिक्षा मंत्रालय पृ. 17, www.education.gov.in
12. सं. रमणिका गुप्ता– आदिवासी भाषा और शिक्षा, स्वराज प्रकाशन , नयी दिल्ली प्र. सं. 2012, पृष्ठ–87
13. रणेंद्र– ग्लोबल गाँव के देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली प्र. सं. 2009, पृ 20
14. नयी शिक्षा नीति–2020, अध्याय–4, परिच्छेद–4.3.1, शिक्षा मंत्रालय पृ. 25, www.education.gov.in

❑❑❑

**गोकुल की गैल, गैल गैल ग्वालिन की,**
**गोरस कैं काज, लाज–बस कै बहाइबो।**
**कहै 'रतनाकर' रिझाइबो नवेलिनि को,**
**गाइबो गवाइबो और नाचिबो नचाइबो।।**

**(जगन्नाथ दास 'रत्नाकर')**

 ISSN 0523-1418

# रेणु का कथा–दर्शन और उसकी आंचलिकता

**शिवनारायण**

शिक्षा, साहित्य, पत्रकारिता एवं समाजसेवा में सक्रिय रूप से संलग्न। संप्रतिः प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, श्री अरविंद महिला कॉलेज (पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय) पटना

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में फणीश्वरनाथ रेणु को एक युग–प्रवर्तक आंचलिक कथाकार–उपन्यासकार के रूप में शुमार किया जाता है। ग्रामीण जीवन के चितेरे कथासम्राट मुंशी प्रेमचंद और आचार्य शिवपूजन सहाय ग्राम्य कथाधारा के उत्स हैं तो फणीश्वरनाथ रेणु अपनी विशिष्ट शैली, आंचलिक कथ्यों के प्रयोक्ता, अनुभूतिगत विशेषताओं एवं अंतर्दृष्टिसंपन्नता के कारण उस कथाधारा के मौलिक विस्तार हैं। प्रेमचंद के गोदान और शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' में गाँवों के चित्र अपने व्यापक परिवेश में अंकित हैं। हिंदी के सुप्रतिष्ठ साहित्यकार डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु के अनुसार 'शिवपूजन सहाय के 'देहाती दुनिया' उपन्यास में ठेठ भोजपुरी देहाती जीवन के चित्र उपस्थित कर ग्राम–जीवन को प्रदर्शित किया गया है। स्थान–स्थान पर उक्तियों, कहावतों और मुहावरों के प्रयोग से कथा को ग्रामीणों के मन के लायक बनाने का उपक्रम किया गया है। उसकी भाषा में भोजपुरी की आंचलिकता की बहार भी है।' (आचार्य शिवपूजन सहाय, वाणी, अक्तूबर–1995, पृ–45)

फणीश्वरनाथ रेणु के बहुपथीन रचनाकर्म के विविध पक्षों का आलोचकों द्वारा उद्घाटन किया जा रहा है। रेणु की आंचलिकता को लेकर भी उसके उत्स की खोज के साथ उनकी विशिष्टताओं का विवेचन हो रहा है। आलोचकों ने राही मासूम रजा के उपन्यास 'आधा गाँव', नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ', भैरव प्रसाद गुप्ता के 'गंगा मैया' तथा श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' में भी गाँव की समस्याओं को अलग–अलग दृष्टिकोण से जाँचा परखा है। रेणु की प्रथम कहानी 'बटबाबा' (1944) से शुरू होकर शिवप्रसाद सिंह की 'दादी माँ' (1951), मार्कण्डेय की 'पान–फूल' (1954), शेखर जोशी की 'कोशी के घटवार' (1958), शानी की 'बबूल की छाँव' (1958) और पुनः रेणु के 'तुमरी' कहानी–संग्रह के प्रकाशन से आंचलिक कहानियाँ परवान चढ़ती हैं। लक्ष्मीनारायण लाल, रामदरश मिश्र, राजेंद्र अवस्थी, शैलेश मटियानी आदि कथाकारों की कहानियाँ इसी धारा के साथ जुड़ती दीख पड़ती हैं। फिर मणि मधुकर ने

राजस्थानी अंचल, मेहरून्निसा परवेज ने बस्तर अंचल, बलवंत सिंह ने पंजाब क्षेत्र की जीवन पद्धति, परंपरा, नृत्य–संगीत–संस्कृति आदि को अपनी–अपनी रचनाओं में संदर्भित किया है। समीक्षकों का कहना है कि आंचलिक पृष्ठभूमि के लेखकों की रचनाओं में फणीश्वरनाथ रेणु की कथात्मक अंतर्दृष्टि देखी जा सकती है क्योंकि रेणु की परंपरा वस्तुतः रेणु से शुरू होती है और रेणु पर ही समाप्त हो जाती है।

फणीश्वरनाथ रेणु की रचनाओं में ग्रामबोध का विशिष्ट मूल्य पूर्ववर्ती रचनाकारों में नहीं मिलता है क्योंकि 'मैला आँचल' के पूर्व आंचलिक विशेषण उपन्यास के संदर्भ में अज्ञात था, परंतु प्रेमचंदीय परंपरा पर लिखे गए उनके उपन्यासों में आंचलिकता के तत्त्व प्रकट होने लगे थे। (फणीश्वरनाथ रेणु सृजन और संदर्भ, पृ.–297)। कहने का आशय यह है कि रेणु के आंचलिक लेखन में गाँव की यथार्थता की आंतरिक क्षमता अपने रूप में प्रकट होती है और उसकी ऊर्जा भीतर से बाहर तक अपनी प्रभा बिखेरती है।

ऐसे प्रतिभासंपन्न दूरदृष्टि वाले और अंचल की जड़ों में अपने को आत्मसात् करने वाले युगांतरकारी लेखक रेणु का जन्म 4 मार्च, 1921 ई. को बिहार के अररिया जिले के औराहीहिंगना नामक गाँव में हुआ था। किसानी परिवेश में जन्मे रेणु की शिक्षा–दीक्षा ग्रामीण स्कूल मिसरबानी में हुई थी, जबकि आगे अंतरस्नातक की शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई। सन् 1930 में पहली बार वानरसेना के कार्यकर्ता के रूप में चौदह दिनों तक जेल की सजा काटी। उस समय उनकी उम्र लगभग 9–10 वर्ष की रही होगी। सन् 1940 में उन्होंने आचार्य नरेंद्र देव से मार्क्सवाद की दीक्षा ली। सन् 1950 में नेपाल की राणा राजशाही के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में सक्रिय भागीदारी निभाई और 1954 ई. में उनका प्रसिद्ध आंचलिक उपन्यास 'मैला आँचल' का प्रकाशन हुआ, जबकि 1957 ई. में 'परती परिकथा' उपन्यास अपनी शैलीगत गंभीरता और ठोसपन के साथ उपस्थित हुआ। 1959 में 'तुमरी', 1973 में मेरी प्रिय कहानियाँ, 1975 में 'अगिनखोर' तथा इसी वर्ष प्रकाशित कहानी–संग्रह 'आदिमरात्रि की महक' में नवीन आंचलिक कहानियों की उपस्थिति दर्ज की गई, जिसमें कोशी अंचल की विविध आयामी सामासिक संस्कृतियों का उद्घाटन बहुत ही सूक्ष्मता से उद्दाम जिजीविषा, गहरी संवेदना, मौलिकता और विशिष्टता का समावेश करके किया गया। मैला–आँचल', 'परती परिकथा' सहित 'जुलूस', 'दीर्घतपा', 'पल्टू बाबू का रोड' और 'कितने चौराहे' रेणु के इन छह उपन्यासों में आंचलिकता की सर्वप्रथम 'मैला आंचल' में उपस्थिति ने उनके अन्य उपन्यासों–कहानियों को बहुत समय तक ध्यान नहीं देने योग्य बना दिया। आखिर क्यों?

रेणु के संदर्भ में जिस आंचलिकता की चर्चा की जाती है, हिंदी कथा साहित्य में उसका स्वर जब भी उभरा हो, लेकिन अन्य भारतीय भाषाओं में उस आंचलिकता का विकास भारतीय स्वतंत्रता के बहुत पहले से दिखाई पड़ता है। देखा जाए तो इस

संदर्भ में ओड़िआ के गोपीनाथ महांति के उपन्यास 'अमृत संतान' तथा सतीनाथ भादुड़ी के चर्चित उपन्यास 'ढोढ़ाईचरित मानस' की चर्चा विशेष रूप से की जा सकती है। 'अमृत संतान' में ओड़िशा के आदिवासी समाज (दक्षिणी जंगल) के जीवन संघर्ष पर आधारित उस पूरे अंचल को कथा–पात्र बनाकर वहाँ की दिन–प्रतिदिन की घटनाएँ, पर्व–त्योहारों के तौर तरीकों, सामाजिक कार्यों को संचालित करने वाले संगठन, उनकी प्रतिक्रियाओं आदि को गूँथकर यह रचना आदिवासी जीवन–संस्कृति की खूबसूरत प्रस्तुति करती है, जैसे नृविज्ञानी के रूप में कोई मानवशास्त्र के आचार व्यवहार का सर्वे प्रस्तुत कर रहा हो। इसी क्रम में बंगला के लेखक सतीनाथ भादुड़ी के चर्चित उपन्यास 'ढोढाईचरित मानस' की भी चर्चा की जाती है। बंगला साहित्य में तब ताराशंकर बंद्योपाध्याय के 'जनपद' एवं 'आरोग्य निकेतन', विभूतिनारायण मुखोपाध्याय के 'आरण्यक' आदि उपन्यासों की खासी चर्चा होती थी। मानिक बंद्योपाध्याय, सतीनाथ भादुड़ी आदि तो लिख ही रहे थे। आलोचकों का मानना है कि ये लेखक शरतचंद्र के 'पल्लीसमाज जैसे गाँव आधारित बोलते हुए उपन्यास से प्रभावित होकर ही आंचलिक धारा के लेखन में सक्रिय थे। ये सभी जनपदीय समाज विशेषकर ग्रामीण जीवन–संस्कृति के आलोक में ही आंचलिक उपन्यासों की रचना कर रहे थे। उत्तर बिहार के पूर्णिया निवासी सतीनाथ भादुड़ी का उपन्यास 'ढोढाईचरित मानस' उन सबसे भिन्न है।

'ढोढाईचरित मानस' की रचना 1948–49 ई. में हुई जिसका कथा–काल 1907 से 1943–44 तक विस्तार पाता हुआ दिखाई पड़ता है। पूर्णिया के एक ग्रामीण अंचल को केंद्र में रखकर उसके माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष को ही इस उपन्यास में रूपायित किया गया है। यह रूपांकन इतना सूक्ष्म, सार्थक, संवेदनशील एवं कलापूर्ण है कि उस आंचल की हँसी–रुलाई, सुख–दुःख, जन्म–मृत्यु ही नहीं, अंचल के पात्रों की भंगिमा, वस्त्रों के रंग–गंध, पशु–पक्षी तक के चलन आदि सबके सब उसमें बोलते नजर आने लगते हैं। वह पूरा का पूरा अंचल मुखर हो उठता है। कहा जाना चाहिए कि पूर्णिया के उस क्षेत्र की दबी–पिछड़ी जातियों के आंचलिक परिवेश के जरिये वहाँ के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन को अत्यंत सार्थक तरीके से प्रस्तुत किया गया है।

ओड़िआ–बंगला के लेखकों को किसी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के रचने–गढ़ने की प्रेरणा पर्ल बक से मिली, ऐसी तात्कालिक कथालोचकों की मान्यता है। उन्नीसवीं शती के आरंभ में रूसी, फ्रांसीसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के लेखक अपने–अपने क्षेत्र के देशकाल एवं वातावरण को सामाजिक–सांस्कृतिक आख्यान में रचकर प्रस्तुत कर रहे थे। क्षेत्र विशेष के जीवन–दर्शन को प्रस्तुत करते हुए वे अपने समय की संस्कृति और विकास का दर्शन ही कथाओं में पिरो रहे थे। उनमें मनुष्य की स्वतंत्रता और समता को रेखांकित करने की ललक थी, जो किसी की सभ्यता के

विकास का आदिस्रोत बनता है। पर्ल बक के लेखन में क्षेत्र विशेष के लेखन को उसके समग्र यथार्थ में चित्रित किए जाने का मोहक आख्यान है जिसने अपने बाद के लेखकों को बेतरह प्रभावित किया। पर्ल बक से बंगला के सतीनाथ भादुड़ी तक की आंचलिक कथाओं के विकास की धारा से हिंदी के कथा–विकास की धारा को जोड़ें तो कहना होगा कि हिंदी में आजादी के पहले से ही आंचलिक लेखन का श्रीगणेश हो चुका था, जब शिवपूजन सहाय की 'देहाती दुनिया', सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का 'चतुरी चमार', रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें', नागार्जुन की 'बलचनमा' जैसी औपन्यासिक रचनाएँ सामने आ चुकी थीं। इन सबके अलावा भी आगे चलकर इसी कथा–चेतना की धारा में देवेंद्र सत्यार्थी के उपन्यास 'ब्रहापुत्र और दूधगाछ', उदयशंकर भट्ट के 'सागर लहरें और मनुष्य', भैरवप्रसाद गुप्ता के 'सती मैया का चौरा', राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', मार्कण्डेय का 'अग्निबीज', विवेकी राय का 'सोनामाटी', राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' जैसे अनगिन उपन्यास प्रकाशित हुए। इन सभी उपन्यासों में अपने–अपने जनपद की सामाजिक–सांस्कृतिक गाथा का रोचक आख्यान है।

आंचलिक उपन्यासों की हिंदी की इस परंपरा से रेणु के 'मैला आचंल' या 'परती परिकथा' को जोड़कर उसकी आंचलिकता के साथ न्याय नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि रेणु के ये उपन्यास 'अंचल विशेष' के हैं। 'अचल' और 'अंचल विशेष' में फर्क होता है जिसे समझे बिना आंचलिकता की समझ भी विकसित नहीं हो सकती। यहाँ इस सवाल से भी इस विमर्श को आगे बढ़ाना होगा कि क्या 'मैला आंचल' के प्रकाशन के पूर्व आंचलिक उपन्यास का विमर्श केंद्र में था? नहीं, तो क्यों? वास्तव में 'मैला आंचल' के प्रकाशन के बाद से ही हिंदी में 'आंचलिकता' की चर्चा शुरू होती है। आखिर रेणु के संदर्भ में आंचलिकता है क्या? भाषाविज्ञान की शब्दावली में बात करें तो उस अंचल विशेष को आइसलैंड कहते हैं, जहाँ तीन या तीन से अधिक भाषाओं का मेल देखने को मिलता है। ऐसे अंचल विशेष में भाषा के साथ–साथ उस भाषा क्षेत्रों की संस्कृतियाँ भी आपस में दूध–पानी की तरह मिल जाती हैं। भिन्न–भिन्न भाषा और संस्कृतियों के दूध–पानी मेल से एक नयी कचराही या मिश्रित भाषा–संस्कृति का जन्म होता है। उस अंचल विशेष के लोग अपनी मूल भाषा–संस्कृति से परे उस नयी भाषा–संस्कृति में ढलने लगते हैं। तब उस अंचल विशेष को उसकी मूल भाषा या संस्कृति में समझना मुश्किल–सा हो जाता है। कोशी अंचल में, जो रेणु की कथाभूमि है, अनेक भाषाओं का मेल देखने को मिलता है। बिहार का वह उत्तर–पूर्वी क्षेत्र नेपाल की तराई और बांग्लादेश की सीमा से सटे होने के कारण वहाँ अंगिका, मैथिली, भोजपुरी जैसी बिहारी भाषाओं के अलावा बंगाली, भोटिया, नेपाली आदि भाषाओं और उनकी संस्कृतियों का भी मेल दिखता है। अब कोशी के उस अंचल विशेष की जीवन–कथा का आख्यान किसी भाषा विशेष में व्यक्त होकर उस पूरे क्षेत्र की पहचान

और उसकी संस्कृति को व्यक्त नहीं कर सकता। 'मैला आंचल' में इसी अंचल विशेष की कथा रची गई है, उसमें मिश्रित या कचराही बोली का प्रयोग किया गया है। ध्यान दें कि नागार्जुन का मिथिलांचल या शिवपूजन सहाय का भोजपुरी अंचल कचराही या मिश्रित भाषा संस्कृति का क्षेत्र नहीं है, इसलिए उनकी आंचलिकता रेणु के कोशी क्षेत्र की आंचलिकता से नितांत भिन्न है। फिर रेणु सतीनाथ भादुड़ी को अपना कथा–गुरु मानते थे। उन्होंने लिखा भी है कि कथा–कहन की शैली उन्होंने सतीनाथ भादुड़ी से ही प्राप्त की थी। आंचलिक उपन्यास का पात्र व्यक्ति न होकर पूरा का पूरा अंचल ही होता है और उसकी पूरी जीवनचर्या एवं संस्कृति को उद्घाटित करना आंचलिक उपन्यास का उद्देश्य होता है। इसी मानी में रेणु का आंचलिक उपन्यास अपनी मौलिकता का दावा करता है।

'मैला आंचल' में देखा जाए तो 'ढोढाईचरित मानस' से आगे की काल कथा है। भादुड़ी जी आजादी के पहले की ग्राम कथा रचते हैं, तो रेणु आजादी के तुरंत पहले और बाद की कथा–संवेदना का आख्यान सुनाते हैं। दोनों की कथा–कहन की शैली एक होते हुए भी उसकी कथा–संवेदना और विजन में कोई मेल नहीं है, गो कि रेणु पर एक जमाने में आक्षेप किया गया कि उन्होंने 'ढोढाईचरित मानस' के नीचे कार्बन कॉपी रखकर 'मैला आँचल' की रचना की। दोनों उपन्यासों का टोन बिल्कुल अलग–अलग है। सन् 1954 में प्रकाशित मैला आंचल' ने कथा की उत्कृष्टता की समस्त पूर्ववर्ती और परवर्ती लेखन शैलियों को अपने में आत्मसात कर लिया जिसे उसकी विशिष्ट शैली और कथात्मक नवीनता की स्वीकृति देते हुए साहित्य जगत में महिमामंडित कर दिया गया। वैज्ञानिक साहित्येतिहास के प्रसिद्ध समालोचक आचार्य नलिनविलोचन शर्मा ने इसकी उत्कृष्टता और महनीयता की स्वीकृति की मुहर लगाकर साहित्य जगत में और भी हलचल पैदा करवा दी। इस उपन्यास पर आलोचकीय टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा, 'मैं अपने श्रेष्ठ उपन्यासों की सूची में 'गोदान' को छोड़कर किसी भी रचना को 'मैला आंचल' के लिए अपदस्थ कर सकता हूँ। (संदर्भः 'वाणी' पत्रिका, 'फणीश्वरनाथ रेणुः एक अंतर्कथा', सुरेंद्र चौधरी, पृ.120। नलिन जी की स्वीकृति ने 'मैला आंचल' के समीक्षकों और अध्येताओं का ध्यान बरबस उपन्यास को देखने–समझने और अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए आकृष्ट किया। हालाँकि इसके बाद 'परती परिकथा' रेणु का दूसरा सशक्त आंचलिक उपन्यास है जो शैली की महाकाव्यात्मकता, ग्रामीण शब्दावली के प्रयोग से ओतप्रोत और कलात्मक संयोजन से परिपूर्ण प्रौढ़ कृति है। इसके कथा फलक का वर्णन करते हुए रेणु ने लिखा है–कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया बिहार राज्य का एक जिला है। इसके एक ओर नेपाल, दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। विभिन्न सीमा रेखाओं से इसकी बनावट मुकम्मल हो जाती है, जब हम दक्षिण में संथाल परगना और पश्चिम में मिथिला की सीमा

रेखाएँ खींच लेते हैं। मैंने इसके हिस्से के एक गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा–क्षेत्र बनाया है।'

'मैला आंचल' का कथानक डॉ. प्रशांत और कमला के साथ मुख्य रूप से जुड़ा है। बालदेव और लक्ष्मी, महंत रामदास और रामप्रिय, कालीचरण, बामनदास आदि का पात्रत्व भी अपने–अपने क्षेत्र में त्याग, बलिदान, साहस और जोखिम से भरा है। कमला गाँव के एक जमींदार की बेटी है। रोगग्रस्त होने पर डॉ. प्रशांत उसका इलाज करते है। दोनों में प्यार हो जाता है। कमला गर्भवती हो जाती है जिसकी वजह से उसके पिता विक्षिप्त हो जाते हैं। डॉ. प्रशांत को गाँव की मिट्टी से इतना प्यार और आकर्षण हो जाता है कि वह वहीं रहकर दुःखी जनों के होठों पर मुस्कराहट लाने के प्रयत्न में जुट जाता है। वह पूरा का पूरा अंचल दुःख–दारिद्रय और शोषण–उत्पीड़न से इतना संतप्त है कि डॉ. प्रशांत गाँव के मैला आँचल के दाग को छुड़ाने का प्रतीक बन जाते हैं। उपन्यास ऐसे अनगिन प्रतीकों से भरा पड़ा है। मलेरिया केंद्र का उद्घाटन गाँव की परंपरागत आस्थाओं को पलटकर नवीन विचारों और इनके प्रति सहमति जताने का प्रतीक है, तो डॉ. प्रशांत के गाँव के कायापलट का प्रयास उसकी संवेदना, सहानुभूति और मानवीय सोच का परिचायक है। बालदेव के बीजक–पाल के समय लक्ष्मी का उसके समक्ष लालटेन जलाकर रखने से बालदेव के मन में पवित्र भाव आना, कमली के स्वप्न नदी के बाढ़ में बहना, कालीचरण के पक्ष में पंचायत में उठे हाथ, चरखा केंद्र में वृद्ध विरंथी दास का प्रौढ़ शिक्षा ग्रहण करना जागृति और अहसास का भाव ही तो जगाता है।

'मैला आंचल' के सभी पात्र समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं और जीवंत बने रहते हैं। सभी पात्रों में कोशी अंचल की मिट्टी की सोंधी महक है। अपनी अनगिन कमजोरियों के बावजूद ये पात्र अपने जीवन से निराश नहीं हैं, बल्कि अपनी साधारणता में भी असाधारण प्रवृत्ति का विकास करते हैं और मनुष्य बनने के लिए, अच्छा मानव बनने के लिए, अच्छी परिस्थितियाँ विकसित करने के लिए सभी अपने–अपने ढंग से प्रयत्नशील हैं। अशिक्षा, अविश्वास और रूढ़ियों से स्वतंत्र होने की सबमें तमन्ना है। स्वातंत्र्योत्तर भारत की नवचेतना की छटपटाहट, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना और प्रेम, मातृभाव तथा परस्पर सहयोग के बल पर ग्रामीण जीवन के धुँधलके में, मैलेपन में उजास लाना मैला आंचल के सभी पात्रों का उद्देश्य है। वास्तव में 'मैला आंचल' धर्मनिरपेक्ष सामासिक संस्कृति की संरचना का विन्यास रचता आख्यान है जिसने अपने कालजगत को समेटने का भरपूर प्रयास किया।

'परती परिकथा' में पूर्णिया जिला के उत्तर में नेपाल सीमा और दक्षिण में जलालगढ़ तक के विशाल बंजर परती पड़े भूभाग की वेदना कथा है। उजले बालू से

पटी धरती, बलुवाही सूखी जमीन, बंजर वीरान प्यासी धरती, धरती नहीं धरती की लाश सफेद कफन ओढ़े दीखती है। कहीं–कहीं झरबेरी के पौधे और कहीं–कहीं बाँस के कुछ नीरस झाड़, बस! आजादी के पहले इस क्षेत्र की यही झाँकी थी। रेणु का गाँव हिंगना औराही इसी वीरान परती मिसराहा धत्ता (बंजर) के पश्चिमी छोर पर है। इसलिए उपन्यास में वर्णित सारा सत्य रेणुजी का अनुकूल सत्य है। कोशी पीड़ित गाँव परानपुर के इर्द–गिर्द यह कहानी चलती रहती है। गाँव के जमींदार शिवेंद्र मिश्र हैं जिनकी हवेली में जितेंद्र जैसा एक स्वप्नजीवी युवक रहता है जो अभिशप्त परती धरती को हरा–भरा बनाना चाहता है।

आजादी के बाद नयी पंचवर्षीय योजनाओं के दरम्यान अफसरों की मनमानी, भ्रष्टाचार के आलम में सरकारी आबंटनों की लूट के बीच आम आदमी का योगदान तथा परानपुर के उत्थान एवं प्रगति के लिए युवाओं का सतत् प्रयास उन्हें संघर्ष की राह में ढकेलता है। हाल में कोशी नदी की विनाशकारी लीला आजादी के दशकों बाद भी कोशी को नियंत्रित नहीं किए जाने के कारण शताधिक गाँव जलमग्न हो गए, ध्वस्त हो गए, लाखों लोगों को कोशी डायन ने पुनः अपने आगोश में निर्ममतापूर्वक समा लिया और जितेंद्र जैसे युवकों के धरती के हरा–भरा करने के प्रयास, बुलडोजरों, ट्रैक्टरों की आवाज तथा आकाश में उड़ते सामा चकेवा, पनकौआ, वनमुर्गी, लालसर जैसे पक्षियों को मखाने–सिंघाड़े, कमलगट्टे और पानी फल के लिए उतरो–उतरो परानपुर में तुम्हारा स्वागत है, का आमंत्रण किस मुँह से दिया जाए, जब डायन कोशी ने हमारी लापरवाही का फायदा उठाकर सहरसा, सुपौल, मधेपुरा, अररिया, पूर्णिया और किशनगंज की परती जमीन पर पुनः उजले बालू और दूर–दूर तक वीरानगी फैला दी। यदि रेणु जी आज हमारे बीच होते तो उन्हें एक और बालुकामय प्रलय परिकथा लिखना पड़ता और कथाकार कमलेश्वर को पुनः लिखना पड़ता कि यह 'परती परिकथा' नहीं, मानवीय और प्राकृतिक उद्वेलन का बालुकामय रेत है, यह गद्य, नहीं कोशी की विनाशलीला की दास्तान है। इस परती परिकथा उपन्यास की कोशी–योजना, बालुकामय राशि से पूरित जमीन को सिंचित करने का प्रयास सचमुच विशाल और ईमानदार मानव आकांक्षा का प्रतीक हो सकता है क्या?

'दीर्घतपा' उपन्यास की नायिका बेला गुप्ता है जिसके बारे में स्वयं रेणु जी ने लिखा है–'एक हीन मनोवृत्ति का कोहरा युद्ध के बाद से ही घना होकर सारे समाज पर छा रहा है। इस धुंध में दीपावली की तरह खिली बेला बुझ गई। (दीर्घतपा, पृ.–159) जहाँ बेला गुप्ता एक प्रगतिशील नारी है, वहीं ज्योति आनंद आज के सड़े–गले पतित जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। वह आधुनिक बनकर अनैतिकता, व्यभिचार तथा घिनौने आचरण का मिलाजुला प्रतिरूप है, जबकि बेला गुप्ता अच्छाई के लिए संघर्ष करने वाली विद्रोहिणी नारी है। इस उपन्यास में अच्छे–बुरे दोनों ही

पहलुओं को सामने रखकर समाज को एक खास नसीहत दी गई है। अपने 'जुलूस' उपन्यास के बारे में रेणुजी ने लिखा है–दिन–रात, सोते–बैठते, खाते–पीते मुझे लगता है कि एक विशाल जुलूस के साथ चल रहा हूँ। इस भीड़ से अलग होने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। इस जुलूस में चलने वाले नर–नारियों से मेरा परिचय नहीं है, लेकिन. .. मैं छिटककर अलग नहीं हो सकता। (जुलूस. पृ.–5) लेखक ने उपन्यास में मुख्य रूप से स्वराज का जश्न मनाने के लिए फर्क चिह्नित किया है और स्वराज का जश्न मनाने के लिए आयोजित इस जुलूस में वह सुराज की तलाश करता है। उपन्यास में शरणार्थी शिविर में सेवा सहायता तथा लोक संस्कृति से परिपूर्ण चरित्र वाली पवित्र तथा हैजे से परेशान पहलवान को मृत्यु के मुख से निकालने वाली सरस्वती जीवंत नारी पात्र है। 'कितने चौराहे' रेणु का अंतिम उपन्यास है, जिसमें 1942 में गांधी जी के आह्वान पर 'करो या मरो' तथा 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' की पुकार पर एक किशोर के आंदोलन में कूद पड़ने की घटना–प्रधान कहानी है। इसमें स्वदेश प्रेम और प्रलोभन रहित देश–सेवा के भाव को दर्शाया गया है। कहानी का मुख्य पात्र जगमोहन एक होनहार युवक है जो अपने पियक्कड़ मामा के घर रहकर भी अपनी त्रैमासिक परीक्षा में अव्वल आता है और विपरीत परिस्थितियों में बिना किसी प्रकार के नशा सेवन और बुरे व्यसन में पड़े जीवन के किसी अनिष्टकारी चौराहे पर भटकता नहीं है, बल्कि अपने निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होता है। वहीं महाराज की उस हिदायत का सख्ती से पालन करता है, जब वह कहता है कि कभी झोंक में आकर तुम भी पढ़ना–लिखना छोड़ मत देना, अभी सीधे बढ़े चलो, राह में छाँह में कभी बैठना नहीं है, कितने चौराहे आएंगे, न दाएँ मुड़ना न बाएँ, सीधे चलते जाना। (कितने चौराहे, पृ.–99)

कथा–शिल्पी फणीश्वरनाथ रेणु ने अपनी कहानियों में भी ग्रामांचलों के लोकगीतों, परंपराओं, रूढ़ियों, पंचायतों, सड़कों की धूल, धूप, रोशनी, प्रेम–घृणा, लोभ–मोह, ऊँच–नीच आदि हर प्रकार की अच्छाइयों–बुराइयों का यथार्थ चित्रण किया है। प्रेमचंद ने आजादी के पहले के सामंतो, पूँजीपतियों और महाजनों पर चोट करते हुए सामाजिक–आर्थिक शोषण का जो चित्र अपनी कहानियों में खींचा है, उसी से मिलती समस्याएँ आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। रेणु ने आजादी के बाद के भारत की जीवन–दशा का वर्णन 1949 में पूर्णिया से प्रकाशित 'नई दिशा' पत्रिका के संपादकीय में इस प्रकार से किया है– 'सुराज हुआ है प्रखर, लेकिन हमारे लिए नहीं। वह सुराज हुआ है बिड़लाओं के लिए, टाटाओं के लिए, डालमियाओं के लिए, देशी नरेशों और जमींदारों के लिए, भ्रष्टाचारियों के लिए। यह जनता का सुराज नहीं। महाभारत छिड़ा हुआ है। जनता का संघर्ष अभी जारी है। दरिद्रता, भूख और रोगों से अभी मरने वाले एक–एक प्राणी को आज एक शहीद कहते हैं, क्योंकि दुश्मनों के उन अस्त्रों से जूझने वाले, मरने वाले वीरों को हम वर्गसंघर्ष से लड़ने वाला सिपाही कहते

हैं। इस भ्रष्टाचार के आलम में घुट–घुट कर मरने से अच्छा है एक ही बार कुछ करना या करते–करते मर जाना।' कारयित्री प्रतिभा के धनी लोक चितेरे रेणु के उपन्यासों और कहानियों में उनकी इन्हीं धड़कनों, संवेदनाओं और आंचलिकता के व्याज से राष्ट्रीय नव निर्माण का वितान फैला है, जिसके मध्य में मनुष्य है, उपेक्षित–प्रताड़ित मनुष्य और इनके आलंबन के रूप में प्रकृति–जनन के झरने, जल, पक्षी तथा समस्त जीवनदायी शक्तियाँ खड़ी हैं। 'मैला आंचल' उपन्यास और 'मारे गए गुलफाम उर्फ तीसरी कसम' कहानी अपनी श्रेष्ठता में रेणु की अन्य रचनाओं को पीछे छोड़ जाती है। इस रूप में मानो ये रचनाएँ उनके व्यक्तित्व के ही पूरक उपादान हैं। हालाँकि रेणु की इन शेष रचनाओं की गुणवत्ता, शैली, संदर्भ और कथ्य की दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, लेकिन पाठक के मानस में 'मैला आंचल' और 'तीसरी कसम' रेणु के पर्याय रूप में ही पैठे हुए हैं, जैसे तुलसीदास की रचनाओं में 'रामचरितमानस', प्रेमचंद की रचनाओं में 'गोदान', गोर्की की रचनाओं में 'माँ', निराला की रचनाओं में 'राम की शक्तिपूजा', जयशंकर प्रसाद की रचनाओं में 'कामायनी', नागार्जुन की रचनाओं में 'बलचनमा' आदि।

'मैला आंचल' और 'तीसरी कसम' रेणु के पाठकों में उनकी अन्य रचनाओं की तुलना में ज्यादा रची–बसी हैं, फिर भी उनकी अन्य रचनाएँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। कथावस्तु, शिल्पविधान और कथ्य सौंदर्य की ही दृष्टि से देखें तो 'ठुमरी', 'एक श्रावण दोपहरी की धूप', 'अच्छे आदमी', 'आदिम रात्रि की महक', 'अगिनखोर' आदि कथा–संग्रहों की कहानियाँ भी काफी महत्त्वपूर्ण हैं। यहाँ सबकी चर्चा संभव नहीं है, फिर भी कुछ कहानियों पर विमर्श किया ही जा सकता है। 'रसप्रिया' कहानी में मिरदंगिया, मोहना और उसकी माँ का चरित्र आया है जिसकी बुनावट में अतीत की स्मृति, भविष्य का नयापन तथा चित्रात्मक शैली अंकित है। 'तीसरी कसम' में हीरामन और हीराबाई के प्रेम का चित्रण है, जिसमें संयोगवश एक मेले के अवसर पर नाचनेवाली कलाकार हीराबाई से हीरामन गाड़ीवान की मुलाकात होती है। कहानी में हीरामन नर्तकी हीराबाई के प्रति आकृष्ट होता है, किंतु वह यह भी समझता है कि हीरामन के लिए हीराबाई अप्राप्य है। यहाँ हीराबाई हीरामन के प्रति झुकाव दर्शाती है, किंतु उसे यह भी पता है कि उसे अपना काम खत्म कर कंपनी के साथ अन्यत्र चले जाना है। इसी पृष्ठभूमि में दोनों के बीच परस्पर प्रेमाकर्षण तो है, किंतु द्वंद्व भी है। कहानी में हीरामन और हीराबाई के बीच संवेदना और मीठी कसक के बावजूद अप्राप्यता की स्थिति शुरू से बनी रहती है। हीराबाई कहती है– 'हीरामन इधर आओ अंदर, मैं फिर लौटकर जा रही हूँ। मथुरा मोहन कंपनी में। अपने देश की कंपनी है। बनैली मेला आओगे न! तुम्हारा जी बहुत छोटा हो गया? क्यों गीता? और इसी कथा–प्रसंग के साथ हीरामन का अकेलापन उसमें ही खदककर समा जाता है। यह प्रेम संवेदना कहानी के अंत में मौन हो जाती है, अनकही रह जाती है। केवल अनुभूति

और जिजीविषा के स्तर पर उसमें जीवंतता बनी रहती है। 'तीसरी कसम' का सूक्ष्म कथात्मक गठन, घटना और चरित्र आंतरिक संवेदनाओं में लिपटकर रह जाता है। 'लाल पान की बेगम' कहानी में नारी का अवसाद और उल्लास की मिली–जुली स्थितियों का संवेदनक्षम चित्रण हुआ है। इस कहानी में बिरजू की माँ और उसके पिता की घरेलू जिंदगी के ऊहापोह का प्रकटीकरण है, जो निम्नवर्गीय परिवारों में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। जब वह अपने पति को उलाहने देती हुई कहती है कि 'कोल्हू के बैल की तरह खट–खट कर सारी उम्र काट दी इसके यहाँ। कभी एक पैसे की जलेबी भी लाकर दी है उसके खसम ने?' ऐसे उलाहनों के अनगिनत चित्र इस कहानी में देखने को मिलते हैं।

रेणु की कहानियों में ग्रामीण जीवन के सामाजिक–सांस्कृतिक ताने–बाने में प्रेम के अद्‌भुत चित्रण देखे जा सकते हैं। 'पंचलाइट' कहानी की घटना पेट्रोमेक्स खरीदने और जलाने की गंवई राजनीति के बहाने उस दलदल में अद्वितीय प्रेम की कहानी है। गाँव में जरूरी सामानों को हर जाति–टोले में रखने की देखा–देखी में महतो टोली में भी पेट्रोमेक्स लाना जरूरी समझा जाता है। पर गाँव में ढिबरी से रोशनी करने वालों में पेट्रोमेक्स जलाने का शऊर कहाँ है। तो वैसे में गोधन की पूछ बढ़ जाती है, क्योंकि केवल उसे ही उस टोले में पेट्रोमेक्स जलाना आता है। इस हुनर के कारण मुनरी से प्रेम करने की सजा, जो उसे मुनरी को सिनेमा का गाना सुनाने के कारण पंचायत द्वारा दी गई थी, माफ कर दी जाती है। प्रेम की जीत होती है और योग्यता गाँव के सिर चढ़कर बोलती है। 'नैना जोगिन' में गाँव के जमीदार द्वारा किए गए बलात्कार के प्रतिरोध में सरेआम विद्रोह कर दिया, फिर भी गाँव वालों ने उसे आकर कुछ कहकर गाँव से बहिष्कृत कर दिया। नैना जोगिन साधारण मजदूरिन से जमींदारिन बन गई। जमींदार माधो बाबू उसके तलबगार बन गए। नैना जोगिन का खेल चलता है और सब कुछ जादू की तरह घटित होता है। वह एक आजाद पसंद औरत है, जो आगे चलकर निर्णय लेती है 'जहाँ से हो कोख तो भर के लौटूंगी, गाँब तुमको जाना हो, तो माधो बाबू टिकट कटाकर गाड़ी में बैठा देंगे।' सवाल यह रह जाता है कि नैना की कोख भरी कि नहीं अर्थात् इंकलाब आया कि नहीं? वक्त ने स्वाभाविक दर्शन दिया कि 'कर्म पर नजर रखो, फल पर नहीं।' आशा और आसक्ति का भाव पैदा करना ही रेणु का लक्ष्य है। आजादी का वातावरण और कर्म की प्रधानता ही 'नैना जोगिन' कहानी की विशेषता है। 'भित्तिचित्र की मयूरी' कहानी में लोक प्रचलित चित्रकारिता की कला की बेहतर बानगी देखने को मिलती है। इसमें लोकनृत्य, लोकधुन और लोकगीत के अंकुर फूटते दीखते हैं। इस कहानी की नायिका है फुलपत्ती, जिस पर उसकी माँ की कला चढ़कर बोलती है। वह कला की संरक्षिका बनकर उभरती है और कहती है कि चाहे कलाप्रिय लोग उसकी कला को खरीद लें, किंतु सच्चा कलाकार, चाहे कितना भी दरिद्र

क्यों न हो, कभी बिकता नहीं। कला के प्रति यह स्वाभिमान ही इस कहानी की आत्मा है। इसी तरह 'उच्चारण', 'प्रजासत्ता', 'लफड़ा', 'एक श्रावणी दोपहर की धूप', 'कस्बे की लड़की' आदि कहानियाँ एक विशिष्ट उत्तेजना की प्रेम कहानियाँ हैं, जो मानव मन की प्रेमिल कोमलता को व्यक्त करती हैं।

फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य में ग्रामीण जीवन की अच्छाइयों–बुराइयों, रूढ़ियों मान्यताओं, सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था के अंतर्गत जातीय दर्प, उत्सवों–त्योहारों, का चारु चित्रण दिखाई पड़ता है। लोकनृत्य प्रथा लोक साहित्य के अंतर्गत लोककथाओं जैसे 'परती परिकथा' में पंडुकी की कथा, कोसी मैया की कथा, सारंगा–सदावृज की कथा, परमादेव की सवारी, ब्रह्मपिशाच, रानी डुबी घाट, दुलारी दाय, परगना हवेली, सामा चकेवा आदि के मनभावन चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। इसी तरह मैला आंचल में कमला मैया की कथा, कुमार विज्जेमल की कथा, कौरा कैथा की कथा, लोरिक की कथा आदि का ललित आख्यान पढ़ने को मिलता है, जिससे उस क्षेत्र की सांस्कृतिक लोकचेतना का बोध होता है। उनकी कहानियों में अस्त्र–शस्त्र, वस्त्रों, वनस्पतियों, भोज्य पदार्थों, कृषि यंत्रों, पशु–पक्षियों आदि के उल्लेख भरे पड़े हैं। उनकी रचनाओं में 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' का आदर्श कायम रखा गया है। ग्रामीण शब्दों के कलात्मक प्रयोग में रेणु का कोई सानी नहीं है, मसलन 'कसम' के लिए 'किरिया', 'पत्नी' के लिए 'आंगनवाली', 'सुगंधित' के लिए 'गमकौआ', 'गाँठ' के लिए 'गिरहा', 'पगडंडी' के लिए 'चारे पैड़ा', 'नित्यक्रिया' के लिए 'मैदान' 'अंगीठी' के लिए 'चोरती', 'सुबह' के लिए 'मुरुकवा', 'रसोईघर' के लिए 'भनसा घर', 'संशय' के लिए 'धुकधुकी', 'सिनेमा' के लिए 'सलीमा', 'शोर मचाने' के लिए 'किकियाना' आदि शब्द प्रयोग रेणु के आंचलिक साहित्य–सृजन की विशेषता हैं, भाषा और अंचल के छोरों पर जीवन का आकाश हैं। किसी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन की संपूर्णता को व्यक्त करने के लिए उसे एक चरित्र के रूप में प्रस्तुत करने की अद्भुत कला रेणु के लेखन की सर्वोपरि विशेषता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण नये–नये रचनाकारों के लिए रेणु के बिंब, प्रतीक, शब्द, भाव–विधान, चित्रात्मक शैली और अंचल के सहज स्वरूप धरोहर हैं, आधारभूमि हैं, सृजन भूमि हैं। फणीश्वरनाथ रेणु के कथालोक का चरित्र वह अंचल विशेष है, जिसका जीवन–सौंदर्य देश–दुनिया को अपने मोह–आकर्षण का आमंत्रण देता है– 'मितवा इधर आओ अंदर, मैं यह देश–दुनिया तुम्हें सौंपकर जा रहा हूँ! तुम आओगे न मुझसे मिलने!'

❑❑❑

# निर्मल वर्मा के निबंधों में सांस्कृतिक चिंतन

**प्रदीप कुमार**
प्रोफेसर, श्रद्धानंद कॉलेज, हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

मानव चेतना का मूल लक्षण है उसकी सृजनशीलता। अनुकूल हो या प्रतिकूल, हर परिस्थिति में मानव की सृजनात्मक ऊर्जा निरंतर प्रवाहित रहती है। उसके अंतर्मन में छिपे रहस्य विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होते हैं और समय के साथ परिष्कृत भी होते रहते हैं। प्राचीन काल से ही यह परिष्कार और शोधन की प्रक्रिया अनवरत जारी है। वह पशु से मानव बना, असभ्य से सभ्य हुआ। इस यात्रा में उसके आचार–विचारों में निरंतर विकास हुआ और उस पर संस्कार अंकित होते गए। मानसिक, शारीरिक और सांस्कृतिक परिष्कार के माध्यम से मानव ने स्वयं के साथ–साथ समाज को भी उन्नत किया। यही विकास और संस्कारों का सुधार संस्कृति के रूप में जाना जाता है।

निर्मल वर्मा ने अपने निबंधों में अनेक विषयों पर गहन चिंतन किया है, जिनमें संस्कृति और सभ्यता पर उनके विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके निबंध जैसे 'भारत और यूरोपः प्रतिश्रुति के क्षेत्र', 'अतीत एक आत्ममंथन', 'भारतीय संस्कृति और राष्ट्र', 'क्यों भारतीय संस्कृति को बचाना आवश्यक है', 'शताब्दी के ढलते वर्षों में', और 'भाषा और राष्ट्रीय अस्मिता' इस दिशा में विचारणीय हैं। संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है, जिसमें कला, समाज, धर्म, संगीत, भाषा, साहित्य, और शिल्प जैसे तत्त्व समाहित हैं। अध्ययन की सुगमता के लिए इसे विभिन्न अंगों में विभाजित किया गया है, पर निर्मल वर्मा की संस्कृति संबंधी दृष्टि इन सभी तत्त्वों को एक सूत्र में पिरोती है। उनकी चर्चा कभी भाषा से, कभी कला से, कभी संगीत, धर्म या समाज से जुड़ती है अर्थात् संस्कृति उनके लिए एक समग्र चेतना है। अपने निबंधों में उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के स्वरूप को रेखांकित किया है, साथ ही संस्कृति की रक्षा, उसके संकट, अतीत की परंपराओं, और वर्तमान की चुनौतियों पर भी विचार व्यक्त किए हैं। वे भारतीय संदर्भ में संस्कृति के प्रश्नों का पुनर्मूल्यांकन करने की आवश्यकता पर बल देते हैं और उन संकटों पर आत्ममंथन तथा कारण–विश्लेषण को अनिवार्य मानते हैं, जिनसे हमारी संस्कृति गुजरी है।

निर्मल वर्मा के संस्कृति संबंधी विचार आज भी शाश्वत और प्रासंगिक हैं। उनका मानना है कि भारतीय समाज को शताब्दियों से संस्कृति और सभ्यता ने एकजुट रखा है। राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा के लिए यहाँ बार–बार पुनर्जागरण और पुनर्निर्माण की प्रक्रियाएँ चली हैं। युद्ध, आंदोलन, विभाजन, अकाल, और प्राकृतिक आपदाओं जैसी विपरीत परिस्थितियों का यहाँ दीर्घ इतिहास रहा है, जिनका समाज और राष्ट्र की मानसिकता पर गहरा प्रभाव पड़ा। मुगल, विदेशी, और स्वदेशी आक्रमणकारियों के आतंक ने हमें कभी पूर्णतः मुक्त नहीं होने दिया। धर्म, भाषा, और संप्रदाय के नाम पर घृणा और विभाजन बढ़ता गया। 'क्यों भारतीय संस्कृति को बचाना आवश्यक है?' निबंध में निर्मल वर्मा इस बढ़ती सांप्रदायिकता पर गहरी चिंता व्यक्त करते हैं: "हिंदुस्थान धर्मावलंबन है, जो सहज रूप से लोगों की जीवन मर्यादा में रचा–बसा है हमें उसे छद्म सांप्रदायिकता से अलग करना होगा, जो असहज और बाहर से आरोपित की जाती है। इस दृष्टि से भारतीय चरित्र के लिए 'धर्मनिरपेक्षता' या "Secularisum भी असहज एवं आरोपित है।"[1]

वे बताते हैं कि भारतीय संस्कृति में धर्म सहज रूप से जीवन का हिस्सा है, इसे बाहर से थोपा नहीं जा सकता। भारतीय अपने धार्मिक विश्वासों में जीता है, जहाँ धर्म का अर्थ केवल Religion नहीं बल्कि एक व्यापक संकल्पना है। धर्म का मूल प्रश्न है– मैं कौन हूँ? मनुष्य की अब तक की परिभाषाएँ अधूरी हैं और जब तक मनुष्य की परिभाषा पूर्ण नहीं होगी, धर्म की परिभाषा भी अपूर्ण रहेगी। संस्कृति की अभिव्यक्ति में इसके तत्त्व निहित होते हैं। भारतीय संस्कृति को परिभाषित करने का प्रयास आदिकाल से जारी है, पर इसे गणितीय सूत्रों या शास्त्रीय नियमों में बाँधना संभव नहीं। परमहंस ने कहा था, "मनुष्य की सेवा करो", जिसे विवेकानंद ने आगे बढ़ाया। हमारी संस्कृति की जड़ें अमरता के स्रोतों में हैं, जिन्हें प्रेम और ममता ने पोषित किया है। इसे ही धर्म नहीं मानते? विभिन्न धर्मों के सिद्धांत भले ही अलग हों पर एक शाश्वत भाव हर जगह मौजूद है, जिसे निर्मल वर्मा "पवित्रता का भाव" कहते हैं: "यह 'पवित्रता का भाव' सारी सृष्टि से रिश्ता जोड़ता है। इसमें पशु, पक्षी, प्राणी सारे अपनी गरिमा से जीते हैं। यही 'पवित्रता का बोध' हमारी संस्कृति और धर्म की पहचान है।"[2]

हिंदू, यहूदी, और पारसी धर्मों में उनके कर्मकांड, अनुष्ठान, और प्रतीक अलग–अलग हैं, पर ये सभी संकीर्णता से मुक्त हैं और मानवता के कल्याण को समर्पित हैं। निर्मल वर्मा लिखते हैं: "प्रश्न संप्रदायों की छोटी बड़ी संख्याओं का नहीं बल्कि छोटे बड़े संप्रदायों से मिली एक ऐसी धर्म संपन्न संस्कृति का है जिसमें सिख, हिंदू, मुसलमान ही नहीं, हजारों लाखों आदिवासी भी रहते हैं। ये सब संप्रदाय और जातियाँ हजारों वर्षों से एक विशिष्ट भौगोलिक परिवेश में सिर्फ रहते नहीं, बल्कि इन्होंने एक दूसरे के जातीय धार्मिक और सामाजिक चरित्र को लेन–देन के सहिष्णु

व्यवहार से अद्भुत रूप से समृद्ध बनाया है।"[3] भारत वह भूमि है, जहाँ भौगोलिक परिवेश के साथ–साथ बहुजातीय, बहुधार्मिक, और बहुसांस्कृतिक संगम है, जो राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति के भाव से समृद्ध हुआ है। इस "पवित्रता के बोध" ने भारतीय संस्कृति को विशिष्ट बनाया है। निर्मल वर्मा उदाहरण देते हैं कि पंजाब में भिंडरावाले के आतंक के बावजूद हिंदू–मुस्लिम दंगे नहीं हुए। वे तुलना करते हैं कि इस्लामी देशों में धार्मिक कट्टरता के कारण हिंसा होती है, कम्युनिस्ट देशों में छोटे राष्ट्रों की संस्कृति नष्ट की जाती है और पश्चिमी देशों ने उन्नीसवीं सदी में अफ्रीकी–एशियाई संस्कृतियों को भ्रष्ट किया। भारत में पिछले तीस वर्षों में भौतिकवादी, परजीवी जीवनशैली का विकास हुआ है, जिसके परिणामस्वरूप पंजाब की हत्याएँ, दिल्ली के दंगे, और विभाजनकालीन हिंसा जैसी त्रासदियाँ हुईं। वे लिखते हैं: "वे एक भयानक राष्ट्रीय ट्रेजेडी के परिणाम थे, हिंसा तब भी थी तब भी वह अक्षम्य थी, किंतु उस हिंसा के पीछे गहरी, आहत प्रतिक्रियात्मक भावनाएँ थीं, मानवीय भावनाएँ अमानवीय कृत्यों को जन्म देती हैं।[4]

निर्मल वर्मा इन घटनाओं का ऐतिहासिक संदर्भ देते हैं। इंदिरा गांधी की हत्या उनके सिख अंगरक्षकों द्वारा होना ऐतिहासिक विडंबना थी, जैसी कि गुरु गोविन्द सिंह की हत्या उनके विश्वासपात्र मुसलमान द्वारा हुई थी। वे लिखते हैं: "मैं बरसों इंदिरा गाँधी की नीति से असहमत रहा हूँ किंतु जिस स्थिति में उनकी हत्या हुई उसके भीषण परिणामों की कल्पना करना असंभव है।"[5] आज भी सांप्रदायिक दंगे, हत्याएँ, और लूटमार भौतिक लिप्सा, मानसिक छिछोरापन, और बर्बरता से प्रेरित हैं, जिनका धर्म, संस्कृति, या संप्रदाय से कोई लेना–देना नहीं। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, गाँधी, आंबेडकर, नानक, और कबीर जैसे महान व्यक्तियों की परंपरा ने प्रेम, अहिंसा, और मानवता को पोषित किया, फिर भी गुजरात जैसे दंगे क्यों होते हैं? मंदिर–मस्जिद के नाम पर आतंक क्यों फैलता है? गाँधी की जन्मभूमि में हिंसा का क्रूर रूप देखना विडंबना है। निर्मल वर्मा आत्ममंथन और आत्मबोध की बात करते हैं, जो आज भी प्रासंगिक है। वे लिखते हैं: "संकट की घड़ी में अपनी परंपरा का मूल्यांकन करना एक तरह से खुद अपना मूल्यांकन करना है, अपनी अस्मिता की जड़ों को खोजना है। हम कौन हैं? यह एक दार्शनिक प्रश्न न रहकर खुद अपनी नियति से मुठभेड़ करने का तात्कालिक प्रश्न बन जाता है।"[6]

संस्कृति की व्यापकता और उसकी विवेचना हर देश की संस्कृति उसके साहित्य, कला, संगीत, धर्म, दर्शन, इतिहास और भूगोल में निहित होती है। यह मानव जीवन से गहराई से जुड़ी है और किसी देश के गौरव, महानता, और गरिमा को रेखांकित करती है। संस्कृति सामाजिक व्यवस्था से आँकी जाती है और राष्ट्र के गठन में उसकी नींव का काम करती है। निर्मल वर्मा ने अपने निबंधों में संस्कृति के विकास,

संकट और दो संस्कृतियों के टकराव पर विस्तार से चर्चा की है। 'भारत और यूरोपः प्रतिश्रुति के क्षेत्र' में वे भारतीय और यूरोपीय संस्कृति की विशेषताओं को तुलनात्मक दृष्टि से देखते हैं। दोनों के मेल को वे असंभव मानते हैं पर भारतीय संस्कृति की आंतरिक शक्ति पर बल देते हैं, जो विदेशी आक्रमणों के बावजूद खुद को सुरक्षित रखती है। वे लिखते हैंः "भारत का अतीत मिस्र और यूनान के उस अतीत की तरह नहीं था, जिसकी प्राचीन स्मृति के टुकड़ों को विस्मृति की धूल से बचाने की आवश्यकता पड़ती, इस अतीत को खोदकर इसलिए निकाला नहीं जा सकता था क्योंकि इसे कभी दफनाया ही नहीं गया था। भारत का अतीत सनातन रूप से समकालीन उसी तरह जैसे अतीत के विश्वासों और संस्कारों में वर्तमान सनातन रूप से अनुबंधित था, अपने धर्म में स्थित जो अनादि अनंत है।"[7] भारतीय संस्कृति का स्वभाव समन्वयकारी है। मिथक, पुराण, और धर्मग्रंथों के सहारे इसने अपनी रक्षा की। हेगेल और मैक्समूलर जैसे विद्वानों को भी भारतीय संस्कृति की निरंतरता स्वीकार करनी पड़ी। यह अतीत संग्रहालयों की वस्तु नहीं बल्कि हर भारतीय के मानस में जीवित है। निर्मल वर्मा चिंतित हैं कि पश्चिमी सभ्यता और आधुनिकता ने भारतीय संस्कृति को विकृत किया है। उनका मानना है कि– "हजारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति को एक ऐसी ध्वंसात्मक लोलुप सभ्यता का सामना करना पड़ा है जो प्रगति और पश्चिमीकरण के नाम पर भारत की परंपरागत दृष्टि को नष्ट कर रही है।"[8]

पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग आधुनिकता का दास बन गया है। वे अपनी संस्कृति को पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस करते हैंः "पिछले दो सौ वर्षों से मेरी संस्कृति की लय और रौ को इतनी बुरी तरह विकृत किया गया है। मैं इस विडंबना को तब तक नहीं सुलझा सकता जब तक कि मैं पश्चिमी सभ्यता के संकट के संदर्भ में स्वयं भारतीय संस्कृति से जो मेरा संबंध रहा है, उसे पुनर्परिभाषित करने का प्रयास और साहस न करूँ।"[9]

'संस्कृति का संकट और आत्ममंथन' निबध में निर्मल वर्मा भारतीय संस्कृति की विशालता पर बल देते हैं, जो विभिन्न जातियों, जनजातियों, और धार्मिक समुदायों को आत्मसात करती है। भारत ने यवन, शक, पारसी, और हूण जैसे विदेशी समुदायों को एकसूत्र में बाँधा। निर्मल वर्मा मानते हैं कि "एशियाई एकता की स्थापना में भारत का ऐतिहासिक योगदान यह था कि उसने अपनी सार्वभौमिकता की पुरातन प्रवृत्ति, सार्वभौम मानव और सार्वभौम समाज की अपनी धार्मिक धारणा तथा सार्वभौम सांस्कृतिक राज्य तथा अपने राजनीतिक सिद्धांत का प्रसार अपनी सीमाओं से बाहर किया।"

निर्मल वर्मा भारतीय मानसिकता की इस स्थिति को स्वप्न–सदृश मानते हैंः "जहाँ न पूरा अँधेरा है न पूरी रोशनी, बल्कि इतिहास की एक ऐसी धुंधली कुहेलिका है, जिसमें न पूरा सत्य दिखाई देता है, न पूरा झूठ। लगता है जैसे हम परंपरा और

आधुनिक हाशिये पर जी रहे हैं। न एक में हमारा घर है, न दूसरे में हमारी सुरक्षा।" भारतीय परंपरा और आधुनिकता के बीच की यह आत्मकुंठा चिंताजनक है। हम एक अजीब आत्मकुंठा और अपराध भाव से ग्रस्त हो गए हैं क्योंकि एक तरफ हम ऐसी संस्कृति के प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं जो जीवन में संपूर्णता का स्वप्न पालती है, दूसरी तरफ हम आधुनिक युग की मान्यताओं से भी एकीकृत होना चाहते हैं, जो संपूर्णता के इस आदर्श को दिन–पर–दिन अधिक खोखला बनाती जाती है।

निर्मल वर्मा संस्कृति के संरक्षण को अनिवार्य मानते हैं। उनका मानना है कि संस्कृति के प्रतीक, मिथक, विश्वास, और भूगोल को संरक्षित करना हमारा कर्तव्य है। शिल्प, चित्र, वास्तु, और ग्रंथों में निहित हमारी संस्कृति को नष्ट होने से बचाना होगा। भारतीय जीवनपद्धति, रीति–रिवाज और मानवीय मूल्यों का संरक्षण ही संस्कृति को जीवित रखेगा।

कहा जा सकता है कि निर्मल वर्मा के संस्कृति संबंधी चिंतन में भारतीय संस्कृति एक जीवंत और समन्वयकारी शक्ति के रूप में है जो सहस्राब्दियों से विभिन्न जातियों, धर्मों और परंपराओं को आत्मसात करती रही है। उनकी दृष्टि में संस्कृति केवल कला, साहित्य या धर्म तक सीमित नहीं बल्कि यह जीवन की समग्रता को समेटने वाली चेतना है जो पवित्रता के बोध से सन्नादित है। यह बोध प्रकृति, परंपरा और आत्म के लगाव से पुष्ट होता है, जो भारतीय अस्मिता की जड़ों को मजबूत करता है। निर्मल वर्मा भारतीय संस्कृति के संकटों जैसे– सांप्रदायिकता, आधुनिक औद्योगिकीकरण और पश्चिमी प्रभाव पर गहरी चिंता व्यक्त करते हैं, जो परंपरा और आधुनिकता के बीच की खाई को गहरा करते हैं। वे आत्ममंथन और अतीत के पुनर्मूल्यांकन को आवश्यक मानते हैं ताकि हम अपनी सांस्कृतिक निरंतरता को समझ सकें और उसे संरक्षित कर सकें। उनकी चेतावनी स्पष्ट है कि यदि हम मिथकों, प्रतीकों, और पर्यावरण से जुड़े मूल्यों को नष्ट होने देंगे, तो हमारी संस्कृति का वह पवित्र परिवेश लुप्त हो जाएगा, जो हमें एकजुट रखता है। निर्मल वर्मा का आह्वान है कि भारतीय संस्कृति के संरक्षण के लिए हमें इसके शिल्प, ग्रंथ, रीति–रिवाज, और मानवीय मूल्यों को जीवित रखना होगा। यह दायित्व केवल परंपरा का पालन नहीं, बल्कि एक ऐसी सशक्त जीवनपद्धति का निर्माण है जो वर्तमान चुनौतियों का सामना करते हुए भावी पीढ़ियों को सांस्कृतिक एकता और गरिमा प्रदान करेगा। उनकी यह दृष्टि आज भी प्रासंगिक और प्रेरणादायी है।

**संदर्भ:**


1. निर्मल वर्मा. 'ढलान से उतरते हुए', पृ. 118
2. वही, पृ. 85
3. वही, पृ. 119
4. वही, पृ. 121

5. वही, पृ. 121
6. निर्मल वर्मा 'अतीत एक आत्ममंथन', पृ. 19
7. निर्मल वर्मा . 'भारत और यूरोप प्रतिश्रुति के क्षेत्र', पृ. 34—35
8. निर्मल वर्मा- 'शताब्दी के ढलते वर्षों में', पृ. 66
9. वही, पृ. 142

❑❑❑

**यश है न वैभव है, मान है न सरमाया,**
**जितना ही दौड़ा तू उतना ही भरमाया।**
**प्रभुता का शरण बिंब केवल मृगतृष्णा है,**
**हर चंद्रिका में छिपी एक रात कृष्णा है।**
**जो है यथार्थ कठिन उसका तू कर पूजन,**
**छाया मत छूना मन, होगा दुख दूना मन।**

**गिरिजाकुमार माथुर**

# स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटकों में महिलाओं का बदलता स्वरूप एवं त्रिपुरारी शर्मा की रंगचेतना

**नेहा श्रीवास्तव**
शोधार्थी, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भारतीय सामाजिक मनोविज्ञान का विकास पितृसत्ता के प्रभाव में हुआ है जिसमें एक स्त्री को दी गई भूमिका का 'स्टीरियोटाइप'–घर, गृहस्थी, पति और बच्चे हैं। भारतीय समाज की जो सामाजिक मान्यताएँ हैं, वे एक स्त्री के बिना कुछ भी नहीं हैं। हर स्त्री की पहली प्राथमिकता उसका घर होता है। घर हो या बाहर, स्त्री ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी पहचान स्थापित करने के लिए अनवरत संघर्ष किया है। साहित्य में भी स्त्री के लिए लिखना–पढ़ना आसान नहीं रहा है। उसे वहाँ भी पुरुषों की तुलना में कई गुना संघर्ष करना पड़ा है। साहित्यिक विधाओं में नाट्य–विधा भी एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें भी महिलाओं ने समाज के साथ–साथ स्वयं से भी संघर्ष किया है। भरतमुनि ने जिस नाट्य की बड़ी गंभीर, सैद्धांतिक और व्यावहारिक व्याख्या की, उस नाट्य जगत से महिलाएँ लंबे समय तक वंचित रही हैं। रंगमंच में महिलाओं का प्रवेश एक तरह से वर्जित ही रहा है। पितृसत्ता या यूँ कहें कि भारतीय समाज की रूढ़ियाँ स्त्रियों की भूमिका को घर–परिवार तक ही सीमित मानती हैं, फिर भी अपने घर–परिवार को सँभालते हुए महिलाओं ने रंगमंच के क्षेत्र में अद्भुत कार्य किया है। ऐसी परिस्थितियों में महिलाओं का रंगमंच के सभी स्तरों पर कार्य करना एक सुखद अनुभूति पैदा करता है। रंगमंच के शुरुआती दौर में हाशिये पर रहने वाली महिलाओं से लेकर बदनाम गलियों तक गुजर–बसर करने वाली महिलाओं का रंगमंच से जुड़ना एक बड़ी घटना के रूप में समाज के सामने आया है। पितृसत्ता जैसी रूढ़ धारणा को चुनौती देने वाली महिलाओं ने स्वयं के लिए दोहरी लड़ाई लड़ी है। एक तरफ वह अपने पारिवारिक माहौल से लड़ीं तो दूसरी तरफ उन्होंने दानवरूपी समाज से भी मोर्चा लिया। शुरुआती दौर में जब महिला रंगकर्मी को रंगकर्म के लिए घर से बाहर जाना होता होगा तो निश्चित ही वह यह भूल जाती होगी कि उसका जेंडर क्या है? सही मायने में रंगकर्म एक ऐसा ही क्षेत्र है जहाँ न जेंडर है और न ही कोई जात–मजहब। इन समस्त महिलाओं की जीवन एवं रंग–यात्रा को जानने–समझने के

क्रम में यह तथ्य स्पष्ट नजर आता है कि रंगमंच की दुनिया में स्त्रियों की उपस्थिति बतौर निर्देशिका, अभिनेत्री, समीक्षक बीसवीं सदी में पहले की तुलना में अधिक बढ़ी है। उन्होंने इस मुकाम को हासिल करने में अपना पूरा जीवन लगाया है। अपनी कौशल और क्षमता से खुद को साबित किया है। महिलाओं ने कड़ी मेहनत एवं आत्मविश्वास के द्वारा घर–परिवार में पत्नी, माँ, बहन, बेटी के रूप में अपनी भूमिका निभाने के साथ–साथ रंगमंच के हर क्षेत्र यथा स्क्रिप्ट लेखन, निर्देशन, अभिनय, स्टेज–व्यवस्था, प्रकाश– व्यवस्था, कॉस्ट्यूम इत्यादि सभी में अपनी महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई है।

नाट्य असीम है, साथ ही यह संप्रेषण का एक सशक्त माध्यम भी है। स्वातंत्र्योत्तर नाटक या रंगमंच की बात करें तो सामाजिक स्तर पर स्त्रियों की चेतना का जाग्रत होना एक महत्त्वपूर्ण घटना के रूप में उभरकर सामने आया है। उनकी स्वतंत्र, स्वायत्त, व्यक्तिवादी छवि के पीछे के 'कड़वे सच' को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। इनकी अभिव्यक्ति कई स्तरों– सामाजिक परिदृश्य, मीडिया, साहित्य और रंगमंचीय प्रस्तुतियों आदि में दृष्टिगत होती है। समकालीन महिला रंगकर्मियों ने अपनी अभिव्यक्ति खामोश रहकर नहीं बल्कि अपने आक्रोश एवं तीव्र आवेग को बारूद बनाकर की है। स्त्रियाँ प्रकृतिगत क्रियाशील एवं सृजनशील होती हैं। उनकी मानसिक संरचना पुरुषों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील, सूक्ष्म और गहरी होती है। इसी कारण वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सृजन के नए रास्ते (पुरुषों की भाँति नहीं) बल्कि अपने एक अलग अनूठे अंदाज में तलाशती हुई अभिव्यक्त करती हैं। स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् नाटक को एक नया मोड़ देने में महिला रंगकर्मियों ने भरपूर कोशिश की है। समकालीन हिंदी नाट्य–जगत में नये नाट्य–प्रयोग, नवलेखन एवं नयी नाट्यालोचना के माध्यम से एक नया जीवन देने में 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय', 'संगीत नाटक अकादमी', 'बंगाल कल्चरल स्क्वाड', 'भारतीय जन नाट्य संघ' (इप्टा), 'केंद्रीय सांस्कृतिक स्क्वाड', 'पृथ्वी थियेटर्स' इत्यादि संस्थानों–संगठनों ने अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन संस्थाओं में महिलाओं ने अपनी भागीदारी का निरंतर एहसास करवाते हुए लगातार नये प्रयोगों से नाट्य–जगत को और भी ज्यादा समृद्ध किया है।

रंगमंच एक गतिशील और निरंतर खोज करती प्रक्रिया है। रंगमंच स्त्री रंगकर्मियों को यह बराबर एहसास दिलाता है कि स्त्रियाँ भिन्न प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों के घिसे–पिटे ढाँचे को तोड़कर ताजी हवा में आती हैं और अपनी प्रक्रिया एवं प्रस्तुति से एक नयी सुबह रचती हैं। निश्चित ही पूर्वकालिक रंगमंच के जो कथ्य एवं स्वरूप हैं, उनमें बदलाव अवश्य हुए हैं। स्त्री को समाज की मानसिक चारदीवारी से निकालकर फेंकने का कार्य स्त्री ने 'स्व' की तलाश के माध्यम से किया है। अपनी जगह बनाने और अपने जीवनानुभवों को निजी ढंग से व्यक्त तथा संप्रेषित करने की आंतरिक तड़प ने कुछ महिला रंगकर्मियों को एकल अभिनय के लिए भी प्रेरित किया

है। स्त्रियों में जितनी सूक्ष्म और सघन संवेदना होती है, उतने ही सूक्ष्म और आंतरिक स्तर पर उनके रंगमंचीय और निर्देशक–व्यक्तित्व को भी समझने की जरूरत है। महिला रंगकर्मी रंगमंच में विस्तृत, व्यापक पक्षों को लेकर समाज के सामने आई हैं। स्त्रियों ने स्वयं को प्रत्येक क्षेत्र में अग्रसर किया है। वर्तमान समय की राजनीति, धर्म, भाषा, जातिवाद, सांप्रदायिकता, बाजारवाद, उपभोक्तावाद और वैश्वीकरण के इस दौर में उत्पन्न उलझनों और समस्याओं पर आज की महिलाएँ खुलकर अपना विचार प्रकट कर रहीं हैं। उनका मानना है, रंगमंच जहाँ एक रचना है, वहीं आलोचना भी है।

सन् 1950 के बाद हिंदी नाटक जब नाट्य–सृजन, रंगकर्म, परस्पर स्पर्श और सह–अस्तित्व की दौड़ में था, तब इस निरंतर गतिशील, सार्थक दौर में कुछ महिला नाटककारों का समकालीन हिंदी नाट्य जगत में आगमन हुआ जिन्होंने नाट्य–विधा, नाट्य– अनुवाद, नाट्य–रूपांतरण, निर्देशन, नाट्य–समीक्षा और रंगकर्म को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम एवं कर्मक्षेत्र बनाया। यह नाट्य विधा के बदलते युग में एक सर्जनात्मक पहलू ही कहा जाएगा। जहाँ महिला लेखिकाओं ने एक तरफ उपन्यास, कविता, कहानी आदि विधाओं में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, वहीं अपने समय की समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए नाटक जैसी महत्त्वपूर्ण विधा का चयन भी किया। स्वयं नारी होने के कारण नारी के मर्म, उनके जीवन तथा उनकी समस्याओं का चित्रण महिला नाटककारों ने अपने नाट्य साहित्य में बहुत ही सजीवता एवं सूक्ष्मता के साथ किया है। वे अपने समय, कथ्य और शिल्प के प्रति अत्यधिक सजग, अन्वेषक एवं प्रयोगधर्मी हैं। इसमें नाट्य अनुवाद, नाट्य–रूपांतरण, समीक्षा–आलोचना, निर्देशन सभी क्षेत्र शामिल हैं। जिस प्रकार वे घर–परिवार में अपनी सारी महत्त्वपूर्ण भूमिकाओं का निर्वहन करने में सक्षम हैं, उसी प्रकार वे घर से बाहर रंगकर्म के विभिन्न क्षेत्रों में सारे किरदार निभाने में भी सक्षम हैं। समकालीन हिंदी रंगकर्म में अपनी–अपनी रंग–चेतना, भाषायी चेतना और वैचारिकी के साथ– साथ मौलिकता लेकर आने वाली महिला कलाकारों में 'शांति मेहरोत्रा', 'कुसुम कुमार', 'मन्नू भंडारी', मृणाल पाण्डेय', 'मृदुला गर्ग', 'मीरा कांत', 'विभा रानी', 'रमा पाण्डेय', 'इंदिरा दांगी', 'कुसुम लुनिया', 'शांता गांधी', 'प्रतिभा अग्रवाल', 'गिरीश रस्तोगी', 'उषा गांगुली', 'नादिरा जहीर बब्बर', 'त्रिपुरारी शर्मा', 'उमा झुनझुनवाला', 'अनुराधा कपूर', 'विजया मेहता', 'शांता कुमारी जैन', 'मालती श्रीखंडे' आदि प्रमुख हैं। इन महिला रंगकर्मियों ने स्त्री चेतना से संबंधित नाटक, स्क्रिप्ट लेखन, अभिनय, निर्देशन, मंचन, शैली, शिल्प जैसे नाट्य–विधा के विभिन्न क्षेत्रों में अद्भुत कार्य किया है। साथ ही कई तरह के नये प्रयोग भी किए हैं। महिलाओं ने रंगमंच पर समाज एवं पुरुषों द्वारा बनाई गई स्टीरियोटाइप औरत की रूढ़ छवि को तोड़ा है तथा रूढ़ छवि से स्वयं को बाहर लाकर एक बहुआयामी पहचान दी है। समय के अनुसार इन रंगकर्मियों ने अपने साथ–साथ समाज की अन्य महिलाओं के जीवन को सुदृढ़ बनाने की निरंतर कोशिश की है। महिला रंगकर्मियों

ने इस क्षेत्र में कदम रखकर रंगमंच को एक नया आकार प्रदान किया है।

नाटक लोकजागरण का एक सशक्त माध्यम है। दृश्य–श्रव्य की कोटि में आने वाला नाटक प्रभावोत्पादक होता है और सभी कलाओं का समावेश होने के कारण वह मानव जीवन के सबसे अधिक निकट भी है। हिंदी नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में बहुत कम ऐसी शख्सियत हैं जिन्होंने अपने नाट्य लेखन एवं निर्देशन द्वारा समकालीन समय और समाज की चिंताओं को शिद्दत से उठाया है। ऐसी ही एक समर्थ व्यक्तित्व त्रिपुरारी शर्मा का आगमन समकालीन हिंदी नाट्य जगत में क्रांतिकारी घटना रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय से उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में स्नातक की डिग्री प्राप्त की। वे एन.एस.डी. (राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय) से 1979 में डिप्लोमा प्राप्त कर स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य जगत में एक प्रतिष्ठित नाटककार, अनुवादक, लेखक एवं निर्देशक के रूप में उभरकर सामने आईं। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में दाखिले से पहले इनकी रुचि लेखन और पत्रकारिता दोनों में रही है। इन्होंने नृत्य, संगीत एवं चित्रकला से अधिक महत्त्व रंगमंच को दिया क्योंकि त्रिपुरारी शर्मा का मानना है कि– ''रंगमंच एक लाइव मीडियम है जो लोगों से कनेक्ट करता है। केवल कागज पर लिखने की बजाय मंच पर लिखा जाए तो वह लोगों तक जल्दी पहुँच जाएगा।''[1]

त्रिपुरारी शर्मा एक प्रतिष्ठित नाटककार, अनुवादक एवं निर्देशक रही हैं। इनके विषय में गिरीश रस्तोगी अपनी पुस्तक में लिखती हैं ''त्रिपुरारी शर्मा अपनी प्रस्तुतियों, वर्कशॉप, नाटकों, अभिनय से अपने को, स्त्री को व्यक्त करना चाहती हैं और मानती हैं कि नये अंदाज में स्वयं को अभिनय और निर्देशन दोनों के जरिये व्यक्त करने, बदलने की छटपटाहट बढ़ी है।''[2] त्रिपुरारी शर्मा ने कई नाटकों की रचना की है और साथ ही निर्देशन भी किया है। उनकी प्रमुख नाट्य रचनाएँ– 'बहू', 'बाँझ घाटी', 'विक्रमादित्य का न्यायासन', 'काठ की गाड़ी', 'अक्स पहेली', 'बिरसा मुंडा', 'रेशमी रूमाल', 'सजा', 'सुमति', 'राधा', 'पोशाक', 'सूर्यास्त के बाद', 'रंगधूलि', 'रूप अरूप' सन् सत्तावन का किस्सा 'अजीजुन निसा', 'आधा चाँद' इत्यादि हैं। उनके अधिकतम नाटकों का केंद्र स्त्री एवं स्त्री समस्या रही है। उनके नाटकों में स्वयं की जीवनानुभूति महसूस होती है। उन्होंने अपनी स्त्री प्रधान नाटकों के माध्यम से स्त्री की नजर से समाज, जीवन और जगत को दिखाने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने नाटकों में अधिकतर अनपढ़ व घरेलू जीवन बितानेवाली स्त्री पात्रों का चयन किया है, साथ ही उनकी आपबीती को अपने नाटक में शामिल किया है। त्रिपुरारी शर्मा ने औरतों की ताकत, उनकी मनःस्थिति एवं द्वंद्व को अपने नाटकों के माध्यम से समझने की कोशिश की है। उनका प्रथम नाटक 'बहू' है जिसमें रूढ़िवादी ग्रामीण समाज में विधवा युवती की उस पीड़ा और मनोदशा का चित्रण है जो उसे समाज और परिवार से ही मिलती है। बहू हरियाणा की एक विधवा है। यह विधवा बहू समाज द्वारा दी गई मान्यताओं को तोड़ने का सामर्थ्य रखती है जिसके कारण वह एक बुरी औरत मानी जाने लगती है।

'अक्स पहेली' नाटक में मध्यवर्गीय स्त्री के भीतरी मन को परत–दर–परत खोलने का बेहतरीन प्रयास है। 'राधा' नाटक में त्रिपुरारी जी ने वृंदावन में रहने वाली विधवाओं की एकरस मनोदशा और विवशता को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'रेशमी रूमाल' नाटक एक तरह से औरत के सपनों की दुनिया है जिसे वह घर की चारदीवारी में कैद रहकर बुनती है। इस नाटक में त्रिपुरारी शर्मा ने सुलक्षणा और मंजू जैसे चरित्रों के माध्यम से स्त्री के सहज जीवन जीने की इच्छा–आकांक्षा, अनचाहे समझौतों, अपमान एवं संघर्ष का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण उकेरा है। 'रंगधूलि' और 'रूप अरूप' नाटक राजस्थान की जनजातियों से संबंधित है। 'रंगधूलि' नाटक में बेड़िन समुदाय की स्त्रियों की जीवनगाथा है। जमींदारों एवं रसूखदार लोगों द्वारा इन महिलाओं के साथ जबरन बनाए गए संबंध की वजह से इन्हें इसका बोझ जीवनभर अकेले अपने बच्चों के साथ झेलना पड़ता है। बेड़िन समुदाय की महिलाओं के जीवन की त्रासदी का प्रस्तुतीकरण गहरी खोजबीन और सच्ची घटना पर आधारित है। जनजातीय समुदाय की महिलाओं से मिलना, उनके जीवन को बहुत करीब से देखना, उनके प्रति समाज में हो रहे अमानवीय व्यवहार को महसूस कर इसका सजीव चित्रण उन्होंने अपने नाटकों एवं मंच पर जस–का–तस हमारे सामने रख दिया है। अपने 'मे बी दिस समर' नाटक के द्वारा अत्याधुनिक कहे जाने वाले समाज में प्रचलित 'लिव–इन रिलेशनशिप' के कांसेप्ट को रूपाकार दिया है। उन्होंने अपने नाटकों में स्त्री चरित्र को प्रमुखता देते हुए व्यक्तिप्रधान मुद्दों को भी अपने नाटक का विषय बनाया है। प्रतिभा अग्रवाल अपनी संपादित पुस्तक में त्रिपुरारी शर्मा के नाटकों के मूल विषय के संबंध में लिखती हैं– ''ये अपने नाटकों में मुख्यतः महिला समस्याओं को उठाती हैं, उनके मन में संजोयी, छिपी, छोटी–बड़ी कामनाओं और वासनाओं को सार्थक अभिव्यक्ति देती हैं। उनके नाटकों में नारी मन की आतंरिक कोमलता काव्यमय होकर रूपायित होती है।''

त्रिपुरारी शर्मा की रचना 'पोशाक' एक बहुचर्चित नाटक है जिसमें समकालीन व्यवस्था के भीतर दम तोड़ती युवा पीढ़ी की सर्जनात्मक बेचैनी और विडंबना को मूर्त करने की कोशिश की गई है, जहाँ कुछ घटनाओं के द्वारा अस्तित्व खोते व्यक्तित्व को दर्शाया गया है। त्रिपुरारी शर्मा के विचार में, ''पोशाक' उन विभिन्न परतों की तरफ संकेत करता है जो स्वेच्छा से या अनिच्छापूर्वक सामाजिक भूमिकाओं, कार्यों, संबंधों और सोच के साथ चली आती हैं। यह एक ढाँचा है, एक तरह की पेटी है। एक छुपी हुई पहचान अक्सर एक 'बिंब' होती है, जरूरी नहीं कि हमेशा वह 'स्व' (सेल्फ) के हूबहू ही हो। यह ऊहापोह एक आंतरिक विद्रोह पैदा करता है और हमें वास्तविक दुनिया के विभिन्न पक्षों और अनुभवों की यात्रा कराता है। जैसा कि यह नाटक कान्ति के बारे में है, जो एक व्यक्ति तो है ही, हम सबके भीतर का एक सृजनात्मक बेचैन 'स्व' भी है जो संभवतः साधारण और अंतरंग दोनों को सहने में हमेशा समर्थ नहीं होता

और इसलिए पुनर्जीवन की लालसा रखता है।''[4] 'पोशाक' नाटक की भाषा में समकालीन जिंदगी के सारे रंग सम्मिलित हैं। इस नाटक के माध्यम से समाज की उस मानसिकता का पर्दाफाश हुआ है जो अपने समय व परिस्थिति–अनुसार अपने बाहरी पहनावे को बदलने के साथ–साथ अपने मूल्यों एवं विचारों को बदलने में तनिक भी देर नहीं करता। 'पोशाक' नाटक में 'गिरगिट की तरह रंग बदलना' मुहावरे का बेहतरीन ढंग से प्रयोग हुआ है। 'सन सत्तावन का किस्सा: अज़ीजुन निसा' एक स्त्री केंद्रित नाटक है जिसमें उन्होंने एक तवायफ को आज़ादी की लड़ाई में वीर योद्धा के रूप में दिखाया है जिसमें अज़ीजुन निसा शाम को सजने वाली महफ़िल और चाँदी के सिक्कों में अपनी दिलचस्पी न दिखाकर अपने देश की सिपाही बनकर अपने अस्तित्व को एक नयी पहचान देती है। अपने देश की रक्षा के लिए वह जंग से प्रेम करने की बात करती है जिन्हें इन संवादों के माध्यम से समझ सकते हैं –

''मोहम्मद: आपको मेरा अंदाज नापसंद जरूर होगा, पर आखिर जद्दोजहद से एक खातून का क्या वास्ता

अज़ीजुन : जो उसकी जिंदगी से है।

शमसुद्दीन : यह मोहब्बत नहीं जंग है।

अजीजुन : और मुझे इस जंग से मोहब्बत है जो मेरे दरवाजे पर दस्तक दे चुकी है।'

यह नाटक अजीजुन निसा को एक बेबाक महिला के रूप में प्रस्तुत करता है। मोहब्बत और देश के बीच अजीजुन निसा का त्याग और बलिदान इस नाटक को दूसरी दृष्टि से भी देखने के लिए प्रेरित करता है। एक तवायफ़ होने के कारण लेखिका ने अज़ीजुन निसा के शायराने मिजाज को भी व्यक्त किया है–

''शमसुद्दीन : फिर आ गया हूँ तुम्हारे सुकून में खलल डालने।

अज़ीजुन : जहे नसीब जो आप इस तरफ़ नज़र घुमाते हैं।''[6]

प्रस्तुत नाटक अजीजुन निसा के स्त्री–जीवन के उतार–चढ़ाव से भरी जिंदगी का इतिहास में जाकर चित्रण करता है एवं वर्तमान समय की परिस्थितियों पर भी प्रकाश डालता है। त्रिपुरारी शर्मा का एक बेहतरीन नाटक 'सम्पदा' है जिसमें उन्होंने हर एक व्यक्ति के जीवन की इमेज को दिखलाया है। व्यक्ति का जो संस्कार एवं एक–दूसरे के प्रति स्नेह है, वो बना ही रहना चाहिए। नाटक की भूमिका में यह कहा गया है– ''वह 'कुछ' जिससे हर व्यक्ति विशेष बनता है, किंतु उभरने से पूर्व ही जिसे ढाल दिया जाता है, किसी श्रेणी, किसी भूमिका, किसी श्रृंखला के क्रम में व्यक्तित्व का संहार हो जाता है– स्नेह और संस्कारयुक्त संपदा के पाश से।''[7] यह नाटक एक ऐसे युवक की मनोदशा का चित्रण करता है जिसमें एक महिला के विचार को जीवंत रखने की इच्छा तथा निश्चित सीमा से बाहर एक स्वतंत्र पहचान देने की कोशिश की गई है। यह नाटक स्त्री–पुरुष की मनोदशा के यथार्थ को वर्तमान समय के दायरे में

देखने—समझने का प्रयास भी करता है। इस नाटक के माध्यम से आज के व्यक्ति के जीवन में व्याप्त असंतोष, तनाव, जीने की चाह एवं जीवन के बाह्य और आंतरिक अंतर्द्वंद्व का चित्रण किया गया है।

रंगकर्म के प्रति गहरी रुचि और दृढ़ता ने त्रिपुरारी शर्मा को आंतरिक सुदृढ़ता प्रदान की है। यह दृढ़ता केवल उन्हीं के अंदर देखने को नहीं मिलती बल्कि समकालीन समय में सृजनरत कमोबेश सभी महिलाओं में भी देखने को मिलती है। उन्होंने परंपरागत रूढ़ियों, मान्यताओं को तोड़कर सृजनात्मक संवाद की निरंतरता के माध्यम से अपनी महत्ता को स्थापित किया है। त्रिपुरारी शर्मा एक नाटककार होने के साथ—साथ अभिनेत्री एवं श्रेष्ठ कोटि की निर्देशक भी हैं। उनका मानना है कि ''निर्देशक एक ऐसा आर्टिस्ट है जो ब्रश और कलम से आर्ट नहीं करता बल्कि अभिनेताओं द्वारा स्पेस में डिजाइन बनाता है। निर्देशक और अभिनेता की साझेदारी को ही रंगकला कहते हैं।'' त्रिपुरारी शर्मा ने अपने बी.ए अध्ययन के दौरान राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में दाखिला लेकर इब्राहीम अल्काजी एवं बी. वी. कारंत जैसे महान निर्देशकों से शिक्षा प्राप्त की और इसके पश्चात् राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय में प्रोफेसर बन निर्देशन के क्षेत्र में एक बेहतरीन कार्य किया। उन्होंने भारत के साथ—साथ विदेशों में भी कई रंग—कार्यशालाओं का आयोजन किया है। इसके अलावा महिलाओं के साथ गाँव एवं शहर में उनसे जुड़े सवालों पर गंभीरता से विचार करने के लिए कई कार्यशालाएँ की हैं। रंगमंच की कार्यशाला की प्रमुख विशेषता यह है कि वहाँ सभी को स्पेस मिलता है। महिलाओं के लिए ये कार्यशालाएँ इसलिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही हैं क्योंकि उन्हें अपनी अभिव्यक्ति का पूरा मौका मिलता है, वे आपस में बातें करती हैं, नृत्य करती हैं, रोती हैं, चीखती हैं, चिल्लाती हैं, खुश होती हैं, जिससे उन्हें शारीरिक ही नहीं बल्कि मानसिक रूप से भी शांति मिलती है। 'नाटक केवल मनोरंजन का साधन है', इस बात को त्रिपुरारी शर्मा ने अपने निर्देशन द्वारा लगातार गलत साबित किया है। रंगमंच की प्रस्तुति एक सार्वजनिक अनुभव है लेकिन उसकी संरचना में सबके अपने निजी अनुभव, विचार और एहसास निहित होते हैं। मंच पर अपने पात्रों में वे स्वयं नजर आती हैं। त्रिपुरारी शर्मा लिखती हैं। ''अगर पचास वर्षों का इतिहास देखें तो कुछ औरतों के लिए बहुत कुछ बदला है। लेकिन बहुत—सी औरतों के लिए भी कुछ बदला है। भारत जैसे बड़े देश में कोई एक सच नहीं हो सकता। एक वर्ग में ही लोगों के जीवन में बहुत असमानता है। रंगमंच को अपने समय की अनुकूलता में काम करना होता है। समय के अनुसार बदलती सौंदर्य चेतना, संवेदनाएँ, विचार, भावनाएँ; जिसमें रंगमंच से नयी प्रवृत्तियों का विकास होता रहता है, कहीं भी जहाँ कुछ हो रहा है जिसे खुली आँखों से नहीं भी देख रही हूँ। हो सकता है वह महत्त्वपूर्ण न हो पर उसमें मेरी दृष्टि देखती भी है और बदलती भी है। दूर से या पास से परिवर्तन के सारे घटक मेरे भीतर उपस्थित रहते हैं।''[9] उन्होंने देश की

गरीब बस्तियों, झुग्गी–झोंपड़ी, आम जनता के साथ मिल–जुलकर, उनके जीवन को करीब से समझ–बूझकर उनकी समस्याओं को अपने नाटक में रूपाकार दिया है एवं मंच के माध्यम से शोषित–पीड़ित लोगों की पीड़ा से अपने कुशल निर्देशन द्वारा दर्शकों का साक्षात्कार करवाया है। उन्होंने अपने नाटकों के बेहतरीन निर्देशन द्वारा दर्शकों के मन–मस्तिष्क में एक विशेष छाप छोड़ी है। त्रिपुरारी शर्मा के निर्देशन में मंचित महत्त्वपूर्ण नाटक हैं– 'आधे–अधूरे', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है', 'कथा नंदन की', 'बिरजिस कदर का कुनबा' आदि।

निष्कर्षतः, कहा जा सकता है कि त्रिपुरारी शर्मा हिंदी रंग–कर्म की सुप्रसिद्ध नाटककार, निर्देशक और प्रबुद्ध रंगकर्मी हैं। समकालीन हिंदी रंगमंच को समृद्ध–संपन्न बनाने में उनके नाटकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। साथ ही 'बाल रंगमंच' एवं 'नुक्कड़ नाटक' से भी उनका अत्यधिक लगाव रहा है। इतना ही नहीं, उन्होंने अनेक फिल्मों में संवाद लेखन का कार्य भी किया है। त्रिपुरारी जी के नाटकों में स्त्री भाषा विविध रूपों में प्रकट होती है। देह–भाषा, बिंब–प्रतीक त्रिपुरारी जी की रंगभाषा के महत्त्वपूर्ण घटक रहे हैं। उनके नाटकों में गति, भाव–भंगिमाएँ, क्रियाएँ संवादों के साथ अर्थ का संप्रेषण करती हैं, जो उसे गहराई और एक नया आयाम प्रदान करती हैं। उन्होंने अपने नाटकों में मानवीय परिवेश की विभिन्न संगतियों–असंगतियों को विश्वसनीय ढंग से दिखलाया है। उनकी संवेदना का विस्तार आधुनिक जीवन शैली से उपजी आपदाओं से लेकर स्त्री–मन के भिन्न–भिन्न कोने में है। इतिहास के साथ ही समसामयिक जीवन की घटनाएँ और मानव का बदलता व्यवहार उनके नाटकों में विश्वसनीय ढंग से व्यंजित हुआ है। त्रिपुरारी शर्मा नाटक और रंगमंच की दृष्टि से बहुत सफल नाटककार एवं निर्देशिका हैं। त्रिपुरारी शर्मा न केवल महिला नाटककारों में ही चर्चित हैं बल्कि हिंदी नाट्य जगत में भी एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में पहचानी जाती हैं।

**संदर्भ :**


1. कला वसुधा, संपादक – डॉ. उषा बनर्जी; साक्षात्कारः त्रिपुरारी शर्मा, उमा झुनझुनवाला, अंक–41– 42, जुलाई– दिसंबर 2023, पृ.11
2. नाट्यचिंतन और रंगदर्शन; अंतर्संबंध, गिरीश रस्तोगी, किताबघर प्रकाशन, पृ. 90
3. भारतीय रंगकोश, संः प्रतिभा अग्रवाल, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, खंड–2, पृ. 98
4. 'पोशाक' नाटक का ब्रोशर, 23, 24, 25 फरवरी 2006
5. सन सत्तावन का किस्साः अजीजुन निसा, त्रिपुरारी शर्मा; वाणी प्रकाशन, पृ. 35
6. वही, पृ. 9
7. नटरंग, हिंदी नाट्य विशेषांक, संपादकः अशोक वाजपेयी, सितंबर 2016, पृ. 65
8. कला वसुधा, संपादक– डॉ. उषा बनर्जी; बीच शहर और शिफा दो अद्भुत

नाटकः त्रिपुरारी शर्मा का लेखन और निर्देशन, गुलिस्ता एलिजा; अंक 41–42, जुलाई–दिसंबर 2023, पृ.19

9. लोकमंच और समकालीन हिंदी रंगमंच का स्त्री विमर्श, डॉ. श्रीमती कमल कुमार; राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, पृ. 61

❑❑❑

शाखों से फूलों की बिछुड़न,
फूलों से पंखुड़ियों की,
आँखों से आँसू की बिछुड़न,
होठों से बाँसुरियों की।
तट से नव लहरों की बिछुड़न,
पनघट से गागरियों की,
सागर से बादल की बिछुड़न,
बादल से बीजुरियों की।
जंगल–जंगल भटकेगा ही,
जिस मृग पर कस्तूरी है,
उतने ही हम पास रहेंगे,
जितनी हममें दूरी है।

कुँअर बेचैन

# संत कबीर एवं बाउल फकीर लालन शाह

**रामचंद्र राय**

मैथिली, हिंदी, बंगला, अंग्रेजी एवं संताली भाषा के विशेषज्ञ, अनुवाद कार्य में रुचि, संप्रतिः सचिव, शांति निकेतन हिंदी प्रचार सभा, पश्चिम बंगाल

भारतीय साहित्य के इतिहास में आज भी संत कबीर और बाउल फकीर लालन शाह प्रासंगिक हैं क्योंकि इन्होंने भारतीय समाज की प्रचलित कुप्रथाओं, अंधविश्वासों के बंधन को तोड़कर एक ऐसे समाज की स्थापना करने का प्रयास किया, जहाँ एक मानव दूसरे मानव के साथ मिल जुलकर रहे, चाहे वह किसी जाति, कुल, धर्म, संप्रदाय आदि का क्यों न हो। कबीर ने हिंदुओं के संबंध कहा है–

एक बूंद एक मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जाति तैं सब उतपनां कौन बाँम्हन कौन सूदा।।
रज गुन ब्रहम, तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक राम जपुरे, हिंदू तुरक न कोई।।

उसी प्रकार मुसलमानों के संबंध में भी कहा है–

काजी कौन कतेब बषाने।
पढ़त–पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जाने।।
सकति से नेह पकरि सुनति, बहु ननदू रे भाई।
जोर षुदाइ तुरक कोहि करता, तो आपै कटि किन जाई।।
हौं तो तुरक किया करि सुनति, औरति सो का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छुटे, आधा हिंदू रहिये।।
छाड़ि कतेब राम कहि काजी, खून करत हौ भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहे झष मारी।।

कबीर की इस भावना से मिलती–जुलती भावनाएँ बंगाल के फकीर लालन शाह की भी हैं जिन्होंने उसे कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है–

सब लोके कय लालन कि जात संसारे।
लालन कय, जेतेर कि रुप, देखलाम ना ए नजरे।।
छुन्नत दिले हये मुसलमान

नारी लोकेर कि हय विधान,
बामन यिनि पैतार प्रमाण।।
बामनी चिनि कि धरे,
केओ माला, केओ तसबि गलाय,
ताइते कि जात भिन्न बलाय
याओया किंबा आसार बेलाय
जेतेर चिह्न रय कार रे।।
गर्ते गेले कू पजल कय,
गंगाय गेले गंगाजल हय,
मूले एक जल, से ये भिन्न नय
भिन्न जानाय पात्र–अनुसारे।।
जगत बेड़े जेतेर कथा
लोके गौरव करे यथा तथा,
लालन से जेतेर फाता
बिकियेछे सात बजारे।।

श्यामसुंदर दास संत कबीर का जन्म सं. 1456 और मृत्यु सं. 1575 पंद्रहवीं शती मानते हैं। संत शब्द का प्रयोग भक्ति आंदोलन के नेता के लिए प्रयुक्त किया जाता था जिसका अर्थ सुयोग्य एवं चरित्रवान था किंतु अंग्रेजी में संत शब्द का प्रयोग धर्मात्मा के लिए किया जाता है। यही शब्द उनके लिए भी प्रयुक्त होता है जो पहले तमिल भक्ति संप्रदाय से संबंधित थे। संत कबीर के जन्म के संबंध में जनश्रुति है कि इनका जन्म काशी में एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था। विधवा ब्राह्मणी ने लोक–लज्जा के भय से इन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे फेंक दिया। नीरू नामक जुलाहा अपनी पत्नी नीमा के साथ उधर से जा रहे थे। इन दोनों ने लहरतारा तालाब के निकट बच्चे को पड़े हुए देखकर उठा लिया और अपने घर ले जाकर लालन–पालन किया। हिंदू माँ के गर्भ से जन्म लेने एवं मुसलमान के घर लालित–पालित होने के कारण कबीर की रचनाओं पर हिंदू एवं मुस्लिम दोनों धर्मों की विचारधारा का प्रभाव पड़ा है। कबीर पंथ के अनुयायी हिंदू और मुस्लिम दोनों वर्ग के लोग हैं। कबीर पंथ की ही भाँति बाउल पंथ के अनुयायी हिंदू और मुस्लिम दोनों वर्ग के लोग होते हैं। हिंदू वर्ग के लोगों को बाउल एवं मुस्लिम वर्ग के लोगों को आउल/दरवेश कहा जाता है। आउल शब्द का प्रयोग कुरान के सुरा संख्या 10 (नबी युनुस) के आयत–62 में (ओली शब्द के रूप में) किया गया है। ओली का ही बहुवचन आउलिया होता है– आला इन्ना आउलिया अल्लाहे लाह खाउफुन अलाहुम याह जनुन

कबीर की ही विचारधारा से ओतप्रोत– बंगाल के बाउल फकीर लालन शाह (सन् 1774–1890) का जन्म अठारहवीं शती में हुआ है। 'बाउल' शब्द की उत्पत्ति

संस्कृत के बातुल शब्द से मानी जाती है। बातुल का अर्थ बाउर, बोरा, वायु आदि दिया गया है जिसका अर्थ पागल, बंधनहीन, मुक्त आदि होता है। इन सब कारणों से बाउल लोग अपने को पागल भी कहते हैं। यही नहीं, पुरुष बाऊल के लिए खेपा (पागल) एवं महिला बाउल के लिए खेपी (पगली) शब्द भी प्रचलित है। किंतु बाउल शब्द 'पागल' अर्थ का द्योतक नहीं है। बंगाल में बाउल से अभिप्राय उस पंथ के लोगों से है जो लोग वेद, पुराण आदि धार्मिक ग्रंथों के उपदेश को न मानकर मुक्त कंठ से मानव की पूजा करते हैं। इन लोगों की दृष्टि में मानव ही ईश्वर है। ये लोग मानव के अंदर ही ईश्वर को ढूँढने का प्रयास करते हैं।

बाउल पंथ की धारा के प्रवर्तकों में बाउल फकीर लालन शाह का नाम सर्वप्रथम आता है। बाउल फकीर लालन शाह का जन्म बांग्लादेश के कुष्टिया जिले के भाँड़रा गाँव में एक कायस्थ जाति के हिंदू परिवार में हुआ था। अल्पावस्था में ही तीर्थ–यात्रा के पथ पर वसंतरोग से आक्रांत हो जाने पर अपने ही परिवार के लोगों ने इन्हें त्याग दिया था। फलस्वरूप सूफी फकीर सिराज शाह साँइ के स्नेहाश्रय से इन्हें जीवनदान प्राप्त हुआ था। इन्होंने सिराज शाह साँइ से दीक्षा ग्रहण की एवं धर्म–साधना की ओर उन्मुख हुए। कबीर की भाँति लालन का भी जन्म हिंदू के घर एवं पालन–पोषण मुसलमान के घर होने के कारण इनकी रचनाओं पर हिंदू एवं मुस्लिम दोनों ही संस्कृतियों का प्रभाव दिखाई देता है। कबीर की भाँति लालन भी निरक्षर थे।

अक्षय कुमार दत्त ने **भारतवर्षीय उपासक संप्रदाय** पुस्तक में बाउल को एक धार्मिक पंथ कहा है। वे उनका जन्म बंगाल में ही मानते हैं। इस पंथ के अनुयायी पीत वस्त्र धारण कर हाथ में एकतारा लेकर अपने धर्म एवं संगीत की चर्चा करते हैं। बाउल आत्मभोला गृह त्यागी वैरागी मानव हैं। ये लोग गीत गा–गाकर मन के मानव का अनुसंधान करते हैं। गृहहीन बाउल मधुकरी से प्राप्त अन्न–दाने से जीविकोपार्जन करते हैं एवं गृही बाउल अपने जातिगत पेशे से अर्जित आय से जीविकोपार्जन करते हैं। बाउल के दो रूप होते हैं–बाहर से पीत वस्त्रधारी वैरागी एवं अंदर से प्रेमिक। सहजिया वैष्णव की साधना माधुर्य भाव की साधना है। इसलिए इस साधना में साधन–संगिनी की आवश्यकता होती है किंतु यह साधन–संगिनी गृही की भाँति यौनाचार के लिए नहीं होती हैं। यहाँ मिथुनात्मक योग–साधना के अंग के रूप में पुरुष–प्रकृति (नारी–पुरुष) के मिलन के संबंध में विवेचना की गई है। सहजिया वैष्णव मतावलंबियों के लिए पुरुष–नारी का यौन–मिलन धार्मिक रूप से वैध है। सहजिया वैष्णव के साथ एक श्रेणी के मुसलमान फकीर के मेल–मिलाप से बाउल नामक एक पंथ का जन्म हुआ जो वेद–कुरान, मंदिर–मस्जिद, साधन–भजन, व्रत–नमाज इत्यादि शास्त्रीय धार्मिक रीति–रिवाजों का विरोध करते हुए अपने आराध्यदेव को पाने के लिए साधना करते हैं। इन लोगों का कोई लिखित शास्त्र नहीं है। इनके पंथ का उद्‌भावन मौखिक गेयात्मक रचनाओं के माध्यम से ही होता है। बाउल पंथ एक निरक्षर समुदाय

की सृष्टि एवं अनुसृत संपूर्ण लौकिक धर्ममत है। बाउल पंथ विरोधी मतवाद यथाक्रम–आचार–विचार, वेद–कुरान के विरोधी होते हुए भी नास्तिकों की भाँति व्यवहार नहीं करते। यह गुरु काया एवं अध्यात्मवादी धर्म–साधना के साथ–साथ लौकिक धर्म का भी पालन करते हैं। बाउलों ने वेद–कुरान आदि को अस्वीकार तो किया है किंतु हिंदू एवं मुसलमान को एक मंच पर लाने का प्रयास भी किया है। जिस दिन से बंगाल में हिंदू–मुसलमान का मिलन हुआ है उस दिन से बंगाल में बाउल पंथ का आत्मप्रकाश हुआ है किंतु यह कार्य एक दिन में नहीं हुआ है। बाउल पंथ का जन्म सहजिया मतावलंबी वैष्णव–वैरागी तथा सूफी मुसलमान फकीरों के साथ समाज के उच्च वर्ग के लोगों की उदासीनता, अवहेलना, तिरस्कार, फटकार से पीड़ित होकर आपस में एकत्र होने से हुआ है।

बाउल धर्म एवं दर्शन पर हिंदू तंत्र, बौद्ध तंत्र, नाथ योगी, सूफी एवं वैष्णव आदि शास्त्रीय धर्मों का प्रभाव है। इसके बावजूद यह एक लौकिक धर्म है। इसकी जन्मस्थली बंगाल ही है। बंगाल के अत्यंत सामान्य मानव के हृदय में बाउल भाव का पोषण होता है। बाउल लोगों के दिल को जीतने का मर्म भी जानता है। ये लोग शास्त्राचार, लोकाचार को तिलांजलि देकर मानविक आचार–विचार पर ही अधिक बल देते हैं। ये लोग काया (देह) की आध्यात्मिक साधना करते हैं इसलिए मानव देह, मानव जीवन, मानव गुरु, मानव आत्मा, मानव धर्म, मानवीयता आदि के संबंध में कौतुहूल उत्पन्न करते हैं एवं इन सबको अत्यंत मर्यादा देते हैं। इन लोगों की मान्यता है कि धर्मशास्त्र के कारण ही जाति–पाँति, वर्ण–वर्ण में भेदाभेद है। जाति, वर्ण, वित्त भेदमुक्त मानवजीवन एवं मानव समाज ही बाउलों की कामना रहती है। इन लोगों की साधना का मुख्य ध्येय नफस अथवा अहं को विनष्ट करना है। इनका मानना है कि आप्तनाश न होने पर अटल अथवा ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है। इस अटल अथवा ईश्वर के संबंध में उनकी अपनी ध्यान–धारणा है। बाउलों का ईश्वर 'मनेर मानुष', 'सोनार मानुष' अथवा 'अचिन पाखि' है। वे काल्पनिक स्वर्गलोक में नहीं निवास करते हैं। वे मानव के अंतःलोक में विराजमान हैं। प्रेम–भक्ति की राह से काया–साधना के द्वारा ही उनको पाया जा सकता है। इनके संबंध में उक्ति है– 'याहा आछे भाण्डे ताहाइ आछे ब्रह्माण्डे'। इसी धर्म–दर्शन को सामने रखकर काया साधना करते हैं। धर्म के संबंध में इस प्रकार के मत का पोषण करने के कारण ही बाउल शास्त्राचार–वेदाचार आदि का विरोध करते हैं। वे वेद–कुरान, मंदिर–मस्जिद, धर्म–प्रतिष्ठान, मक्का–पुरी, तीर्थ स्थान, रोजा–नमाज, जपतप धर्म–कर्म की अवहेलना करते हैं। इसका परिचय इनकी रचनाओं से मिलता है।

कबीर ने भी समाज सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है। हिंदुओं की जाति–पाँति, छुआछूत, खानपान और मुसलमानों के चाचा की लड़की ब्याहने आदि जैसी बातों का उन्होंने चुभती हुई भाषा में विरोध किया है। कबीर का भी मत है कि

जन्म से ही कोई ब्राह्मण अथवा शूद्र, हिंदू अथवा मुसलमान नहीं होता है। इस संबंध में कबीर ने अत्यंत सहज भाव से हृदय में बस जानेवाली बात कही है–

जौ तू बाँमन बांभनी जाया। तौ आन बाट ह्वै क्यों नहिं आया।
जौ तूँ तुरक तुरकनी जाया। तौ भीतरि खतना क्यूँ न कराया।।

यही नहीं, हिंदू धर्म के अंतर्गत ही वैष्णव एवं शाक्त समुदाय के अनुयायियों की भी आलोचना की है–

चंदन की कुटकी भली, नां बँबूर की अबराँउँ।
बैश्नों की छपरी भली, नां साषत का बड़ गाऊँ।।

उन्होंने मुल्लाओं को मक्का जाकर हज करने के संबंध में कहा है कि शरीर में ही मक्का मदीना है। कबीर के भी शब्दों में–

मन करि मका कबिला कर देही, बोलनहार जगत गुर देही।।
उहाँ न दोजग भिस्त मुकामों, इहाँ ही राम इहाँ रहिमानो।

हिंदी के संत फकीर कबीर और बांग्ला के बाउल फकीर लालन शाह की रचनाओं में इस प्रकार की प्रवृत्तियों को समझने से पूर्व भारतीय संस्कृति का परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है जिसके फलस्वरूप कबीर एवं लालन की रचनाओं में भारतीय समाज में प्रचलित सामाजिक आचार–विचार, रीति–रिवाज, पूजा–अर्चना आदि के संबंध में विद्रोही भाव का चित्रण मिलता है। भारतवर्ष एक भावरत और भक्तिरस से ओतप्रोत भूखंड है। जब–जब इस भूमि पर अनाचार, कदाचार का अतिरेक हुआ है, तब–तब इस भूमि पर एक से एक महामानवों का आविर्भाव हुआ है। इसका उदाहरण हमें भारतीय इतिहास के पन्ने पलटने पर सहज ही सरल रूप से ज्ञात हो जाता है। द्वापर के कृष्ण से लेकर आधुनिक युग की अठारहवीं शती के बाउल फकीर लालन शाह की रचनाओं के अध्ययन–मनन से इसका परिचय मिलता है।

समय परिवर्तन के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में कुरीतियों का आधिक्य होने लगा जिसके फलस्वरूप गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। गौतम बुद्ध ने कहा–जाति से कोई ब्राह्मण अथवा शुद्र नहीं होता बल्कि जो विद्या और आचरण–संपन्न है, वही मानव श्रेष्ठ है। यही नहीं, बुद्ध ने धर्म में एक भाव से सबको अधिकार दिया। बुद्ध के यह विचार अत्यधिक विद्रोहात्मक थे। उन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में भी क्रांतिकारी विचार दिए। जातिगत श्रेष्ठता का जो भाव वेदों में उत्पन्न हुआ था तथा उपनिषद युग में बहुत कुछ स्थिर हो चुका था, उसे बुद्ध ने अस्वीकार कर दिया। बुद्ध के इस विचार से देवदत्त जैसे कुछ अनुयायी इनके विरोधी भी हो गए। फलस्वरूप बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद बुद्ध के मानवतावाद को बिलकुल भुला दिया गया। बुद्ध का मार्ग अत्यधिक आडंबरहीन था। उनकी दृष्टि में वही महामानव है जो गुणवान, ज्ञानवान है तथा जिसमें चरित्रबल है। धर्म के नाम पर आडंबर फैलाना, ठगना उन्हें पसंद नहीं था। परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस में पुनः धर्म एवं जाति का बोलबाला हुआ। इस

धर्म एवं जाति की अंधता ने भारतीय समाज विशेषकर हिंदू जाति को दासता के गर्त में ढकेल दिया। आपसी कलह भी समाज को गते में डालने का एक मुख्य कारण बना। फलस्वरूप भारत में मुस्लिम राज का विस्तार हुआ। हिंदुओं की जीवनी शक्ति का ह्रास हुआ। भारत में मुसलमानों के आगमन से हिंदू समाज के पददलित शूद्रों में उन्मेष का संचार हुआ। उन्होंने देखा कि मुसलमानों के लिए द्विजों और शूद्रों में कोई भेदाभेद नहीं है। सधर्मी होने के कारण सब एक हैं। मानव का स्वभाव है जब वह विपत्ति की ओर उन्मुख होता है तब वह परमात्मा की ओर ध्यान लगाता है एवं उससे छुटकारा पाने की आशा करता है। भारतीय साहित्य का यही समय मध्ययुग कहलाया। इस काल को स्वर्णयुग की भी संज्ञा दी गई क्योंकि हिंदू जनता मुस्लिम साम्राज्य के सामने निहत्थी हो गई थी। फलस्वरूप मनुष्य ईश्वर की पूजा–अर्चना आदि भक्तिभाव में लीन हो गए थे। भक्तिभाव की इसी लहर के युग में कबीर का आविर्भाव हुआ। इस लहर की प्रबलता का कारण यह था कि मुसलमानों के भारत में आ बसने से बहुत कुछ बदल गया। हिंदू जनता का नैराश्य दूर करने के लिए भक्ति का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त कुछ लोगों ने हिंदू और मुसलमान विरोधी जातियों को एक करने की आवश्यकता का अनुभव किया। इस अनुभव के मूल में एक ऐसे सामान्य भक्ति मार्ग का विकास आवश्यक था जिससे परमात्मा की एकता के आधार पर मनुष्यों की एकता का प्रतिपादन हो। इसका मूलाधार भारतीय ब्रह्मवाद और इस्लामी खुदाबाद की स्थूल समानता रही। भारतीय अद्वैतवाद एवं मुसलमानी एकेश्वरवाद के सूक्ष्मभेद की ओर ध्यान न देकर दोनों के मेल से एक नये निर्गुण भक्तिमार्ग का प्रादुर्भाव हुआ। शंकर का अद्वैतवाद जिसकी उत्पत्ति आठवीं शती मानी जाती है, वही मूलतः रहस्यवाद का प्राण है। वस्तुतः वह आत्मा एवं परमात्मा की एक ही सत्ता है। माया के कारण ही परमात्मा के नाम और रूप का अस्तित्व है। आत्मा और परमात्मा एक ही सत्ता के दो रूप हैं जिन्हें माया के परदे ने अलग कर दिया है। कबीर ने इस बात को इस प्रकार कहा है–

जल में कुंभ, कुंभ में जल है बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत कह्यो गियानी।।

कबीर के रहस्यवाद का दूसरा आधार सूफी मत है। इसका कारण यह रहा है कि जुलाहे के घर में लालन–पालन होने के कारण उनके विचारों में सूफी मत का तत्त्व मिलता है। रामानंद के बारह शिष्यों में कुछ शिष्य इस मार्ग की ओर प्रवृत्त हुए जिनमें कबीर प्रमुख हुए। रामानंद ने कहा है– मैं चंदन तथा अन्य नैवेद्य लेकर ब्रह्म का पूजन करने के लिए जाना चाहता था। परंतु गुरु ने बताया कि ब्रह्म तो मेरे हृदय में ही है। जहाँ कहीं मैं जाता हूँ, मैं पानी और पाषाण की पूजा देखता हूँ। परंतु वह तू है जिसने उन सबको अपनी उपस्थिति से भर दिया है। वे तुझे व्यर्थ ही वेदों में खोजते हैं। गुरु के शब्दों से ही कर्म के लाखों बंधनों का नाश होता है। कबीर के पीछे तो संतों की

बाढ़ सी आ गई और उनके मत चल पड़े। परंतु उन सब पर कबीर का ही स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। नानक, दादू आदि ने कबीर का अनुसरण किया और अपना–अपना पंथ चलाया। इस प्रकार शोषित शूद्रों में से ही कुछ ऐसे महात्मा निकले जिन्होंने मानवीय एकता को उद्घाटित किया। इस नवोदित भक्ति रंग में सम्मिलित होकर हिंदू समाज में प्रचलित इस भेदभाव के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई।

निर्गुण भक्ति के माध्यम से वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता और नीचता को ही नहीं बल्कि वर्णभेद से उत्पन्न उच्चता को भी दूर करने का प्रयत्न किया गया। स्त्रियाँ भी पुरुषों के ही समान भक्ति की अधिकारिणी हुईं। यहाँ ध्यातव्य है कि ज्ञानमार्गी संतों ने स्त्रियों की निंदा दूसरे अर्थों में की है। स्त्री से उनका अभिप्राय स्त्री–पुरुष के कामवासनापूर्ण संसर्ग से है।

कबीर कर्मकांड के विरोधी थे। कबीर पंथ में जाति–पाँति का भेदाभेद नहीं है। इसलिए हिंदू मुस्लिम दोनों धर्म के लोग इनके अनुयायी हैं। कबीर के परब्रह्म दशरथ के पुत्र राम नहीं हैं। इनके राम निर्गुण–निराकार और प्रत्येक के ह्रदय में वास करने वाले हैं–

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।
राम नाम का मरम है आना।।

लालन ने भी कर्मकांड का विरोध किया है। लालन ने मानव को कबीर की ही भाँति श्रेष्ठ माना है। इस संसार में जो कुछ भी है, वह मनुष्य के अंदर ही है। लालन की इन रचनाओं से इसका प्रमाण मिलता है–

वेदे कि तार मर्म जाने
ये रूप साँइर लीला–खेला
आछे एइ देह भुवने।।
पंचतत्त्व वेदेर विचार
पंडितेरा करने प्रचार,
मानुष तत्त्व भजनेर सार
वेद छाड़ा वै रागेर माने।।
गोले हरि बलले की जय,
निगूढ़ तत्त्व निराला पाय,
नीरे क्षीरे युगल हय
साँइर बारमखाना सेइखाने।।

पड़ले कि पार्य पदार्थ
आत्म तत्त्वे याराभ्रान्त
लालन बले साधु मोहान्त

सिद्‌ध हय आपनार चिने।।

कबीर की भी वेद के संबंध में समान धारणा है–

चारयूँ बेद पढ़ाई करि, हरि सूं न लाया हेत।

बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढ़े खेत।।

बाउल पंथ स्वच्छंद प्रकृति का है। इस संप्रदाय के लोगों को सामाजिक व्यवस्था ने जब बंधन में बाँधना चाहा तब ये लोग कहते हैं हम लोग बाउल हैं (हम लोग पागल हैं)। जिस प्रकार पागल पर किसी प्रकार का बंधन नहीं होता, उसी प्रकार हम लोग समाज–व्यवस्था से परे हैं। हम लोग समाज–व्यवस्था की दृष्टि से मृत हैं। जिस प्रकार मृत व्यक्ति को किसी प्रकार का सामाजिक दायित्व बोध नहीं होता है, उसी प्रकार हम लोगों को किसी प्रकार का सामाजिक दायित्व बोध नहीं है। इसलिए इन लोगों की साधना 'ज्यन्ते मरा' (जीवित होते हुए मृत) है। इसका परिचय लालन शाह ने इस रचना के माध्यम से दिया है–

जेन्ते मरा प्रेम साधन कि पारबि तोरा,

ये प्रेमे किशोर–किशोरी हये छे हारा।।

शोसाय शोषे ना छाड़े वाण,

घोर तुफाने वाय तरी उजान,

ओ' तार, काम नदीते चर पड़ेछे,

नेम नदीते जल पोरा।।

हाँटते माना, आछे चरण,

मुख आछे तार, खाइते वारण,

फकिर लालन कय ए ये कठिन मरण कि पारबि तोरा।।

कबीर एवं लालन के संबंध में धारणा यह है कि ये लोग निरक्षर थे। इनकी वाणियों का संग्रह इनके शिष्यों ने किया है। निरक्षर होने के कारण कबीर ने रामानंद एवं शेख तकी से दीक्षा ग्रहण की थी और लालन ने सूफी फकीर सिराज साँई से दीक्षा ग्रहण की थी। चैतन्य वैष्णव भक्ति से प्रभावित थे। चैतन्य देव (1486–1533) का ध्येय राधा–कृष्ण की भक्ति से पूरे देश की यात्रा करके जनता में वैष्णव मत का प्रचार करना रहा है। इसलिए इन लोगों के धमर्मत को गुरुवादी धर्ममत कहा जाता है। इसका उल्लेख रोमिला थापर ने अपने 'भारत का इतिहास' ग्रंथ में किया है। जिस प्रकार कबीर के राम दशरथ के पुत्र राम नहीं हैं, उसी प्रकार लालन के कृष्ण वृंदावन विहारी कृष्ण नहीं है। कबीर ने रामानंद से दीक्षा ली थी जो वैष्णव संप्रदाय के थे और उनके सामने विष्णु के अवतार राम थे एवं नाथ पंथ के मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ थे, जो अलख निरंजन का नारा दिया करते थे एवं अंतर्यामी परमात्मा की आराधना करते थे। फलस्वरूप कबीर पर रामानंद एवं गोरखनाथ का प्रभाव पड़ा है। कबीर की साधना में नारी को हेय दृष्टि से नहीं देखा गया है किंतु नारी के साथ मिलन साधना न करने

की सलाह दी गई है। कबीर की विचारधारा पर हिंदुओं के अद्वैतवाद एवं मुसलमानों के सूफीमत का प्रभाव है। कबीर ने अद्वैतवाद से माया एवं चिंतन एवं सूफी मत से प्रेम लेकर अपनी विचारधारा की सृष्टि की है। उसी प्रकार लालन ने सूफी मत के प्रेम और जयदेव, विद्यापति एव चैतन्य के राधा–कृष्ण की लीला से अपनी विचारधारा की पुष्टि की है। क्या कारण रहा है कि दोनों की विचारधाराओं पर सूफीमत का प्रभाव पड़ा है? इस पर भी विचार करना आवश्यक है।

कबीर एवं लालन पर सूफी विचारधारा के प्रभाव होने का कारण यह है कि मुसलमानों के भारत में आगमन के साथ–साथ एक प्रकार के धार्मिक विचार के लोग भी आए, जिन्हें आउल या फकीर से संबोधित किया गया। सूफ अर्थात् जुन का ढीला–ढाला लंबा वस्त्र अर्थात् अल्लखल्ला धारण करने के कारण इन्हें सूफी नाम से संबोधित किया जाने लगा। इसके बाद आउल एवं फकीर शब्द गौण हो गए। सूफी मत के संबंध में कहा जाता है कि आठवीं शदी में इस्लाम धर्म में एक धार्मिक आंदोलन हुआ। पुराने विचारों के कट्टर मुसलमानों के विरोध में एक दल खड़ा हुआ। यह फारस का एक छोटा–सा संप्रदाय था। इसने परंपरागत मुस्लिम आदर्शों का ऐसा घोर विरोध किया कि कुछ समय तक इस्लाम धर्म के धार्मिक क्षेत्र में उथल–पुथल मच गई। इस संप्रदाय ने संसार के सारे सुखों को तिलांजलि दे दी। संसार के सारे ऐश्वर्य को स्वप्न की भाँति भुला दिया। बाह्य श्रृंगार और बनावटी बातों से उसे बिल्कुल घृणा हो गई। उसने एक स्वतंत्र मत की स्थापना की। सरलता और सादगी का आदर्श अपने सम्मुख रखकर उस संप्रदाय ने अपने शरीर के वस्त्र बहुत ही साधारण रखे। वे साधारण वस्त्र सफेद ऊन के थे। फारसी में सफेद ऊन के वस्त्र को सूफ कहते हैं। इसी शब्दार्थ के अनुसार सफेद ऊन के वस्त्र पहननेवाले सूफी कहलाने लगे। उनके परिधान के कारण ही उनके नाम की सृष्टि हुई। भारत में सूफियों के तीन संघ चिश्ती, सुहरावर्दी और फिरदौसी हैं। चिश्ती संप्रदाय के लोग दिल्ली के आसपास रहते थे। सुहरावर्दी संप्रदाय के लोग सिंध प्रदेश में रहते थे और फिरदौसी संप्रदाय के लोग बिहार प्रदेश में रहते थे। सूफी मत के अनुयायियों को फकीर अथवा दरबेश भी कहा जाने लगा। भारत में सूफी संप्रदाय उलेमाओं द्वारा कुरान की तथाकथित गलत व्याख्या के विरोधस्वरूप रूढ़िवादिता के स्थापित केंद्रों से अलग रहा।

सूफी मत में भी आत्मा और परमात्मा का एकीकरण माना जाता है। जिस प्रकार एक पथिक निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए प्रस्थान करता है, उसी प्रकार सूफीमत में आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए व्याकुल होकर अग्रसर होती है। परमात्मा से मिलने के लिए आत्मा को चार दशाएँ पार करनी पड़ती हैं– 1. शरियत 2. तरीकत 3. हकीकत 4. मारिफत। मारिफत में जाकर आत्मा और परमात्मा एकाकार हो जाते हैं किंतु वहाँ माया का स्थान नहीं है। सूफी मत में प्रेम का अंश बहुत महत्त्वपूर्ण है।

प्रेम ही कर्म और प्रेम ही धर्म है। लालन की साधना में नारी का स्थान प्रमुख

होने का कारण उसमें सूफी के प्रेम सिद्धांत और चैतन्य के राधा–कृष्ण की लीला विद्यमान है। लालन का कहना है कि नारी के बिना साधना पूर्ण हो ही नहीं सकती। प्रकृति–पुरुष (नारी–पुरुष) का मिथुन तत्त्व या प्रेम तत्त्व ही उसकी मूल साधना है। लालन ने निम्न पद के माध्यम से इसकी व्याख्या की है–

अनुराग नइले कि साधन हय,
से तो शुधु मुखेर कथा नय ।।
तार साक्षी आछे चातक रे,
ओ से कोट साधने याय मरे,
चातक अन्य बारि खायना रे,
थाके मेघेर जल आशाय।।
वनेर पशु हनुमान,
राम विने तार नाइ धियान,
मुदिलेओ तार दु नयन,
अन्य रूप ना फिरे चाय।
रामदास मुचिर भक्ति ते
गंगा एलो चाम–केठौते
एमन साधन करे कत महते
केवल लालन कुले कुले वाय।।

सूफी फकीर सिराज साँई से दीक्षा ग्रहण करने के बावजूद लालन पर उस समय बंगाल में विद्यमान चैतन्य महाप्रभु की प्रेमाभक्ति का प्रभाव था। चैतन्य जयदेव, विद्यापति एवं चंडीदास की रचनाओं के पदों का गायन करके वैष्णव भक्ति का प्रचार–प्रसार कर रहे थे। बाउलों के लिए हजरत मुहम्मद एवं चैतन्य महाप्रभु गुरु के महागुरु हैं। बाउल कबीर की भाँति राम–रहीम में अंतर नहीं समझते। बाउलों के श्री चैतन्यदेव राधा–कृष्ण के युग्म अवतार हैं। कबीर एवं लालन की रचनाओं की विषयवस्तु 1. गुरु स्तुति 2. शास्त्र विरोधी एवं 3. काया (देह) संबंधी है। काया संबंधी गीत ही बाउल गीतों के प्राण हैं क्योंकि इन लोगों की साधना मानव शरीरकेंद्रित साधना होती है। इसलिए मानव शरीर संबंधित प्रेम साधना सृष्टि से संबंधित है। बाउल काया ही अध्यात्म साधना है क्योंकि काया से ही आत्मा, हृदय, चेतना, अनुभूति, इंद्रिय–ज्ञान आदि हैं। साधना की दो धाराएँ, ज्ञानमार्ग से संबंधित योग साधना एवं मिथुनात्मक योग साधना हैं। बाउल भाव के पागल होते हैं। वे लोग स्वयं को भूलकर स्वयं में ही परमात्मा को ढूँढते हैं। इसे पाने का पथ प्रेम है। फलस्वरूप ये लोग प्रेमभाव के पागल होते हैं।

बाउल लोग अशिक्षित होने के कारण गुरु के निकट दीक्षा ग्रहण करके उनके निदेशानुसार काया (देह) तत्त्व की आध्यात्मिक साधना करते हैं। इन लोगों का कोई

लिखित शास्त्र–ग्रंथ नहीं है। गुरु का आदेश एवं मौखिक गीत ही इन लोगों का मात्र सहारा होता है। काया तत्त्व की गुह्य साधना होने के कारण ही इनके गीतों की भाषा अटपटी होती हैं। प्रेम एवं भक्ति के बिना साधना नहीं होती है। साधकों के लिए गुरु एवं ईश्वर के बीच संपर्क सूत्र प्रेम एवं भक्ति ही है। कबीर एवं लालन के लिए गुरु ही सर्वोपरि है। कबीर ने कहा है–

पीछे लगा जाइ था लोक वेद के साथि।
आगे थैं सतगुरु मिल्या दीपक दिया हाथि।

लालन ने भी गुरु के संबंध में कहा है–

गुरु सु–भाव दाउ आमार मने तोमार येन भूलि ने।।
गुरु, तुमि निइय यार प्रति ओ तार सदाय घटे दुर्मति,
मुमि मनोरथेर सारथी, यथा लू लउ याइ सेखाने
गुरु तुमि तंत्रेरतंत्री
गुरु तुमि मंत्रेर मंत्री
गुरु, तुमि यंत्रेर यंत्र
ना बाजाउ बाजबे केने ।।
आमार जन्म अंध मन–नयन,
गुरु तुमि नित्य सचेतन,
चरण देखबा आशाय कय लालन
ज्ञान–अंजन देओ नयने।।

लालन कबीर एवं रविदास के परवर्ती होने के कारण कबीर एवं रविदास की विचारधाराओं से परिचित थे। लालन ने अपनी रचनाओं में कबीर एवं रविदास का उल्लेख किया है–

एक बार जगन्नाथे देख से येये जात केमन राख बाचिये।
चण्डाले आनिले अन्न ब्राह्मणे ताई लय खेये।।
जोला छिचण्डाले आनिले अन्न ब्राह्मणे ताई लय खेये।।
जोला छिल कबीर दास, तार तोड़नि बार मास उठवे उथलिये।
सेइ तोड़ानि खाय से धनी, सेइ आसे दरशन पेये।।
धर्म प्रभु जगन्नाथ चाय ना रे से जात अजात, भक्तेर अधीन से।
यत जात–विचारी, दुराचारी, याय तारा सब दूर हये।।
जात ना गेले पाइ ने हरि, कि छार जातेइ गौरव करि छुसने बलिये।
लालन कय, जात हाते पेले पुरातम आगुन दिये।

आचार्य क्षितिमोहन सेन ने 'बांग्लार बाउल' पुस्तक में उल्लेख किया है कि इस धर्ममत का मिलन गुरु के माध्यम से ही घटा है। हिंदी के कबीर की भाँति लालन हिंदू थे या मुसलमान, यह विवाद का विषय बना हुआ है। कबीर एवं बाउल पंथ में जो लोग

आए, वे हिंदू समाज के निम्न श्रेणी के लोग ही हैं जो ब्राह्मण आदि जैसे उच्च वर्ग से अवहेलित एवं समाज से बहिष्कृत थे। इसलिए वे लोग सामाजिक बंधन को तोड़कर बाउलपंथी हुए हैं।

निष्कर्षतः, यह कहा जा सकता है कि कबीर एवं लालन की विचारधारा में साम्य रहते हुए भी दोनों की साधना पद्धति भिन्न है। जहाँ कबीर ने अपनी साधना में ज्ञान को प्रमुखता दी है वहीं लालन ने प्रेम को। इसका कारण यह रहा है कि कबीर के सामने मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ जैसे नाथपंथियों की साधना पद्धति थी और लालन के सामने चैतन्यदेव की वैष्णव भक्ति थी जिसका मुख्य ध्येय राधा–कृष्ण का लीला गान ही करना था।

**संदर्भः**


1. कबीर ग्रंथावली, संपादक श्यामसुंदर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
2. बांग्लार बाउल ओ बाउल गान, उपेंद्रनाथ भट्टाचार्य, कोलकाता।


❑❑❑

**भये अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,**
**याही दुख में हमैं जक लागी हाय हाय है।**
**तुम तो निपट निरदई, गई भूलि सुधि,**
**हमैं सूल सेलनि सो क्यों हूँ न भुलाय है।**
**मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिलें तौ तब,**
**अब जिय जारत, कहौ धौं कौन न्याय है।**
**सुनी है कै नाहीं, यह प्रगट कहावति जू,**
**काहू कलपायहै सु कैसे कल पायहै।।**

**घनानंद**

# आल्हा लोक महाकाव्यः मुहावरों में गुँथी वीरता की जीवंत दास्तान

**जगदीश व्योम**

पूर्व उपशिक्षानिदेशक, शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार, संप्रतिः स्वतंत्र लेखन और हिंदी के वैश्विक प्रचार हेतु अनेक योजनाओं से सक्रिय संबद्धता

आल्हा एक ऐतिहासिक लोकगाथा है। आल्हा गाने वाले अल्हैत समय–समय पर इसमें समकालीन विषयों को जोड़ते रहे हैं। शायद ही कोई ऐसा ग्रामीण हो जो 'आल्हा' के नाम से परिचित न हो। आल्हा ग्रामीण क्षेत्र में इतना लोकप्रिय है कि इसके एक–दो छंद बच्चे, युवा, बूढ़े सब सुना सकते हैं। दिल्लीनरेश पृथ्वीराज और कन्0नौज सम्राट जयचंद के समकालीन राजा 'परमाल' (परमार) महोबा के राजा थे। आल्हा–ऊदल नामक दो वीर इनके सामंत थे। इन दोनों वीरों ने अनेक लड़ाइयों में भाग लिया। आल्हखण्ड का मुख्य नायक 'आल्हा' है, 'ऊदल' सह–नायक है। मलखान, ब्रह्मा, ढेवा सहायक हैं तथा मामा माहिल खलनायक है। प्रतिनायक के रूप में कभी 'परमाल' आता है तो कभी 'पृथ्वीराज'। महोबा के राजा वासुदेव परिहार के तीन पुत्रियाँ एवं दो पुत्र हैं, जिनके नाम क्रमशः मल्हना, देवला तथा तिलका हैं। पुत्रों के नाम 'माहिल' तथा 'भोपति' हैं। 'मल्हना' का विवाह परमाल चन्देल से हुआ था, उसी के कहने पर परमाल ने महोबा पर कब्जा कर लिया, इससे दुःखी होकर माहिल और भोपित ने दूसरी राजधानी बसायी। माहिल इस घटना को जीवनभर नहीं भुला सका तथा बदला लेने का प्रयत्न आजीवन करता रहा। वन से आने के कारण वनाफर वीर देशराज तथा बच्छराज का विवाह मल्हना ने क्रमशः देवला तथा तिलका से कराया। देशराज (जसराज) एवं देवला से आल्हा, ऊदल और धाँधू तथा बच्छराज एवं तिलका से मलखान पैदा हुए। जसराज का आभीर स्त्री से 'चौड़ा' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था, जिसका परित्याग कर दिया गया था, उसे पृथ्वीराज चौहान ने पाला था तथा अपना सेनापति बनाया। आल्हा का पुत्र 'इन्दल' है। देशराज के विश्वसनीय मित्र 'ताल्हन' एवं शकुन विचारक 'ढेवा' हैं। इंद्र के श्याम करण घोड़े से उत्पन्न पाँच उड़ने वाले घोड़े–घोड़ियाँ 'आल्हा' एवं उनके मित्रों के पास है। 'लाखन' जयचन्द का भतीजा है। 'ताहिर' पृथ्वीराज का पुत्र है। पूरी लोकगाथा का कथानक चौहान, चंदेल, गहरवार एवं परिहार आदि राजाओं के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा के बीच उभरता है।

आल्हा का प्रचलन थोड़े–बहुत परिवर्तन के साथ अनेक प्रदेशों तक है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार–"कुछ लोकगाथाएँ ऐसी भी हैं जो विभिन्न प्रदेशों में रूपभेदों के साथ मिलती हैं; उनकी भाषा भिन्न हो गई है, पर मूल कथा एक ही है। कुछ लोकगाथाएँ तो विकसित होकर गाथाचक्र और लोकमहाकाव्य (फोक एपिक) का रूप धारण कर चुकी हैं। 'आल्हाखंड' ऐसा ही महाकाव्य है।"[1]

आल्हा में अल्हैत आल्हा गाते समय प्रसंगानुसार कुछ न कुछ जोड़ते रहते हैं। इस दृष्टि से इसे विकसनशील लोक महाकाव्य कह सकते हैं।

"आल्ह खण्ड को फोकएपिक कहना भी अपने में बड़ा सार्थक लगता है– लोक महाकाव्य मूलतः जनकंठ पर आधारित है। निरंतर एक प्रदेश से दूसरे तथा एक समुदाय से इतर एवं एक कालखंड से दूसरे कालखंड तक फैले हुए निरंतर लोक–कंठों पर ही विचरण करते रहते हैं। लोक–महाकाव्य निरंतर विकासशील, नाना प्रकार के लोकविश्वासों, रूढ़ियों, आस्थाओं, लोकप्रिय जननायक के सर्वसाधारणीकृत चरित्र, शौर्य पराक्रम एवं कल्पनामंडित इतिहास गाथाओं की प्रतिच्छवि होते हैं और ये संपूर्ण विशेषताएँ आल्ह–खंड में वर्तमान हैं।"[2]

आल्हा की कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं है। फिर भी वह लोककंठों में रहकर अपने को जीवंत बनाए हुए है, यह सामान्य बात नहीं है। आल्हा की मुहावरेदार भाषा, उसका सहज सरल छंद और लोकभाषा उसे प्राणवंत बनाए रखती है। आल्हा लोकप्रिय तो है ही, कुछ विद्वानों का मानना है कि आल्हा 'मानस' के बाद दूसरी ऐसी गाथा है जो जनसाधारण के मध्य सर्वाधिक लोकप्रिय है। अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' ने लिखा है कि– "आल्हा एक ऐसा महाकाव्य है जिसकी एक भी प्रामाणिक हस्तलिपि प्राप्त न होने पर भी जनता तथा गायकों के मध्य अति लोकप्रियता के कारण आठ सौ वर्षों से भी अधिक अवधि से लोककंठ तथा लोकमुख में जीवित है। उसका काव्य क्षेत्रीय सीमाओं को लाँघकर सार्वभौमिक हो गया है। भारतीय साहित्य में लोक–व्याप्ति की दृष्टि से 'तुलसी' के बाद 'जगनिक' का नाम लिया जा सकता है।"[3]

'आल्हा' मध्य–प्रदेश, उत्तर–प्रदेश तथा बिहार राज्य में समान रूप से लोकप्रिय है। 'आल्हा' मुख्य रूप से बुंदेली, बनाफरी, अवधी, भोजपुरी एवं कन्नौजी में गाया जाता है। 'आल्हा' का मुख्य छंद इकतीस मात्राओं का, सोलह–पंद्रह पर यति तथा अंत में गुरु– लघु वाला 'वीर छंद' है। आल्हा का गायन थोड़े–बहुत अंतर के साथ इसी छंद में होता हैं। आल्हखंड के रचनाकार ने इस छंद का नाम 'आल्हा' छंद स्वीकार किया है–

सोलह–पंद्रह अन्तै गुरु–लघु, 'आल्हा' छंद रचो अभिराम।

यह छंद इतना लोकप्रिय और सहज छंद है कि जयशंकर प्रसाद जी ने 'कामायनी' में इस छंद का प्रयोग किया है।

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।।

आल्हा का गायन प्रायः बरसात के दिनों में होता है– भरी दुपहरी सरवन गाइये, सोरठ गाइये आधी रात। आल्हा पंवाड़ा वा दिन गाइये, जा दिन झड़ी लगे बरसात। आल्हा के कथानक का मूल तो ऐतिहासिक है परंतु उसकी कथावस्तु की प्रस्तुति में अतिशयोक्तियों का अश्व भी समय–समय पर अपनी रफ्तार पकड़ता रहा है–

ऐसो चिमचा थो महुबे मैं, जामइँ नौ मन दारि अमाइ।
बड़े खबैया महुबे बारे, दस–दस चिमचा जायँ चढाइ।।

आल्हा का स्थायी रस वीर रस है। आल्हा वीरता की जीवंत दास्तान है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं–

"ऐसा प्रसिद्ध है कि कालिंजर के राजा परमार के यहाँ जगनिक नाम के एक भाट थे जिन्होंने महोबा के दो देश प्रसिद्ध वीरों– आल्हा और ऊदल (उदयसिंह) के वीर चरित का विस्तृत वर्णन कर एक वीरगीतात्मक काव्य लिखा था, जो इतना सर्वप्रिय हुआ कि उसके वीरगीतों का प्रचार क्रमशः सारे उत्तरी भारत में– विशेषतः उन सब प्रदेशों में जो कन्नौज साम्राज्य के अंतर्गत थे– हो गया। जगनिक के काव्य का आज कहीं पता नहीं है पर उसके आधार पर प्रचलित गीत हिंदी भाषाभाषी प्रांतों के गाँव–गाँव में सुनाई पड़ते हैं। ये गीत 'आल्हा' के नाम से प्रसिद्ध हैं और बरसात में गाए जाते हैं। गाँवों में जाकर देखिए तो मेघगर्जन के बीच में किसी अल्हैत के ढोल के गंभीर घोष के साथ यह वीर हुंकार सुनाई देगी–

बारह बरिस लै कूकर जीएँ, और तेरह लौ जिएँ सियार।
बरिस अठारह छत्री जीएँ, आगे जीवन को धिक्कार।

इस प्रकार साहित्य के रूप में न रहने पर भी जनता के कंठ में जगनिक के संगीत की वीरदर्पपूर्ण प्रतिध्वनि अनेक बल खाती हुई अब तक चली आ रही है।"[4]

आल्हा के रचयिता भले ही जगनिक रहे हों मगर आज जो आल्हा गाई जाती है वह निश्चित रूप से आल्हा का एक नया रूप है। समयानुसार अल्हैतों ने इस मौखिक लोकगाथा में बेरोक–टोक परिवर्तन किया है फिर भी यह लोक–मानस में अपना गहरा स्थान बनाए हुए है। एक उदाहरण देखें–

बाँह भुजाहन तइ फरकति हइ, नदिया पइ कब बाजै तलवारि।
नाहिं बेंदुला बूढ़ो हुइ गओ, नाइँ बलु खाइ गई तलवार।
जाके दुश्मन समुहें बइठे, ताके जीवन कउ धिक्कार।

आल्हा की इसी सर्वप्रियता और उसकी भाषा के जादुई प्रभाव को देखकर फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) जिले के तत्कालीन सेटलमेंट ऑफिसर चार्ल्स इलियट ने सन् 1865 ई० में गाँवों के आल्हा गायकों को बुलाकर आल्हा को लिपिबद्ध कराया था। चार्ल्स इलियट द्वारा फर्रुखाबाद में आल्हा को लिपिबद्ध कराने के पीछे एक घटना फर्रुखाबाद के पुराने लोगों में प्रसिद्ध है, वह यह कि– चार्ल्स इलियट फर्रुखाबाद में अपने एक मुकदमे की सुनवाई कर रहे थे। एक ग्रामीण व्यक्ति को उनकी अदालत में जब लाया गया तो वह बिना डरे और बिना घबराए अकड़कर चल रहा था, चार्ल्स इलियट ने सरकारी वकील से कहा कि वह इस आदमी से पूछे कि इसने कत्ल क्यों किया? जब सरकारी वकील ने उस आदमी से पूछा कि 'सरकार जानना चाहते हैं कि तुमने कत्ल क्यों किया?' तो उस आदमी ने अपनी मूँछों पर ताव देते हुए ऊँची आवाज में कहा– *'जाके दुश्मन समुहें बइठे, ताके जीवन कउ धिक्कार।'* सरकारी वकील ने चार्ल्स इलियट को उसकी कही हुई बात समझाई।... अदालत उठने के बाद जब चार्ल्स इलियट को वकील ने ठीक से समझाते हुए बताया कि यह आल्हा है, जो गाँवों में बहुत प्रचलित है, इसे बरसात के दिनों में खूब सुना जाता है, इसे सुनकर आपस में लड़ाइयाँ हो जाती हैं, लाठियाँ चल जाती हैं और कभी–कभी आल्हा सुनकर लोग अपने शत्रु का मर्डर तक कर डालते हैं... इस आदमी ने यही किया है...। चार्ल्स इलियट इस घटना से इतना प्रभावित हुआ कि उसने गाँवों के आल्हा गाने वालों को बुलाकर आल्हा लिपिबद्ध कराने का आदेश दिया ... इस प्रकार 1865 में चार्ल्स इलियट ने फर्रुखाबाद में आल्हा को लिपिबद्ध कराया।

आल्हा का जो रूप चार्ल्स इलियट ने लिपिबद्ध कराया था, उससे भी आल्हा का प्रवाह अवरुद्ध नहीं हुआ। अल्हैत आल्हा में निरंतर परिवर्तन करते रहे और आज भी उसमें परिवर्तन करते ही रहते हैं। जहाँ पर आल्हा गायकों को कुछ कमी लगती है अथवा स्वर में अधिक ओज लाने के लिए गायक गाते समय ही पंक्तियाँ गढ़ लेते हैं, इसके लिए उन्हें पूरी छूट है–

भूल चूक कहुँ सज्जन देखो, लीजो अपने आप बनाइ।

चार्ल्स इलियट की तरह ही सन् 1876 ई. में विसेण्टस्मिथ ने बुंदेलखंड के अल्हैतों के सहयोग से आल्हा को बुंदेली में लिपिबद्ध कराया था। आल्हा के यही दो पुराने पाठ मिलते हैं। कन्नौजी और बुंदेली के इन पाठों में, छंद में अंतर है और गायकी भी कुछ भिन्नता लिए हुए है–

पत राखौ मल्हना देवी कौ, और राखियौ धरम हमार ।
पत गये फिर पानी परि जैहैं, बिन पानी जीवन धिक्कार ।

–(चार्ल्स इलियट द्वारा संकलित आल्हा का कन्नौजी रूप)

मैं तोसे पूँछौं मल्हना रानी, सुनिहौ बात हमार।
कैसे मानिहैं कुँअर सठाने, जयचन्द के दरबार।

—(विसेण्टस्मिथ द्वारा संकलित आल्हा का बुंदेली रूप)

उपरोक्त दोनों पाठों में प्रयुक्त छंद भिन्न है, दोनों की गायकी में अंतर है। "प्रथम में यति के बाद प्रथम प्रवाह की आवृत्ति है और दूसरे में यति से पूर्व उठान है और उसके आगे की लय में अवरोहण, प्रथम 31 मात्राओं का वीर छंद है, तो द्वितीय 29 मात्राओं का आभीर छंद।"[5]

आल्हा का कितना प्रभाव जन सामान्य में रहा है, यह इस बात से स्पष्ट है कि अंग्रेज सरकार आल्हा की कई पुस्तकों से इतनी भयभीत हो गई थी कि उन्हें जब्त कर लिया गया था। "द्वितीय विश्व महायुद्ध में ठाकुर तिलक सिंह को सरकार सेना में आल्हा सुनाने के लिए सौ रुपये प्रतिमास वेतन देती थी।"[6]

अंग्रेज सरकार ने सेना के सिपाहियों में जोश भरने के लिए आल्हा गायकों को नियुक्त किया था, जो सेना में आल्हा सुनाने का काम किया करते थे। बाद में अंगरेज सरकार आल्हा की कई पुस्तकों से इतनी भयभीत हो गई थी कि उन्हें जब्त कर लिया गया था, जो अब उपलब्ध हैं और उन्हें देखा जा सकता है। आल्हा के कन्नौजी रूप की चार्ल्स इलियट द्वारा लिपिबद्ध प्रमुख 52 लड़ाइयाँ इस प्रकार हैं—

1. मछला हरण 2. सुरजा हरण 3. बेला का गौना 4. जैतखण्ड की लड़ाई 5. धाँधू का ब्याह 6. लाखन का गौना 7. चन्द्रावलि का ब्याह 8. ताहर का व्याह 9. इन्दल हरण 10. फुलवा हरण 11. ताला सैयद का ब्याह 12. जागन का ब्याह 13. आल्हा हरण 14. फुलवा सती 15. देवा का ब्याह 16. बहोरन का ब्याह 17. आल्हा की लड़ाई 18. मकरन्द का ब्याह 19. बाँगर की लड़ाई 20. पृथ्वीराज का ब्याह 21. मलखान संग्राम 22. चौड़ा का ब्याह 23. परमालिक का ब्याह 24. करिआ का ब्याह 25. करिआ की लड़ाई 26. चन्द्रावलि को गौनो 27. सुरजा का ब्याह 28. ब्रह्मा की सगाई 29. परमाल का ब्याह 30. आल्हा का ब्याह 31. ऊदल का ब्याह 32. सियानन्द का ब्याह 33. ब्रह्मा का ब्याह 34. माढ़ौं की लड़ाई 35. चन्द्रावलि की चौथी 36. गजमोतिन सती 37. भुजरियों की लड़ाई 38. लाखन का ब्याह 39. आल्हा मनौआ 40. सुलखे का ब्याह 41. मन्नागूजर का ब्याह 42. गजमोतिन हरण 43. धनुआँ का ब्याह 44. आल्हा की निकासी 45. बेला सती 46. नवले का ब्याह 47. अभई का ब्याह 48. ऊदल हरण 49. त्रिवेणी हरण 50. सिंगलदीप की लड़ाई 51. चुगुलमाहिल का ब्याह 52. परमाल विजय

आल्हा में वीरता और युद्धप्रियता यहाँ तक है कि आल्हा की स्त्रियाँ अपने पति को युद्ध में जाने से रोकती नहीं हैं बल्कि उन्हें युद्ध में जाने के लिए प्रेरित करती हैं। एक प्रसंग दृष्टव्य है— मलखान के विवाह में आल्हा ने जब जाने से मना कर दिया

तो आल्हा की रानी मछला ने आल्हा को समझाया। फिर भी जब वह जाने को तैयार न हुए तो मछला ने व्यंग्यात्मक ढंग से अपने पति आल्हा को युद्ध में जाने के लिए ताने मारते हुए किस तरह प्रेरित किया यह दृष्टव्य है–

हिम्मत नाहीं जो लड़िबे की, तउ तरकीब देउँ बतलाइ।
पाँचउ कपड़ा अपने दइ देउ, अरु हथियार देउ दिलवाइ।
मेरे कपड़ा बालम पहिनउ, नारी बनउ मछल्दे क्यार।

× × × ×

यह सुनि आल्हा राउटु हुइ अए, उननइँ दई बड़ी ललकार।
हंटरु लइ लओ हइ खुटिआ सइ, चुटिया पकरि मछल्दे क्यार।
अतिरिस छाइ गई आल्हा कउ, उन्नइँ दए चार छः झारि।

× × × ×

हाँतु उठाउत तुम तिरियन पइ, सबु क्षत्रीपनु दओ नसाइ।
वीर बहादुर हउ जो नाहर, तउ क्यों बइठे मूँछ झुकाइ।
खाइ काइली गई आल्हा कउ, तुरतइ गए कचहरी आइ।

आल्हा की भाषा में जिस तरह की शब्दावली, लोक मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है, वह एक जीवंत भाषा का उदाहरण है। आल्हा में प्रयुक्त लोकछंद में ऐसा प्रवाह और लयात्मकता है कि एक बार सुनने और पढ़ लेने के बाद अनायास ही पंक्तियाँ याद हो जाती हैं। ग्रामीण जनता बात–बात में लोकोक्तियों, मुहावरों, कहावतों का सटीक प्रयोग करती है। लोकोक्तियों, मुहावरों के प्रयोग से बड़ी से बड़ी बातें भी आसानी से समझ में आ जाती है। लोकोक्तियों, मुहावरों के प्रयोग से लोक साहित्य समृद्धशाली बनता है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखते हैं– "हमारे देश के पास, जनसाधारण के पास भाषा का ऐसा भंडार है कि हम उसकी उपेक्षा करके दर्शन और विज्ञान के ग्रंथ भले ही लिख लें, बातचीत नहीं कर सकते। आम आदमी की बातचीत में मस्तिष्क का माया–जाल नहीं, हृदय की सरल सरसता होती है।"[7]

आल्हा की लोकप्रियता और उसकी अमरता के पीछे अनेक कारणों में से एक कारण उसमें प्रयुक्त मुहावरेदार भाषा भी है। आल्हा की लड़ाइयों के पीछे अधिकतर सुंदर स्त्रियाँ और मान–सम्मान रहा है।

इज्जत/सम्मान से संबंधित मुहावरों में–

घड़े का पानी न पीना, जीते जी मर जाना, सिंह छोड़ कर स्यार के घर आना, मूँछ कट जाना, रजपूती का असर न आना, कोख लजाना, मुँह न दिखा पाना आदि मुहावरों के सटीक प्रयोग आल्हा की पंक्तियों में देखने को मिलते हैं। अपने से कम इज्जत वालों के यहाँ लड़की की शादी हो गई तो घड़े का पानी भी समाज के लोग

नहीं पिएँगे—

जो कहुँ ब्याहि जायँ महुबे के, कोई न पिअइ घड़ा को पानि।

× × × ×

लील को टीका तुमकउ हुइहइ, हमरो जिअत मरन हुइ जाय।

× × × ×

सिंघु छोड़ि के स्यार के आई, सारी इज्जत दई बिगारि।

× × × ×

बात बिगर जाइ सब दुनिया मैं, मेरी जर सै मूँछ कटि जाय।

आल्हा में प्रेम—इश्क भी लड़ाइयों के कारण बनते रहे हैं, अधिकांश लड़ाइयों का मुख्य कारण सुंदर कन्याएँ— 'जा घर बिटिया कुआँरी देखी, ता घर जाइ धरे हथियार।' 'जेहि की बिटिया नीकी देखी, तेहि घर धरे बरौना जाय।' यह प्रेम, इश्क और शान आल्हा के केंद्र में है। अनेक मुहावरों के प्रयोग से ऐसे दृश्यों को अल्हैतों ने जीवंत बनाया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं— नैन लड़ाना, फूले न समाना, उल्लू बनाना, बीघन मांस फैला देना, जवानी की ठसक दिखाना, लीद झरवाना, दूसरा मुँह बनवाना, गरद हुइ जाना, खाल खींच के भुसा भरवा देना, झूठा जाल फैलाना, कान काटना, चूड़ियों के गाहक होना, कुआँ में गिरना, भुंटा सा सिर उड़ा देना आदि। मुहावरों के कुछ प्रयोग आल्हा में देखें—

मरि गई तिरियाँ का दुनिया कीं, हम सइ नैन लड़ाये आय।

× × × ×

सुनिके बातैं रानी मछला की, राजा फूलो नाइँ समाय।

× × × ×

नैन बान मछला हन मारे, राजइ उल्लू दओ बनाय।

× × × ×

नचत भगतुअन के लौंडा हैं, दाँती पीति—पीति सिसिआँइ।

× × × ×

ठसक दिखइहउ जो ज्वानी की, बीघन माँसु देउँ फइलाय।

× × × ×

खुली बतीसी जब मछला की, मानौ उगलि परी तलवारि।

आल्हा में प्रयुक्त अनेकानेक मुहावरों में—डर, दहशत, बुरी खबर, डाँटना—फटकारना, चेतावनी, शिकायत, शकुन—अपशकुन आदि आदि विषयों के चित्रण में मुहावरों का कितना सटीक, सहज और स्वाभाविक प्रयोग किया गया है इन्हें आल्हा के निम्नलिखित छंदों में देखा जा सकता है—

सुआराम की दहसत भारी, क्षत्री कान हिलवाइँ नाँय।
नाम सुनतखन ज्वालासिंह को, मुँह की सूखि गई सब लार।
दाबि अँगुरियाँ तिरियाँ रह गईं, बाजू धरे किवारन क्यार।
गैल गुटइयाँ बैरिन हुइ गईं, जिन पइ राह चली ना जाय।
सुनिके बानी जा आल्हा की, क्षत्रिन मूँड लए अउँधाय।

आल्हा में इस तरह के इतने मुहावरों का प्रयोग हुआ है कि इन लोक मुहावरों और इनके ललित प्रयोगों पर कई प्रकार से शोध कार्य किया जा सकता है। लोक प्रचलित ऐसे–ऐसे ठेठ शब्द आल्हा में प्रयुक्त हुए हैं जिनसे नई पीढ़ी सर्वथा अपरिचित ही होगी। ये मात्र शब्द या मुहावरे नहीं हैं बल्कि इन शब्दों और मुहावरों के पीछे लोक की अमूल्य संपदा है। आल्हा केवल लोक महाकाव्य और उसमें प्रयुक्त लोक मुहावरों में गुँथी वीरता की जीवंत दास्तान ही नहीं बल्कि लोक की हजारों साल की संचित सांस्कृतिक धरोहर है, रीति–रिवाजों का लोक सुवासित गुलदस्ता है, परंपराओं की लोकसंपृक्त पोटली है, इतिहास–भूगोल का जीवंत दस्तावेज है। इस लोकनिधि को समय रहते सहेज लिया जाए, तो लोक की यह अमूल्य संपदा अभी भी बचाई जा सकती है।

**संदर्भ ग्रंथः**


1. हिंदी साहित्य कोश, भाग–1, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, तृतीय सं. 1985, पृष्ठ– 750
2. 'लोकगाथा परंपरा और आल्हखंड' सम्मेलन पत्रिका, भाग–74, संख्या 3–4, आषाढ़–मार्गशीर्ष, शक 1911, पृष्ठ– 2
3. जगनिक, अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद', साहित्य अकादमी दिल्ली, संस्करण– 2014, पृष्ठ–12.
4. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, संस्करण– संवत् 2038 वि०, पृष्ठ 66
5. 'लोकगाथा परंपरा और आल्हखण्ड' सम्मेलन पत्रिका, भाग–74, संख्या 3–4, आषाढ़–मार्गशीर्ष, शक 1911, पृष्ठ– 9–10
6. कन्नौजी लोक साहित्य में समाज का प्रतिबिंब, डॉ. सुरेश चंद्र त्रिपाठी, रूपायन प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1977, पृष्ठ– 210
7. सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, पृष्ठ– 434


❑❑❑

# समकालीन हिंदी ग़ज़ल का परिदृश्य

**अनुज यादव**
शोधार्थी, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा

**कमलेश कुमारी**
सह आचार्य, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़, हरियाणा

समकालीन अर्थात् जो समकाल में है या इस काल में है। 'समकालीन' शब्द अंग्रेजी के 'कांटेम्परेरी' के पर्याय के रूप में प्रचलित है जिसका कोशीय अर्थ एक ही समय का, अपने समय का या समवयस्क होता है। समकाल शब्द यह बताता है कि काल के इस प्रचलित खंड या प्रवाह में मनुष्य की स्थिति क्या है। इसे उलटकर कहें तो मनुष्य की वास्तविक स्थिति देखकर या उसे अंकित–चित्रित करके ही हम समकालीनता की अवधारणा को समझ सकते हैं। समकालीनता का विस्तार इस अर्थ में होता है कि जो सृजन समकालीन युग में किया जा रहा है, यदि समकालीन प्रवृत्तियों एवं सामाजिक परिदृश्य को प्रतिबिंबित नहीं करता तो उसे समकालीन मानने में संदेह है। इसी प्रकार जो साहित्य इस युग के पहले लिखा गया है, यदि वह समय का अतिक्रमण करता है तो पहले लिखा जाकर भी वह समकालीन है। समकालीन एक व्यापक और बहुआयामी शब्द है और आधुनिकता का आधार तत्त्व है। जो समकालीन है वह आधुनिक भी हो यह आवश्यक नहीं, किंतु जो आधुनिक चेतना से संबंधित दृष्टि है वह निश्चित रूप से समकालीन भी होती है। इसी संदर्भ में समकालीनता के अर्थ एवं तात्पर्य को थोड़ा व्यापक करके ही ग्रहण करना चाहिए।

समकालीन समाज एक वैज्ञानिक समाज है। यह समाज ज्ञान की प्राप्ति अथवा किसी समस्या के उपयुक्त समाधान के लिए संबंधित घटनाओं एवं परिस्थितियों का विश्लेषण बौद्धिक एव तार्किक रूप से करता है। समाज के विकास के साथ ही मनुष्य का यह दृष्टिकोण विकसित हुआ है कि वह वैज्ञानिक आधारों पर अपने समाज की अन्य क्रियाओं को समझने का प्रयास करें। समकालीन समाज वैश्वीकरण, उदारीकरण, आधुनिकीकरण और उत्तर–आधुनिकीकरण से जुड़ा है जिसने क्षेत्रीयता की भावना को सुदृढ़ किया है। अब आंचलिक क्षेत्र अपनी स्वायत्तता की माँग कर रहे हैं। शिक्षा ने युक्तायुक्त विचारधारा को बढ़ावा दिया है। यह नहीं है कि आधुनिकीकरण को भारतीय समाज ने पूरी तरह स्वीकार कर लिया है बल्कि परंपरा और सामाजिक

संरचना ने आधुनिकीकरण के प्रति अपनी चुनौती भी रखी है।[1]

हिंदी में ग़ज़ल विधा के विकास और प्रवृत्तियों की बात की जाए तो समकालीन प्रमुख ग़ज़लकारों में दुष्यंत कुमार, कुँअर बैचेन, गोपालदास 'नीरज', सूर्यभानु गुप्त, चंद्रसेन विराट, भवानी शंकर, जहीर कुरेशी, हनुमन्त नायडू, डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, रामकुमार कृषक, डॉ. उर्मिलेश, अदम गोंडवी, ज्ञानप्रकाश विवेक, शिव ओम अंबर, रामावतार त्यागी, बालस्वरूप राही, अवधनारायण मुद्गल, शेरजंग गर्ग, नंदलाल पाठक, रोहिताश्व अस्थाना, राजेश रेड्डी, सादिका नवाब 'सहर', राम प्रसाद शर्मा महर्षि, शलभ श्री रामसिंह, विनोद तिवारी, विज्ञान व्रत, महेश अग्रवाल, हस्तीमल हस्ती, डॉ. किशन तिवारी, माधव कौशिक, देवेंद्र आर्य, सुल्तान अहमद, कमलेश भट्ट 'कमल', राजेंद्र तिवारी, विनय मिश्र आदि का अनुपम योगदान है।

दुष्यंत कुमार को समकालीन हिंदी ग़ज़ल का अगुआ माना जाता है। दुष्यंत कुमार का जन्म 1 सितंबर, 1933 ई. को राजपुर नवादा, जिला बिजनौर, उत्तर प्रदेश में एक जमींदार परिवार में हुआ था तथा केवल 42 साल की उम्र में 30 दिसंबर 1975 ई. को भोपाल में उनका देहांत हो गया। दुष्यंत कुमार ने अपनी ग़ज़लों में ग़मे जानां या वैयक्तिक पीड़ा से गमे दौरां या सार्वजनिक पीड़ा में समाने के बजाय सार्वजनिक पीड़ा में अपनी वैयक्तिक पीड़ा को लीन कर दिया है। प्रिय से गिले–शिकवे, विरह और मिलन की अनुभूतियाँ अर्थात् जाति–रिश्तों का दर्द या जाति अनुभवों की पीड़ा उनकी ग़ज़लों में बहुत ही कम है। इनका दर्द कुछ और नहीं, समाज की विसंगतियाँ, विद्रूपताएँ और शोषण है। वे अपने मन में समाजवाद की इच्छा रखते थे और उनकी सारी लड़ाई हक या अधिकार की लड़ाई थी।

"जिन आँसुओं का सीधा ताल्लुक था पेट से
उन आँसुओं के साथ तेरा नाम जुड़ गया।"[2]

दुष्यंत कुमार महानगर के प्रदूषित वातावरण और घर की समस्याओं को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–

"ये धुएँ का एक घेरा कि मैं जिसमें रह रहा हूँ।
मुझे किस कदर नया है, मैं जो दर्द सह रहा हूँ।"[3]

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की भी कमी नहीं है। आधुनिक युग में पनपने वाले भय, क्रोध, घुटन और असफल इच्छाओं को दुष्यंत कुमार ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर महसूस किया है।

"मैं बेपनाह अँधेरों को सुबह कैसे कहूँ,
मैं इन नज़ारों का अंधा तमाशबीन नहीं।"[4]

दुष्यंत कुमार के अनुसार राजनीति के दाँव–पेंच को जनता काफी हद तक समझती है। उनका मूल स्वर राजनीति और समाज से जुड़ा हुआ है, दुष्यंत कुमार के अनुसार राजनेताओं के हाथों में आज आदमी खिलौना बनकर रह गया है–

"जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में,

हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं।"[5]

दुष्यंत कुमार की भाषा हिंदुस्तानी भाषा है, जहाँ उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं के बीच की सीमा टूट जाती है और दूरी मिट जाती है। हिंदुस्तानी भाषा और हिंदुस्तानी हृदय के साथ दुष्यंत कुमार ने ग़ज़ल के ऐसे संसार का निर्माण किया है जिसमें आने वाले ग़ज़लकारों के लिए प्रेरणा ही प्रेरणा थी।

डॉ. कुँअर बेचैन समकालीन हिंदी ग़ज़लकारों में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। आपका नाम हिंदी ग़ज़लकारों में अत्यन्त आदर एवं स्नेह के साथ लिया जाता है। डॉ. कुँअर बेचैन अपनी ग़ज़लों के माध्यम से समाज को रोगमुक्त करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य समाज को जीवनदान देने का सशक्त माध्यम है और इसी संकल्प को लेकर वे अपनी ग़ज़लों के माध्यम से प्रहार भी करते हैं, परंतु यह प्रहार वे मारने के लिए न करके जीवनदान देने के लिए करते हैं। उनका कहना है "अब ग़ज़ल के सामने पूरा समाज एक ऐसी इकाई बनकर सामने आता है जिसमें सर्वहारा की प्रताड़ना छिपी रहती है। आज की ग़ज़ल समाज की इसी इकाई के दुःख–निवारण की तीर्थ यात्रा भी है।" आज मनुष्य–मनुष्य के बीच इतनी दूरियाँ पैदा हो गई हैं कि आपसी एकात्म भाव के संबंध ही जैसे समाप्त हो गए हैं। प्रत्येक मनुष्य अपना स्वार्थ सिद्ध करने में ही जुटा हुआ है तथा आत्मकेंद्रित हो गया है।

"मेरी नजरों से नजारों की तरह टूटे हैं

वो जो टूटे तो, सहारों की तरह टूटे हैं

जिस को चाहा था, उसी प्यार को पाने के लिए

हम भी दुनिया में हजारों की तरह टूटे हैं।[6]

गोपालदास 'नीरज' को काव्य–लेखन की प्रेरणा हरिवंशराय बच्चन के 'निशा निमंत्रण' से प्राप्त हुई। मूलतः नीरज एक गीतकार हैं किंतु उन्होंने कुछ ग़ज़लों का सृजन भी किया है। वे अपनी ग़ज़लों को 'गीतिकाएँ' कहते रहे। उनकी गीतिकाओं को कई लोग गीत और ग़ज़ल का मिला–जुला रूप मानते हैं। नीरज की कुछ ऐसी ग़ज़लें हैं जो गीत के विधान के अधिक निकट हैं। ये शुद्ध रूप से न तो गीत ही हैं न ग़ज़ल ही बल्कि दोनों का मिला–जुला रूप हैं।"[7] उन्होंने कुछ ऐसी ग़ज़लें लिखी हैं, जो उर्दू ग़ज़ल के छंद–विधान पर आधारित हैं। 'नीरज की गीतिकाएँ', 'नीरज की पाती' तथा 'कारवाँ गुजर गया' इन संकलनों में जो ग़ज़लें संकलित हैं, उन्हीं गज़लों को विवेचन हेतु आधार बनाया गया है। नीरज मानवीय संवेदना को लेकर लिखते हैं–

"जिसमें इंसान के दिल की न हो धड़कन 'नीरज'

शायरी तो है वह अखबार की कतरन की तरह।"[8]

नीरज के मतानुसार भारतवर्ष को यदि संपन्न एवं खुशहाल बनाना है तो देश में एक ऐसे मजहब को चलाना आवश्यक है जिसमें इंसानियत ही सबसे महत्त्वपूर्ण हो।

सांप्रदायिकता के कारण धर्म और मजहब के मध्य जो दीवार निर्मित हो गई है, वह बेमानी है। इस दीवार को गिराना आवश्यक है। इसके लिए इंसानी धर्म का निर्माण करने की आवश्यकता है। नीरज की मान्यता है कि लोगों के दिलों में बढ़ती हुई नफरत को केवल प्यार मुहब्बत से ही मिटाया जा सकता है। वे लिखते हैं–

"अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाए
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाए।
जिसकी खुशबू से महक जाए पड़ोसी का भी घर
फूल इस किस्म का हर सिम्त खिलाया जाए।
मेरे दुःख दर्द का तुझ पर हो असर कुछ ऐसा,
मै रहूँ भूखा तो तुझसे भी न खाया जाए।"[9]

नीरज जी मानते हैं कि रचना सप्रयास न होकर स्वतःस्फूर्त होती है– ''तुम्हें यह जानकर शायद विश्वास न आए कि मैंने अपनी एक भी कविता आज तक स्वयं नहीं लिखी। मैनें स्वयं नहीं लिखी का अर्थ यह नहीं कि किसी और ने लिखी और छप गई मेरे नाम से। ......मतलब यह कि मैंने सप्रयास नहीं लिखी। अभिव्यक्ति की हूक स्वतः ही शब्द पाकर मेरी लेखनी की नोक पर अनायास उतर आती है और मुझे पता ही नहीं चलता कि कब और कैसे वह कविता बन जाती है।"

सूर्यभानु गुप्त का जन्म 22 सितंबर, 1940 में उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के नाथूखेड़ा गाँव में हुआ था। उन्होंने 12 वर्ष की उम्र से कविता लेखन प्रारंभ कर दिया था। वे युवावस्था में अर्थात् 1961 में ही फिल्मों के लेखन कार्य के लिए मुंबई आ गए थे। यहाँ उन्होंने अनेक नौकरियाँ कीं लेकिन सन् 1993 से नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन में संलग्न हो गए। उनका एकमात्र कविता–संग्रह 'एक हाथ की ताली' सन् 1997 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ जिसमें उनकी 22 ग़ज़लें ही शामिल हैं। सूर्यभानु गुप्त की ग़ज़लों में आज की पूँजीवादी सभ्यता और महानगरीय जीवन में व्याप्त समस्याओं– हर तरफ भाग–दौड़, मार–काट, लूट–खसोट, छल–प्रपंच, ईर्ष्या–द्वेष, झूठ–फरेब, धोखा–मक्कारी आदि का बहुत विश्वसनीय चित्रण हुआ है–

"रात दिन यूँ चला सिलसिला झूठ का,
बन गया दोस्तो! एक किला झूठ का।
सच तो मुरझा गए राजदरबार में,
कोई चेहरा खिला तो खिला झूठ का।
शहरे–जम्हूरियत मर्हबा–मर्हबा,
रहगुजर–रहगुजर काफिला झूठ का।"[10]

सूर्यभानु गुप्त ने अपनी ग़ज़लों में आम आदमी की पीड़ा को बहुत ही मार्मिकता से उकेरा है। इस पीड़ा का कभी वे सीधा बयान करते हैं तो कभी प्रतीकों, बिंबों और उपमानों के माध्यम से। उदाहरण दृष्टव्य है–

''चाँद, दरिया, हवा चश्मे तर जिंदगी,
खूबसूरत गमों का सफर ज़िंदगी।
ज़िंदा होने का अहसास तक भी नहीं,
ये कहाँ पर गई है ठहर ज़िंदगी।
सौ–जगह पे रफू की गई शर्ट है,
क्या करे लेके कोई बशर ज़िंदगी।''[11]

श्री चंद्रसेन डोके 'विराट' महाराष्ट्रियन मूल के हिंदी कवि हैं। उनका जन्म 3 दिसंबर, 1936 को जिला इंदौर, मध्यप्रदेश के एक गाँव 'बलवाडा' में हुआ था। उनका बचपन का नाम बालू था। उनकी माता का नाम वेणुताई डोके तथा पिता का नाम यादवराव डोके था, जो मध्यप्रदेश शासन में शिक्षा विभाग के वरिष्ठ अधिकारी के पद पर आसीन थे। चंद्रसेन विराट के 12 ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। यात्रा के बारह पड़ावों के रूप में आए ग़ज़ल संग्रह इस प्रकार हैं–

निर्वसना चाँदनी, आस्था के अमलतास, कचनार की टहनी, धार के विपरीत, परिवर्तन की आहट, लड़ाई लंबी है, न्याय कर मेरे समय, फागुन माँगे भुजपाश, इस समय का आदमी, हमने कठिन समय देखा है, खुले तीसरी आँख, बोल मेरी जिंदगी। इनकी ग़ज़लों में प्रेम की सुंदर और कोमल अनुभूतियाँ दिखाई पड़ती हैं। यद्यपि प्रेम सरस जीवन का मूल आधार है, परंतु जीवन की संपूर्णता प्रेम में ही सन्निहित नहीं है। जब पेट में भूख की ज्वाला जल रही हो, तब प्रेम की भावनाएँ सर्वथा निरर्थक लगती हैं। विराट की गज़लों में हिंसा, बर्बरता, पशुता के प्रति विद्रोह का भी स्पष्ट स्वर दिखाई पड़ता है–

''ये घटा है या प्रलय अभियान का संकेत है,
इन हवाओं में किसी तूफान का संकेत है।
अनसुनी कर दी गई है चीख फिर से सत्य की,
यह किसी सुकरात के विषपान का संकेत है।"[12]

विराट जी का हिंदी ग़ज़ल के प्रति भावात्मक लगाव है। उन्होंने समकालीन तथा परवर्ती रचनाकारों को अपने कथ्य की सार्थकता बनाए रखने की प्रेरणा भी दी है–

''भले ही कम लिखें लेकिन बराबर यह रहे कोशिश,
लिखा जब जाए तो अच्छे से भी अच्छा लिखा जाए।''[13]

भवानी शंकर का जन्म 20 जून 1945 को जबलपुर में हुआ। वे युग प्रवर्तक ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार के समकालीन थे। उनके दो ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हुए हैं। पहला 'भवानी शंकर की ग़ज़लें' 1974 में प्रकाशित हुआ, जिसमें उनकी 32 ग़ज़लें हैं तथा दूसरा 'चौखटों के पार' 1976 में आया, जिसमें 30 ग़ज़लें प्रकाशित हुई थीं।

'भवानी शंकर की ग़ज़लें' पुस्तक की भूमिका में श्री केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने लिखा है कि– "प्रस्तुत संग्रह में 32 कविताएँ हैं। मेरे विचार में ये बत्तीस कविताएँ नहीं

हैं, बल्कि वर्तमान समाज के चेहरे पर बत्तीस तमाचे हैं। उष्ण रक्त वाले एक ईमानदार कवि के मजबूत हाथ की करारी चोट।''[14] भवानी शंकर एक प्रगतिशील और जनपक्षधर मूल्यों के समर्थक रचनाकार है। डॉ. वशिष्ठ अनूप कहते हैं कि "उनकी ग़ज़लें दबे कुचले, शोषित वर्ग के दुःख–दर्द का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। मजदूरों–किसानों और सामान्य नौकरीपेशा इंसान के जीवन की तकलीफों, अभावों और त्रासदियों को ये ग़ज़लें बड़ी जीवंतता के साथ प्रस्तुत करती हैं।''[15] यथा–

''हाड़ सूखे, खेत बंजर और ये जलता मकान,
देखना है चुप रहेगा और कब तक आसमान।
कोख धरती की हरी होगी वहाँ पर दोस्तों,
आदमी हल में जुता होगा जहाँ लहूलुहान।''[16]

भवानी शंकर की ग़ज़लों में एक तरफ आज की विभिन्न स्थितियों और विकृतियों पर चोट की गई है, वहीं पारंपरिक बंधनों व रूढ़ियों से मुक्ति की कोशिश तथा एक बेहतर समाज के निर्माण की कोशिश व आकांक्षा भी दिखाई पड़ती है–

अपनी अलग जमीन बनाए हुए तो है,
इक शख्स शहर भर को हिलाए हुए तो है।"[17]

भवानी शंकर राजनीतिक व सामाजिक समझ के ग़ज़लकार हैं। उन्होंने वर्तमान समाज के खुरदुरे यथार्थ को न केवल चित्रित किया, अपितु जनसामान्य को इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने का साहस भी प्रदान किया। कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी इनकी ग़ज़लों के शेर सरल और बोधगम्य हैं।

हिंदी समकालीन ग़ज़ल साहित्य के विकास में जिन महत्त्वपूर्ण ग़ज़लकारों का विशेष योगदान हैं, उनमें जहीर कुरेशी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जहीर कुरेशी का जन्म 5 अगस्त, 1950 को चंदेरी, जिला अम्बिकापुर, मध्यप्रदेश में हुआ था। काव्य सृजन की लगन और प्रेरणा उन्हें अपने उर्दू शायर पिता शेख मुहम्मद नजीर साहब से मिली थी। जहीर कुरेशी के दो ग़ज़ल संग्रह हैं– एक टुकड़ा धूप (1979), (उत्तर प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत) और 'चाँदनी का दुख' (1986)। वे उन कुछ एक ग़ज़लकारों में से एक है, जिनकी ग़ज़लें हिंदी में सोची और विशुद्ध हिंदी भाषा में रची गई हैं। जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में राजनीतिक बोध, मध्यम और निम्नवर्ग की दुर्दशा, उनके दैनिक जीवन की कठिनाइयों कभी व्यक्तिगत रूप से तो कभी सामूहिक रूप से प्रदर्शित होती हैं। वे लिखते हैं–

''दो रोटी के अलावा चार की बातें नहीं करते,
करोड़ों लोग कोठी कार की बातें नहीं करते।
जिन्हें बिकना है, जीवन में हजारों बार बिकना है,
वे अपने मूल्य या बाज़ार की बातें नहीं करते।''[18]

जहीर कुरेशी ने राजनीति के घिनौने चेहरे पर भी जमकर प्रहार किया है।

लोकतांत्रिक मूल्यों के हनन एवं राजनेताओं की अवसरवादिता इत्यादि पर उन्होंने बड़ा कठोर व्यंग्य किया है–

"वे तो अभिनेता हैं, उसके भाव पढ़ना है कठिन,
उसके चेहरे से न लग पाएगा अंतर का पता।
कल महोत्सव वोट गिरने का है शायद इसलिए,
आज 'पर्वत' पूछने आया है 'कंकर' का पता!"[19]

जहीर कुरेशी ने अपनी ग़ज़लों में स्त्री के दुःख–दर्द को बड़े ही गंभीरता से उकेरा है। डॉ. सायमा बानो कहती हैं– "नारी जीवन के यथार्थ के निकट हिंदी ग़ज़लों को ले जाने में ज़हीर की अहम भूमिका रही है। स्त्री जीवन की कटुताओं और विसंगतियों को इन ग़ज़लों ने प्रभावी स्वर दिया है, स्त्री के विविध रूपों में अपनी संवेदनाओं के साथ जहीर यहाँ उपस्थित हैं। पत्नी, पुत्री, प्रेयसी, माँ यहाँ तक कि गणिका का चरित्र भी इसमें बिंबित है और इन सबसे बढ़कर नारी का वह रूप जिसकी युगों से अवहेलना होती रही है– उसका मनुष्य रूप।"[20]

जहीर कुरेशी की ग़ज़लों में नारी विमर्श के सर्वाधिक शेर मिलते हैं। दुष्यंत कुमार सहित हिंदुस्तान के किसी भी शायर ने शायद ही नारी जीवन के इतने विभिन्न रूपों और आयामों पर फोकस किया हो। "जहीर कुरेशी की गज़लों की स्त्री एकदम हिंदुस्तानी औरत है जिसकी मनःस्थिति एवं मानसिकता को जहीर ने बारीकी से उकेरने की प्रामाणिक कोशिश की है।"[21] जहीर कुरेशी की ग़ज़लें वस्तु, भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से हिंदी की मानक ग़ज़लों में शुमार हैं। ये ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल की समृद्धि के नए कीर्तिमान भी निर्मित कर रही हैं। दुष्यंत कुमार के बाद हिंदी ग़ज़ल को जो मान्यता मिली है तथा इसका जो विकास हुआ है उसमें ग़ज़लकार जहीर कुरेशी के योगदान को कभी नहीं नकारा जा सकता। अतः समकालीन हिंदी ग़ज़ल की चर्चा जहीर कुरेशी की ग़ज़लों के बिना आधी–अधूरी होगी।

इस प्रकार कह सकते हैं कि हिंदी ग़ज़ल की परंपरा का इतिहास एक सृजनात्मक प्रक्रिया की परिणति है जो साहित्यिक अनुशासन, भाषिक प्रयोग, सांस्कृतिक अंतःप्रवाह और सामाजिक सरोकारों से निरंतर प्रभावित होता रहा है। यद्यपि ग़ज़ल मूलतः अरबी–फ़ारसी साहित्य से होते हुए उर्दू में विकसित हुई और वहीं से हिंदी में प्रवेश करती है, पर हिंदी ने इसे केवल अनुकरण के स्तर पर ग्रहण नहीं किया, बल्कि उसे अपनी भाषायी संवेदना, सामाजिक यथार्थ और काव्य परंपरा के अनुरूप पुनर्रचना दी। प्रारंभिक काल में हिंदी ग़ज़ल के स्वरूप और अभिव्यक्ति में उर्दू प्रभाव अधिक परिलक्षित होता है, किंतु जैसे–जैसे हिंदी साहित्य में आधुनिक चेतना और यथार्थबोध की सघन उपस्थिति हुई, वैसे–वैसे ग़ज़ल एक गंभीर काव्य–रूप के रूप में विकसित हुई। दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों ने हिंदी ग़ज़ल को पारंपरिक रूमानियत की संकीर्ण परिधि से निकालकर सामाजिक यथार्थ और जनवादी दृष्टिकोण की ओर मोड़ा। उनके

बाद अदम गोंडवी, अनवर जलालपुरी और अन्य अनेक रचनाकारों ने ग़ज़ल को समकालीन विमर्शों, जैसे दलित चेतना, स्त्री प्रश्न, सांप्रदायिकता, राजनीति, बेरोज़गारी, शहरी–ग्रामीण अंतर आदि से जोड़ते हुए व्यापक जन–संबद्धता प्रदान की।

यह भी उल्लेखनीय है कि हिंदी ग़ज़ल की भाषा शुद्ध खड़ीबोली हिंदी तक सीमित नहीं रही, बल्कि इसमें देशज शब्दों, लोक–रूपकों, बोलियों तथा आमजन की भाषिक अभिव्यक्ति को भी आत्मसात् किया गया। यही कारण है कि हिंदी ग़ज़ल ने एक ओर साहित्यिक उत्कृष्टता को साधा तो दूसरी ओर संप्रेषणीयता और लोकप्रियता को भी अर्जित किया। मंचीय काव्य–परंपरा और मीडिया के प्रसार ने भी हिंदी ग़ज़ल को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। व्यंग्यात्मक, हास्यप्रधान और वैचारिक ग़ज़लों ने न केवल साहित्यिक पाठकों को बल्कि सामान्य श्रोताओं को भी आकृष्ट किया। आज की हिंदी ग़ज़ल जहाँ एक ओर पारंपरिक बहर और छंद संरचना को बनाए रखने का प्रयास करती है, वहीं दूसरी ओर मुक्त अभिव्यक्ति और लयात्मकता के नए प्रयोगों की ओर भी अग्रसर है। यह द्वैध प्रवृत्ति हिंदी ग़ज़ल को न केवल साहित्यिक रूप से जीवंत बनाए हुए है, बल्कि इसकी भविष्यगत संभावनाओं को भी पुष्ट करती है। अतः यह कहा जा सकता है कि हिंदी ग़ज़ल की परंपरा कोई रेखीय या स्थिर यात्रा नहीं रही, बल्कि यह सतत परिवर्तनशील, संवादशील और जन–सरोकारों से संपृक्त प्रक्रिया रही है। यह परंपरा अपने विविध कालखंडों में भाषिक अनुशासन, सामाजिक प्रतिबद्धता और सौंदर्यात्मक अभिव्यक्ति का ऐसा समन्वय प्रस्तुत करती है जो हिंदी साहित्य की समकालीन संवेदना को न केवल समृद्ध करता है, बल्कि भविष्य की साहित्यिक दिशाओं को भी इंगित करता है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. एस.एल. दोषी, पी.सी. जैन, भारतीय समाज संरचना और परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009, पृ. 10.
2. दुष्यंत कुमार, साये में धूप, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 38
3. वही, पृ. 53.
4. वही पृ. 64.
5. वही पृ. 43.
6. कुँअर बेचैन, पत्थर की बाँसुरी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010. पृ. 87
7. कुँअर बेचैन, रस्सियाँ पानी की, प्रगीत प्रकाशन, गाजियाबाद, पृ.91.
8. नित्यानन्द तुषार, (सं.), कुँअर बेचैन की चुनी हुई ग़ज़लें, पृ.13.
9. मधु खराटे, हिंदी ग़ज़ल और ग़ज़लकार, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृ. 181.
10. नीरज, कारवाँ गुजर गया, पृ. 116.

11. नीरज, ग़ज़लें ही ग़ज़लें, पृ. 82.
12. डॉ. वशिष्ठ अनूप, हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप और महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2006, पृ. 42.
13. सूर्यभानु गुप्तः धर्मयुग 28 सितंबर 1975, पृ. 17.
14. हरेराम नेमा समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 86
15. चंद्रसेन विराट, निर्वसना चाँदनी, लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर, 1985, पृ. 88
16. हरेराम नेमा समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकार एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 219.
17. गोपाल कृष्ण कौल, ग़ज़ल सप्तक, पृ. 68.
18. हरेराम नेमा समीप, समकालीन हिंदी ग़ज़लकारः एक अध्ययन, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 223.
19. मधु खराटे, हिंदी ग़ज़ल और ग़ज़लकार, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृ. 167
20. जहीर कुरेशी, महत्व और मूल्यांकन, सायना बानो के लेख से, (सं.) डॉ. विनय मिश्र, पृ. 230.
21. डॉ. मधु खराटे, हिंदी ग़ज़ल और ग़ज़लकार, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2012, पृ. 175.

❑❑❑

# राहुल सांकृत्यायन की जापान यात्रा

**अनुश्री**

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में जापानी भाषा के अध्यापन कार्य में संलग्न, जापानी साहित्य और अनुवाद में विशेष रुचि

बौद्ध धर्म के संदर्भ में भारत और जापान के संबंध सदियों पुराने हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुए रूस–जापान युद्ध में जापान की अप्रत्याशित विजय ने पूरे विश्व को अचंभित कर दिया था। पश्चिमी औपनिवेशवाद से त्रस्त कई एशियाई देशों को सूर्योदय के देश में आशा की किरण नजर आने लगी थी। भारत में भी एकाएक इस पड़ोसी देश के प्रति उत्सुकता बढ़ने लगी और सक्रिय रूप से जानकारी प्राप्त की जाने लगी। अनेक लेख व समीक्षाएँ प्रकाशित हुईं। कुछ लोगों ने तो यात्रा करने की ही ठान ली। ऐसे ही एक विशिष्ट यात्री हैं राहुल सांकृत्यायन, जिन्होंने केवल जापान की यात्रा ही नहीं की, बल्कि वहाँ समय बिताकर, इस देश के समाज, परिवेश, खानपान एवं संस्कृति का गहराई से अध्ययन करने का भी प्रयत्न किया। हिंदी यात्रा वृत्तांत साहित्य के पाठकों या शोधकर्ताओं में शायद ही कोई ऐसा हो जो राहुल सांकृत्यायन के नाम से अनभिज्ञ हो। अप्रैल 1893 में उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ में जन्मे सांकृत्यायन का मूल नाम केदारनाथ पांडेय था। राहुल सांकृत्यायन हिंदी साहित्य व बौद्ध ग्रंथों के उत्कट विद्वान थे। ये बहु–भाषी थे, जिन्हें हिंदी, बांग्ला, उर्दू, संस्कृत के अलावा अंग्रेजी, रूसी के साथ लगभग 30 भाषाओं का ज्ञान था। उन्होंने इतिहास, समाज आदि विषयों पर अनेक उपन्यास, कहानियाँ, समीक्षाएँ, निबंध, नाटक आदि लिखे। इन्हें एक विचारक एवं दार्शनिक के रूप में भी जाना जाता है जिन्होंने लगभग 120–150 पुस्तकों का सृजन करने के साथ ही अनेक पुस्तकों का संपादन और अनुवाद भी किया। सांकृत्यायन ने राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय यात्राओं से अर्जित अनुभवों को अपने अनगिनत वृत्तांत में समेटा। 1930 में उनके विशिष्ट योगदान के लिए उन्हें 'महापंडित' की उपाधि प्राप्त हुई और इसी वर्ष वे बौद्ध भिक्षु बने। श्रीलंका में सांकृत्यायन को तृप्तिकाचार्य की उपाधि प्राप्त हुई, जहाँ वे एक विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्यापन के लिए कार्यरत थे। 1958 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार तथा 1963 में पद्मभूषण से सम्मानित किया गया। दार्जीलिंग शहर में सांकृत्यायन ने

अपने जीवन के अंतिम दिन बिताए। यहाँ के मॉल रोड पर इनकी आवक्ष मूर्ति स्थापित है व शहर की एक मुख्य सड़क भी इन्हें समर्पित है।

सांकृत्यायन के जीवन में 'यात्रा' का महत्त्व इस बात से प्रमाणित हो जाता है कि इन्होंने घूमने–घामने, यात्रा करने की क्रिया को शास्त्र विधा का नाम देकर, 'घुमक्कड़ शास्त्र' (1948) लिखा जिसमें उन्होंने मान्यता दी कि 'संसार में यदि कोई अनादि सनातन धर्म है, तो वह घुमक्कड़–धर्म ही है।'[1] सांकृत्यायन ने देश भर में तो यात्राएँ कीं ही, श्रीलंका, चीन, रूस, आर्मेनिया, ईरान, जर्मनी, ब्रिटेन आदि कई एशियाई एवं यूरोपीय देशों की यात्राओं में भी काफी सक्रिय रहे। बौद्ध धर्म संबंधी साहित्य को एकत्रित करने वे चार बार तिब्बत गए। यात्राओं के साथ–साथ गंतव्य स्थानों पर हुए अनुभवों और स्मृतियों को शब्दों में पिरोकर कागज़ पर उतारने की विधा के भी सांकृत्यायन धनी थे। वे जहाँ भी जाते, वहाँ के रहन–सहन, परिवेश पर लिखना अपना कर्तव्य समझते। यात्रा वृत्तांत लेखन को सांकृत्यायन यह कहते हुए अनिवार्य मानते हैं कि 'घुमक्कड़ का कर्तव्य है कि वह अपनी चीजों और अनुभूत घटनाओं को आने वाले घुमक्कड़ों के लिए लेखबद्ध कर जाए'। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि सांकृत्यायन कृत यात्रा–वृत्तांत एवं संस्मरण ने हिंदी यात्रा वृत्तांत साहित्य को धनी एवं समृद्ध बनाने में असाधारण योगदान दिया है। इसलिए इन्हें हिंदी यात्रा–साहित्य के 'पितामह' एवं 'जनक' की उपाधि से विभूषित किया गया। हिंदी यात्रा–वृत्तांत लेखन में निस्संदेह राहुल सांकृत्यायन का एक अतिविशिष्ट स्थान है। शशिशेखर तिवारी ने अपने हिंदी यात्रा साहित्य अध्ययन (2021)[2] में तो एक पूरा युग ही सांकृत्यायन के नाम कर दिया है। राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य के स्मरणोत्सव में 1993 में उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन पुरस्कार' की स्थापना की गई जहाँ हिंदी यात्रा वृत्तांत के लेखकों को सम्मानित किया जाता है। राहुल सांकृत्यायन के साहित्य का बहुमुखी अध्ययन होने पर भी उनके विदेश यात्रा वृत्तांत पर शोधों का अभाव दिखता है। अतः प्रस्तुत आलेख में उनकी पूर्वी एशियाई देशों की यात्रा पर आधारित वृत्तांत 'जापान' का विश्लेषण किया जा रहा है। अपनी इस यात्रा के बारे में सांकृत्यायन कहते हैं कि वे जापान बौद्ध पंडितों से मिलने गए थे,[3] किंतु उनके वृत्तांत से यह स्पष्ट है कि वे तत्कालीन जापान की औद्योगिक उन्नति, संपन्नता, शैक्षिक संस्थानों, ग्रामीण जीवन से भी अत्यधिक प्रभावित हुए।

राहुल सांकृत्यायन की पड़ोसी एशियाई देश की यात्रा सुगम न थी। उन्होंने समुद्र के रास्ते सफ़र किया। उनकी यात्रा 29 मार्च 1935 में कलकत्ता से शुरू हुई जहाँ से वे बर्मा के रंगून (वर्तमान यांगोन) पहुँचे और रंगून साहित्य संगोष्ठी में भाग लिया। 11 अप्रैल तक वे वहाँ रुके और रेल से सिंगापुर पहुँचे जहाँ 21 अप्रैल को निप्पॉन यूसेन काइशा का आनयोमारु जहाज पकड़ते हैं। सिंगापुर से हांगकांग, शंघाई होते हुए लगभग 2 सप्ताह बाद 3 मई को क्यूशु द्वीप के मोजी बंदरगाह से जापान

की धरती पर पाँव रखा। 9 अगस्त तक लगभग 3 महीने जापान में रहे, फिर कोरिया, चीन होते हुए ईरान के रास्ते 6–7 माह की लंबी यात्रा के बाद भारत लौटे। उनका यात्रा–वृत्तांत 'जापान'[4] आगामी वर्ष (1936) की फरवरी में साहित्य सेवक संघ, बिहार से प्रकाशित हुआ और संभवतः अब प्रकाशित रूप में उपलब्ध नहीं है। पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने से पहले इसके कुछ भाग 'सरस्वती', 'चाँद', 'माधुरी', 'सुधा' नामक पत्रिकाओं में आ चुके थे जिसका उल्लेख सांकृत्यायन ने 'जापान' की प्रस्तावना में किया है। मुख्यतः जापान, कोरिया, मंचूरिया, परिशिष्ट नामक चार खंडों में विभक्त 'जापान' पुस्तक में कुल 31 अध्याय हैं। जापान का वर्णन अत्यधिक लंबा एवं विस्तृत है। इसमें कुल 76 तस्वीरें संलग्न की गई हैं जिनमें 47 तस्वीरें जापान से संबंधित हैं। 'जापान' का वर्णन पुस्तक में कालक्रमबद्ध रूप से आगे बढ़ता है एवं पाठकों को इस एशियाई देश के खान–पान, रहन–सहन, परिवेश व पहनावे की मूल जानकारी देता है। सांकृत्यायन अपने लेखन के माध्यम से यात्रा की तारीख से लेकर ट्रेन–टैक्सी का किराया, जापानी–भारतीय मित्रों के नाम, जापान में सस्ती यात्रा करने के नुस्खे आदि विस्तार से बताते हैं। अपने जापान निवास के दौरान वे मूलतः तोक्यो और योकोहामा के मंदिरों में रहे। उनके मेज़बान ब्योदो तसुशो व साकाकिबारा जुन्जी थे। ब्योदो जी ने तोक्यो विश्वविद्यालय से संस्कृत और बौद्ध धर्म का अध्ययन किया तथा 1933–34 में शांतिनिकेतन में रहे। सांकृत्यायन और ब्योदो जी की मुलाकात कलिंपोंग में हुई।[5] साकाकिबारा और सांकृत्यायन का परिचय दिसंबर 1932 में जर्मनी के एक बौद्धगेह में हुआ और दोनों अच्छे मित्र बन गए।[6]

'जापान' में वहाँ के रहन–सहन, पहनावे के बारे में तो विस्तृत जानकारी मिलती है किंतु यात्रा के प्रयोजन एवं तैयारी के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। कहा जाता है कि इस यात्रा के लिए सांकृत्यायन ने अपने मित्रों से 600–700 रुपए का ऋण लिया था,[7] जो कि निश्चय ही उस समय के लिए अत्यंत बड़ी राशि रही होगी। 'जापान' में राहुल सांकृत्यायन ने तोक्यो, योकोहामा, कामाकुरा, क्योतो, ओसाका, वाकायामा, कोबे, नारा सहित कई मुख्य जापानी शहरों का भ्रमण किया। उन्होंने वहाँ के मंदिरों, संग्रहालयों एवं शैक्षिक संस्थानों की यात्रा की और जापान के इतिहास, समाज एवं संस्कृति के बारे में जानकारी एकत्रित की। सांकृत्यायन के जापान के अनुभव को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक– जापान में बौद्ध धर्म, दो– शैक्षिक संस्थान व ग्रामीण जीवन और तीन– जापानी चीज़ों का अनुभव। जापान सांकृत्यायन की पहली विदेश यात्रा नहीं थी, न ही वे जापानी लोगों से पहली बार मिल रहे थे। वे पहले भी अनेक यूरोपीय एवं एशियाई देशों का भ्रमण कर चुके थे और जापानी लोगों से उनका साक्षात्कार भारत एवं जर्मनी में हो चुका था। संभवतः इसीलिए यात्रा के दौरान उनकी नज़र सतही एवं पर्यटकी न होकर विवेचनशील व सूक्ष्म थी।

सांकृत्यायन अपने वृत्तांत में स्पष्ट लिखते हैं कि उनके जापान जाने का मुख्य कारण अध्ययन एवं बौद्ध विद्वानों से मिलना था। वृत्तांत में जापान के बौद्ध–संप्रदायों के आधार पर मंदिरों एवं उनके अनुयायियों की संख्या का विवरण मिलता है। अपने पाठकों को विस्तृत जानकारी प्रदान करने के लिए उन्होंने एक पूरा अध्याय 'जापान में बौद्ध धर्म' को समर्पित किया है। विस्तृत जानकारी के लिए सांकृत्यायन विभिन्न जिलों में स्थित मंदिरों में जाकर उनके इतिहास व शिल्पकला का ब्यौरा देते हैं। मुख्य मंदिरों में क्योतो स्थित कियोमीज़ु देरा और हिएईज़ान, कामाकुरा का हासेदेरा व वाकायामा का कोयासान आदि हैं। मंदिरों की सादगी उन्हें मोह लेती है। वे तोक्यो स्थित आसोका अस्पताल भी जाते हैं जो 1923 के भीषण कांतो भूकंप के पश्चात् बनाया गया था। इसका नाम संस्कृत शब्द 'अशोक' पर आधारित है।[8] सांकृत्यायन अपनी जापान यात्रा के दौरान कसाया पहने रहे। स्वयं एक बौद्ध भिक्षु व विद्वान होने के कारण विशिष्ट मंदिर जैसे कि कियोमिज़ुदेरा, कोयासान आदि के मुख्य पुजारियों से उनका साक्षात्कार हुआ। सांकृत्यायन ने अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध संघ एवं जापान युवा मंडली में व्याख्यान दिए एवं अनेक युवा बौद्ध विद्वानों व विद्यार्थियों से मिले। वहाँ उन्होंने कई विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय जाकर महत्त्वपूर्ण जानकारी एकत्रित की। वे जापान के ताईशो विश्वविद्यालय के प्रख्यात संस्कृत व बौद्ध विद्वान ओगीवारा उनराई (1869–1937) से मिले जिन्होंने तृप्तिका का जापानी अनुवाद किया है और जिन्हें संस्कृत–चीनी शब्दकोश के संकलन का श्रेय भी जाता है। उनका पाली के अध्यापक एवं भारतीय दर्शनशास्त्र के विद्वान नागाई माकोतो (1881–1970) से भी साक्षात्कार हुआ। किंतु सांकृत्यायन अत्यधिक प्रभावित हुए बौद्ध भिक्षु कावागुची एकाई (1886–1945) से मिलकर, जिनसे उनका वार्तालाप तिब्बती में हुआ। कावागुची चार बार नेपाल तथा दो बार तिब्बत जा चुके थे। उनकी पुस्तक 'मेरी तिब्बत यात्रा' (My Three Years in Tibet) तत्समय के यात्रियों के लिए जानकारी का महत्त्वपूर्ण स्रोत थी जिसका अध्ययन सांकृत्यायन ने भी अपनी तिब्बत यात्राओं के लिए किया था।

सांकृत्यायन के लिए बौद्ध धर्म निश्चित रूप से 'भारतीय प्रतिष्ठा' का स्वरूप था और जापान जैसी विदेशी भूमि पर निश्चित ही समान मान्यताओं को साझा करने और पारस्परिक संबद्धता का माध्यम भी बना। वे जहाँ भी गए, अत्यंत उत्साह से उनका स्वागत हुआ। जापान में तत्कालीन बौद्ध धर्म की स्थिति देखते हुए, 'जापान इलस्ट्रेटेड' को उद्धृत करते हुए वे अंग्रेज़ी में टिप्पणी करते हैं कि At present, Japan is the principal Buddhist country in the world. Buddhism has declined in the country of its origin but burst forth into new flowers in the Japanese islands. It has influenced the people's conception of life and moulded their ideas of good and beautiful'[9]

जापान यात्रा के दौरान सांकृत्यायन लंबा समय ग्रामीण इलाकों में व्यतीत करते हैं। यह अचरज की बात ही है कि तोक्यो जैसे बड़े महानगर में खासा समय बिताने

पर भी वृत्तांत में शहरी जीवन के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती। वे एक मंदिर में रहते हैं और लगभग दो अध्यायों में जापान के ग्रामीण जीवन, किसान जीवन, प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण के बारे में विस्तार में लिखते हैं। सांकृत्यायन ने किसानों के घर जाकर अपने मित्रों के माध्यम से उनसे बातचीत कर उनके मासिक आय, बजट, खर्चे एवं बचत इत्यादि के बारे में जानकारी एकत्रित की। बातचीत के आधार पर उन्होंने जापानी किसान परिवार के शिक्षण, कपड़े, खान–पान के व्यय पर भी विस्तारपूर्वक लिखा है। भारतीय गाँवों की तुलना में सांकृत्यायन को जापानी गाँव अत्यधिक विकसित लगे जहाँ शैक्षिक संस्थान और डाक घरों की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। वे बताते हैं कि जहाँ जापान के गाँवों में बिजली पहुँच चुकी है और किसान खेती के लिए स्वचालित मशीनों का प्रयोग करते हैं, वहाँ भारतीय गाँवों में अभी भी किसान जानवरों पर निर्भर हैं। उन्होंने पाया कि जापानी किसानों के शिक्षित होने के कारण सरकार द्वारा मुहैया कराई गई सभी सुविधाओं एवं अनुदानों की जानकारी उन्हें रहती है, जिनका वे पूरा लाभ उठा पाते हैं। प्राथमिक विद्यालय के दौरे के दौरान सांकृत्यायन ने पाया कि बच्चों को मुफ्त किताबें दी जाती हैं। उन्होंने पढ़ाए जाने वाले विषय, पुस्तकें, समय–सारणी व मध्याह्न–भोजन के बारे में जानकारी प्राप्त की व सिलाई, लिखाई, संगीत, गृह–विज्ञान इत्यादि की कक्षाओं के साथ बालकों का सैनिक प्रशिक्षण भी देखा।

सांकृत्यायन जिस समय जापान गए, भारत में स्वतंत्रता आंदोलन ज़ोर पकड़ चुका था और वे किसान आंदोलन एवं सत्याग्रह आंदोलन का हिस्सा बन चुके थे। 1920 के दशक में किसान आंदोलन में काफी सक्रिय रहते हुए वे किसान यूनियन व मज़दूर संघ के साथ लंबे समय तक जुड़े रहे व जेल भी गए। सांकृत्यायन भारतीय किसानों के प्रति हमेशा से ही संवेदनशील रहे हैं और इन आंदोलनों ने निश्चित रूप से सांकृत्यायन के जापान के प्रति दृष्टिकोण पर प्रभाव डाला है। वे किसानों के जीवन में शिक्षा की महत्ता पर ज़ोर डालते हैं और उन्हें लगता है कि जापान से कई चीजें सीखी जा सकती हैं। जापान की शैक्षिक व्यवस्था एवं किसानों के प्रति नीतियों से प्रभावित हो सांकृत्यायन स्पष्ट कहते हैं कि 'सभी यूरोपीय एवं पश्चिमी देशों में से एक देश जिससे भारत सीख सकता है तो वह जापान है'। संभवतः सांकृत्यायन अपने जापान वर्णन के माध्यम से शिक्षा के महत्व व पड़ोसी देश के तकनीकी विकास की ओर हिंदी पाठकों का ध्यान ले जाना चाहते थे।

जापान के विभिन्न शहरों का भ्रमण करते हुए सांकृत्यायन को प्राकृतिक नज़ारों ने खूब लुभाया, चाहे वे क्योतो के कियोमिज़ु मंदिर की हरी–भरी पहाड़ियाँ हों या कोयासान मंदिर की सुंदरता, जापान की धरती उन्हें स्वर्ग से कम नहीं लगी। वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य के दृश्य सांकृत्यायन को कई बार भारत की याद दिलाते हैं। जहाँ बेप्पु शहर के गर्म पानी के चश्मे उन्हें बिहार के सीताकुंड के समान लगे, वहीं वाकायामा

व हिएइज़ान के पहाड़ों ने हिमालय का स्मरण कराया। कोया सान मंदिर उन्हें दार्जीलिंग लगा। किंतु जब जापानी शहरों की बात आई तो यूरोपीय शहरों से तुलना की गई। तोक्यो उन्हें लंदन और ओसाका मैनचेस्टर के समान लगता है। जापानी पर्यटक स्थलों की, चाहे वे मंदिर हों या समाधि, सादगी एवं आडंबरहीनता से सांकृत्यायन बहुत प्रभावित हुए। वे जापानी लोगों के संयम एवं सादगी में निहित सौंदर्यबोध को समझने का प्रयास करते हैं। सांकृत्यायन जापान के बागों के बारीक रख-रखाव से प्रभावित हो लिखते हैं कि वहाँ 'मानव हाथ नज़र ही नहीं आता'। 'जापान' के पाठकों में जो जापान की मुख्य छवि अंकित होती है, वह है व्यापक साफसफाई की। सांकृत्यायन अकसर दोहराते हैं कि वहाँ के केवल पर्यटक स्थल ही नहीं, बस, टैक्सी आदि सार्वजनिक यातायात के साधन भी एकदम साफ एवं सुव्यवस्थित थे।

अपनी यात्रा के दौरान सांकृत्यायन ने जापानी संस्कृति के अनेक आयामों को अपनाया। उनका मानना है कि यात्रियों को स्थानीय भाषा का ज्ञान होना चाहिए, संभवतः इसलिए उन्होंने जापानी भाषा सीखने का प्रयास तो किया किंतु उन्हें जापानी भाषा अत्यंत जटिल लगी। सांकृत्यायन को विदित था कि अनगिनत भारतीय युवा उच्च शिक्षा के लिए विदेश की ओर रुख करते हैं। इसीलिए उन्हें लगा जापान के विश्वविद्यालय भी उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए अच्छे केंद्र हो सकते हैं, किंतु भाषा एक अवरोध लगी। वे टिप्पणी करते हैं 8000–9000 कांजी चित्रलिपि से बच्चों की यादाश्त पर असर पड़ता है। इसी कारणवश उनके वृत्तांत में जापानी शब्दों का अधिक प्रयोग नहीं दिखता। उदाहरण के लिए, वे अक्सर जापानी खाना खाने के लिए 'चॉपस्टिक' का प्रयोग करते हैं, किंतु हमेशा 'दो डंडियाँ' कहकर संबोधित करते हैं। 'हाराकिरी' (उदर काटकर की जानेवाली वैधिक आत्महत्या की प्रथा), 'किमोनो' (जापानी महिलाओं का सांस्कृतिक पोशाक) और 'रयोकान' (जापानी ढंग की लॉज) आदि ही कुछ जापानी शब्द हैं जो उनके वृत्तांत में मिलते हैं। सांकृत्यायन जी ने चाव से बेझिझक जापानी खाना खाया। बल्कि वे जहाज से ही जापानी खाने के आदि हो रहे थे। हालाँकि शुरुआत में ग्रीन टी कुछ कड़वी एवं खाना चीनी युक्त और मसाला रहित लगा जो बाद में उन्हें अच्छा लगने लगा था। सांकृत्यायन के लिए कदाचित एक देश का खान–पान उस देश की संस्कृति को गहराई से समझने का माध्यम था।

हालाँकि सांकृत्यायन जापान बौद्ध पंडितों एवं विद्वानों से मिलने ही गए थे किंतु उन्होंने अपनी दृष्टि बौद्ध दृष्टिकोण एवं विद्वानों तक ही सीमित नहीं रखी। जापानी परिवेश व लोगों को समझने का वे निरंतर प्रयत्न करते रहे। जापान उनके लिए एक एशियाई पड़ोसी देश भी था जहाँ भारत के साथ समानताएँ होनी थीं जो उन्हें बौद्ध धर्म के माध्यम से दिखीं भी, किंतु साथ ही यह वह देश भी था जिसने तीन दशक पहले रूस पर विजय प्राप्त की और अब औपनिवेशिक सोच से अग्रसर हो रहा था। जिस समय सांकृत्यायन जापान की यात्रा कर रहे थे, अंतरयुद्ध का समय था। उनके

वृत्तांत में जापान की सैन्य शिक्षा, अनिवार्य सैनिक सेवा और हवाई हमले से बचने के लिए प्रशिक्षण के विवरण भी मिलते हैं। सांकृत्यायन ने बताया है कि कैसे उस समय प्रशिक्षण के पोस्टर रेलगाड़ियों एवं सार्वजनिक स्थानों आदि पर लगाए जाते थे व अँधेरा करने के लिए सभी जगह बिजली बंद कर दी जाती थी। जापान का शैक्षिक स्तर ऊँचा था। साथ ही औद्योगिकीकरण भी अप्रत्याशित रूप से हो रहा था। वहाँ के दैनिक जीवन में तकनीक एवं मशीनों पर निर्भरता भी प्रत्यक्ष दिख रही थी। भारत और जापान एशियाई देश होने के बावजूद सांकृत्यायन को दोनों देशों के प्रौद्योगिकी और तकनीकी विकास के बीच गहरा अंतर महसूस हुआ।

सांकृत्यायन के यात्रावृत्त में जापान में बारे में तो जानकारी प्राप्त होती ही है, यह भी पता चलता है कि तत्कालीन जापानी लोगों की भारत के प्रति कैसी धारणाएँ थीं। अपने व्याख्यानों और साक्षात्कारों के दौरान उन्हें यह ज्ञात हुआ कि जापानी लोग भारत के प्रति दोहरी धारणा रखते हैं। उनके लिए बुद्ध का देश 'भारत' तो आदर्श था किंतु औपनिवेशिक भारत नहीं।

जापान यात्रा के दौरान सांकृत्यायन अत्यंत सचेत एवं विचारशील रहे। यह देखकर कि जापानी लोगों ने अपनी संस्कृति को बिना भूले, पश्चिमी सभ्यता के कुछ पहलू अपना लिए हैं, वे अत्यंत प्रभावित हुए। चाहे कार्यस्थल का पहनावा हो, संगीत या नृत्य में रुचि हो, उस पर उन्होंने पाश्चात्य प्रभाव साफ झलकता पाया। वे लिखते हैं कि जापान ने पश्चिमी कला और विज्ञान की खूबियाँ अपनाकर बुराइयों को अस्वीकार किया है। उन्हें लगता है कि भारत को भी कुछ पहलू अपना लेने चाहिए किंतु, वित्तीय रूप से मजबूर होने के कारण ऐसा होना कठिन प्रतीत होता है।

यात्रा वृत्तांत दो देशों के बीच के अप्रत्यक्ष संबंधों की तरह हैं। ये उस समय व जनजीवन का आँखों देखा हाल बताते हैं। 'जापान' भी 1930 के दशक के जापान का जीवंत वर्णन है। इसमें एशियाई देश को सामाजिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से देखा गया है साथ ही स्वतंत्रता पूर्व के भारत का भी चित्रण मिलता है। सांकृत्यायन के लिए 'घुमक्कड़ी से बड़ा कोई धर्म नहीं' था और यही उनके लिए यात्रा की महत्ता को दर्शाता भी है। इसीलिए कदाचित उन्होंने अपनी आत्मकथा का शीर्षक भी 'मेरी जीवन यात्रा' रखा। बाहरी संसार की यात्रा कर वे अपने अंतर्मन की जिज्ञासा को शांत करते थे। जापान भी उनके लिए ऐसा देश था जिनके बारे में उन्हें शायद अधिक जानकारी नहीं थी। यह उनकी जिज्ञासा ही थी जिसे संतुष्ट करने के लिए उन्होंने वहाँ लंबा समय बिताया और यथासंभव जानकारी बटोरने की कोशिश की। उन्हें यह ज्ञात हुआ कि इन दो एशियाई देशों के पास परस्पर विकास हेतु साझा करने के लिए बहुत कुछ है। सांकृत्यायन के लिए 'जापान एक बौद्ध देश है' जिसकी 'परतंत्र होने पर भी बुद्ध देश के प्रति अटूट श्रद्धा है।' जहाँ भारत जापान में बौद्ध देश के रूप में जाना जाता है, वहीं भारत के लिए भी जापान से बहुत कुछ सीखने के लिए है।

जापान के संदर्भ में सांकृत्यायन को एक आम पर्यटक के रूप में नहीं देखा जा सकता। तोक्यो में रहते हुए भी उन्होंने कई प्रसिद्ध पर्यटक स्थान नहीं देखे। यह अचरज ही है कि वृत्तांत में फूजी पहाड़ का कहीं उल्लेख नहीं है, जो एक आम पर्यटक की सूची में अमूमन सबसे ऊपर होता है। वे एक जागृत यात्री थे जिन्हें यह पता था कि उन्हें क्या जानकारी प्राप्त करनी है। इसलिए वे अनगिनत बौद्ध मंदिर, शिंतो श्राइन एवं विश्वविद्यालय गए। इन्होंने आम गाँववालों, मित्रों से लेकर प्रधानाचार्य, पंडितों और विद्वानों तक से मुलाकात की और वार्तालाप या साक्षात्कार के माध्यम से उन्हें समझने का प्रयत्न किया। वे जहाँ भी गए, उनके साथ दुभाषिया थे। वृत्तांत में कहीं भी एकतरफा दृष्टिकोण नहीं दिखता जो एक सुविज्ञ यात्री की निशानी है। भले ही 'जापान' में पाठक सांकृत्यायन की दृष्टि से जापान देख रहे हैं किंतु वहाँ सांकृत्यायन एक मूक दर्शक नहीं हैं। वे निरंतर सक्रिय रूप से अपने आसपास के लोगों से बात कर जानकारी एकत्रित करने में जुटे रहे। अपने लेखन में सांकृत्यायन ने इस बात का पूरा ख्याल रखा है कि आम पाठक के लिए एवं आगामी यात्रियों के लिए भी यात्रा के छोटे–छोटे नुस्खे बताएँ। उन्हें इस बात का ज्ञान था कि किसी देश के खानपान एवं पहनावे के माध्यम से उसे समझा जा सकता है। उन्होंने न तो जापानी खाने से परहेज किया और न ही गेता (लकड़ी से बनी सैंडल) पहनने से।

यात्रावृत्त का अध्ययन केवल एक देश के पर्यटक स्थलों की जानकारी प्रदान करना ही नहीं है बल्कि उनसे कहीं अधिक उस देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों को समझने का प्रयत्न करना भी है। 'जापान' में तत्कालीन जापान और भारत के बारे में तो विवरण मिलता ही है, एक बात जो इस वृत्त को असाधारण बनाती है वह है दो देशों के व्यक्तियों के बीच की मित्रता। अपने जापानी मित्रों के सौहार्द्र और मेज़बानी से वे इतना प्रभावित हो जाते हैं कि लिखते हैं, 'यदि एक सौ जापानी पुरुषों ने भी मेरे साथ अभद्रता का बर्ताव किया होता और मुझे सिर्फ एक साकाकीबारा के साथ कुछ समय रहना पड़ता तो मेरी जापान के प्रति सारी बुरी धारणा लुप्त हो जाती।'[10]

इस प्रकार यात्रा वृत्तांत अध्ययन एक अपरिचित देश के बारे में जानकारी प्रदान करने के साथ, इतिहास एवं समय में लुप्त हुए संबंधों को भी पुनर्स्थापित करता है। इस परिप्रेक्ष्य में राहुल सांकृत्यायन कृत 'जापान' का हिंदी यात्रा वृत्तांत में निश्चित ही एक अतिविशिष्ट स्थान है।

**संदर्भ**–


1. सांकृत्यायन राहुल, 'घुमक्कड़ शास्त्र' किताब महल, 2024, पृ.10
2. तिवारी शशिशेखर, 'हिंदी यात्रा साहित्य', लोकभारती प्रकाशन, 2021
3. सांकृत्यायन राहुल, 'जापान', साहित्य सेवक संघ, 1936, पृ. 119
4. प्रस्तुत आलेख के लिए यात्रा–वृत्त 'जापान' इंटरनेट आर्काइव की वेबसाइट से डाउनलोड किया गया है।

5. सांकृत्यायन राहुल, 'जिनका मैं कृतज्ञ', किताबमहल, इलाहाबाद, पृ.223
6. सांकृत्यायन राहुल, 'मेरी यूरोप यात्रा', राधाकृष्ण पेपरबैक्स, पृ.118
7. पांडेय अशोक कुमार, 'राहुल सांकृत्यायनः अनात्म बेचैनी का यायावर', राजकमल प्रकाशन, 2023, पृ.101
8. https://hp.asokakai.or.jp/about/outline/
9. सांकृत्यायन राहुल, 'जापान', 'साहित्य सेवक संघ, 1936, पृ.137–8
10. सांकृत्यायन राहुल, 'जापान', 'साहित्य सेवक संघ, 1936, पृ.249

❑❑❑

भई अब गिरिधर सों पैहचान।
कपट रूप धरि छल के आयौ,
परषोत्तम नहिं जान।।
छोटौ बड़ौ कछू नहिं देख्यो
छाइ रह्यौ अभियान।।
'छीतस्वामि' देखत अपनायौ,
विट्ठल कृपा निधान।।

छीतस्वामी

# छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में भारतीय संस्कृति की उपस्थिति

**अर्चना त्रिपाठी**
एसोसियेट प्रोफेसर, जीसस एंड मेरी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

छत्तीसगढ़ प्रकृति प्रदेश है जहाँ पेड़–पौधे, वनस्पतियाँ, पशु–पक्षियों का विचरण, नदी, नाले, तालाब, निर्झर का अगाध सौंदर्य मानवीय चेतना का विस्तार करता है। जहाँ सूर्य की प्रखर तेजस्विता विद्यमान है, जहाँ जंगल की आदिम गंध मौजूद है। जहाँ जीवन, कला और संगीत में प्रवाहित होता है। सचमुच जीवन वहीं है जहाँ प्राकृतिक सौंदर्य है। छत्तीसगढ़ में भारत की सांस्कृतिक चेतना किस रूप में विद्यमान है, इसे जानने के लिए वहाँ की कलाओं और लोकगीतों की यात्रा जरूरी है। छत्तीसगढ़ की भूमि रामायण काल के दंडकारण्य का हिस्सा है। श्रीराम वन–गमन की पदधूलि से वह भूमि आज भी पवित्र और सुवासित है। श्रीराम के प्रति वहाँ के लोग अपने लोकगीतों में कृतज्ञता व्यक्त करते दिखाई देते हैं।

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में भारतीय संस्कृति के मूल्य संरक्षित हैं। समूचा अखिल भारत राममय और कृष्णमय है। यहाँ शिशु जन्म राम और कृष्ण के रूप होते हैं, मुंडन संस्कार भी राम और कृष्ण का ही होता है। विवाह के रूप में वर–वधू राम और सीता ही होते हैं। कहने का अर्थ यह है कि लोकगीतों में समूचा सांस्कृतिक जीवन समाहित है। लोकगीतों को सुनने–गुनने से हम भारत की संस्कृति एवं इतिहास के ज्ञान का अवगाहन कर सकते हैं। पं. विद्यानिवास मिश्र लोकगीतों को वाचिक कविता कहते हैं जो अपनी परंपराओं, विश्वासों, रीति–रिवाजों से ग्रहण की जाती है। मिश्र जी ने वाचिक कविताः भोजपुरी (पुस्तक) में लिखा है कि– "हमारी कोशिश वाचिक परंपरा से जीवंत जाग्रत रचनाएँ चुनने की रही है। हमारी वाचिक परंपरा के ये अंश हृदय का संस्पर्श करने वाले हैं।"[1]

भाषिक ज्ञान–परंपरा की दृष्टि से भी लोकगीतों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। अपने बच्चे को भाषा का ज्ञान सर्वप्रथम माँ ही कराती है इसलिए बच्चे की पहली गुरु माँ होती है और यही वजह है कि लोकभाषाएँ मातृभाषाएँ कहलाती हैं। माताएँ लोरियाँ सुनाकर अपने बच्चों को मातृभाषा घुट्टी के रूप में पिलाती हैं। ये लोरियाँ जहाँ

नन्हे–मुन्ने बच्चों के लिए अमृत स्वरूप होती हैं, वहीं दूसरी ओर मातृभाषा का बोधात्मक ज्ञान भी प्रदान करती हैं। सूरदास के पद को ('जसोदा हरि पालने झुलावैं') लोरी के रूप में पूरे भारत भूमि की माताएँ गाती हैं और हर माँ का बच्चा उसके लिए किशन कन्हैया होता है। इसी तरह से चंदा से मामा का रिश्ता सहज जुड़ गया है। माताएँ बच्चों को चंदा मामा दिखाती हैं और बच्चों को बहलाने के लिए चंदा मामा को बुलाती हैं। चंदा, सूरज को भाई बंधु बनाना हमारी भारतीय संस्कृति का हिस्सा है। छत्तीसगढ़ में भी चंदा मामा की लोरी गाई जाती है–

'चंदा मामा एती आ ओती आ/नदिया किनारे आ'

विविध प्रदेशों में गाए जाने वाले लोकगीतों में संरक्षित लोक संस्कृति राष्ट्र की अंतरधाराएँ हैं जो गंगा, यमुना के मेल से संगम संस्कृति का निर्माण करती हैं। वास्तव में देखा जाए तो जन–गण–मन का गीत ही लोकगीत है जो मनुष्य के आत्मा की कविता है, जिसमें प्रकृति की आदिम गंध कस्तूरी बन छुपी हुई है।

लोकगीत हृदयतल की गहराई से जुड़ा हुआ है। पानी जितनी गहराई से निकलता है उतना ही मीठा और शीतल होता है। वैसे ही लोकगीतों के साथ भी है। देवी गीतों का आह्वान मातृशक्तियों की ताकत को दर्शाता है। अष्टमातृकाओं की कल्पना करके गाया जाने वाला देवी गीत स्त्री शक्ति का सूचक है। इन प्रार्थना और उपासना गीतों से ही लोकगीत जीवन का महासंगीत बन गया है। लोकगीतों के मर्मज्ञ कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा है– 'मन की प्रबलता और आत्मा की प्रेरणा से अनेक व्यक्तियों के हृदय से संगीत की ध्वनि फूटती है अथवा एक व्यक्ति अनेक के हृदयगत भावों को संगीत ध्वनि से अभिव्यक्त करता है। उस ध्वनि को महासंगीत कहते हैं और वही महासंगीत वास्तविक लोकगीत है।'[2] इसी प्रकार रामनरेश त्रिपाठी जी ने ठीक ही कहा है कि 'ग्रामगीत प्रकृति के उद्‌गार हैं, इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।'[3]

संस्कृति के निर्माण में प्रकृति और कृषि दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। छत्तीसगढ़ में कृषि ही जीवन का आधार है। वहाँ के मांगलिक गीतों में खेती से जुड़े तमाम उपकरणों की पूजा की जाती है, इसके प्रमाण लोकगीतों में मिलते हैं। 'कोदो' और धान की कई किस्मों का जिक्र भी लोकगीतों में मिलता है। इसके साथ ही छत्तीसगढ़ में भाजी (साग) के विविध रंग–रूप देखने को मिलते हैं। कहा जाता है कि वहाँ छत्तीस किस्म के साग (भाजी) होते हैं। वहाँ के गीतों में भी इन भाजियों का जिक्र आता है।

'नदिया तीरे के पटुआ भाजी
उल्हवा उल्हवा दिखथे रे।'[4]

लोकगीतों में संस्कृति और प्रकृति की बद्धमूलता विद्यमान है इसीलिए लोकगीतों का जब विभाजन किया जाता है तो मुख्यतः दो विभाजन होते हैं– संस्कार गीत और

ऋतु (प्रकृति) गीत। संस्कार गीत संस्कृति से निर्मित हैं और ऋतु गीतों का सीधा संबंध प्रकृति से है। छत्तीसगढ़ में संस्कार गीत खूब मिलते हैं– सोहर गीत, मुंडन गीत, जनेऊ गीत, विवाह संस्कार के बहुविध गीत और ऋतु गीतों के बारहमासी गीत, (जिसे हिंदी में बारहमासा कहा जाता है) बांस गीत, करमा गीत आदि। ये सभी प्रकृति से जुड़े हुए गीत हैं। इसके अतिरिक्त भजन गाने की परंपरा भी खूब है। छत्तीसगढ़ में सतनामी समाज के लोग राम के माहात्म्य को भजन शैली में गाते हैं। इन लोगों की आस्था इतनी दृढ़ और गहरी है कि ये अपने शरीर पर भी राम नाम का गोदना गुदवा कर घूमते हैं। यहाँ कबीर पंथ के भी भजन गाने की परंपरा है जिसे निर्गुणिया गायन के रूप में जाना जाता है। छत्तीसगढ़ का 'दामाखेड़ा' कबीरपंथियों का विश्व प्रसिद्ध धाम है।

सतनामी परंपरा के महत्त्वपूर्ण गुरु हुए गुरु घासीदास जो साधना और सिद्धि द्वारा ईश्वर प्राप्ति की बात करते हैं। गुरु घासीदास ने अपने अमृत वचन लोकभाषा छत्तीसगढ़ी में व्यक्त किए हैं जिसे वर्तमान समय में 'पंथी गायन' के रूप में जाना जाता है।

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों के माध्यम से वहाँ के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन की अविच्छिन्न परंपरा को देखा जा सकता है। तमाम गीतों को पढ़ने–सुनने के बाद यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ राम और कृष्ण के प्रति लोक आस्था बहुत गहरी है। छत्तीसगढ़ी संस्कार वहाँ के लोकगीतों में राम भावना के सत्य के रूप में लोकमानस में रचे–बसे हैं। श्रीराम सचमुच मंगल भवन अमंगल हारी हैं। छत्तीसगढ़ में गाया जाने वाला एक सोहर है जिसमें राम का जन्म होता है तो सूईन (दाई) आती है नार काटने। गीत का बोल है–

'राम जन्म लिन्हे, भगवान जनम लिन्हे
चइत राम नवमी में राम जन्म लिन्हे
सुइन आवय नेरुआ छिनै
नेरूवा छिनऊनी देबो मन के मडवनी'[5]

लोक की विशेषता यह होती है कि वह अलौकिक को भी लौकिक बनाकर आम जीवन–व्यवहार से उसे जोड़ देता है। लोक की चेतना, जीवन–शैली, सामाजिक आचार–व्यवहार मात्र शास्त्रोक्त से ही अनुशासित नहीं होते। इसी तरह से एक और सोहर है जो कृष्ण जन्म से जुड़ा हुआ है, वहाँ भी शास्त्र को लौकिक ढंग से व्याख्यायित किया गया है। इस गीत में एक स्त्री ही दूसरी स्त्री के दुख को समझती है इस भाव को बड़ी गहराई से व्यंजित किया गया है। गीत में एक प्रसंग है कि यमुना किनारे बैठकर देवकी रो रही हैं। उस पार नहा रही जसोदा को दिखाई देता है तो जसोदा यमुना पार करके आती हैं और देवकी से उनका दुख पूछती हैं और जब जसोदा को पता चलता है कि कंस ने देवकी की सभी संतानों को मार डाला है तो

वह देवकी को वचन देती हैं कि इस बार मैं मदद करूँगी और कुछ भी करके आपकी संतान की रक्षा करूँगी। इस सोहर में बहनापे की साझी संस्कृति दिखाई देती है। गीत हमें यह बताता है कि एक स्त्री दूसरी स्त्री से ईर्ष्या और डाह नहीं करती बल्कि अपने भीतर त्याग की भावना भी रखती है। हम सभी जानते हैं कि ग्रामीण गाँवों की स्त्रियों के भीतर परस्पर सहयोग की भावना आज भी है। लोक में लेनदेन और उधारी खूब चलती है और यह परस्पर सहयोग की भावना को ही दर्शाता है। गीत में देवकी कहती है–

'नून अऊर तेल के उधारी, पईसा कौड़ के लेनी देनी ओ
बहिनी कोख के उधारी कइसे होय, मैं कइसे धीरज धरौ ओ'

फिर जसोदा कहती हैं–

'चुप रह तैं चुप रह देवकी, मैं तोला समझावत हंवा ओ
मोर गरभ तोहां देतां, तोर ल बचई लेहवं ओ।'[6]

लोक की स्त्रियाँ जसोदा के त्याग और बलिदान को गाती हैं जिसने अपने गर्भ की अदला–बदली कर ली। एक स्त्री का दूसरी स्त्री के प्रति इतना बड़ा त्याग एक मिसाल है। यह भारत भूमि में ही संभव है। यह मातृत्व की पराकाष्ठा है।

सामाजिक अध्ययन की दृष्टि से ये गीत बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इन गीतों में एक ओर सामाजिक संबद्धता, परंपराओं, मानवीय मूल्यों को स्थापित किया गया है तो दूसरी ओर सामाजिक रूढ़ियों और सामंती व्यवहारों के प्रति प्रतिरोध का स्वर भी गूँजता है। गीतों में स्त्रियों की सामाजिक व मानसिक दशा का चित्रण भी मिलता है। तमाम दुखों के बीच ये स्त्रियाँ गहरी जिजीविषा को धारण किए हुए हैं और इस मृत संसार में मानो अमृत की धारा को प्रवाहित करने की अनवरत कोशिश में हैं।

सचमुच लोकगीत लोक कंठहार हैं जिनमें छंद नहीं, लय की माधुरी विद्यमान है। जीवन की लय के साथ प्रकृति की लय। यह लय ही इस समूची सृष्टि में है। यह जीवन स्पंदन है जिसे जीवंतता कहा जा सकता है। इसके बिना जीवन व्यर्थ है और लययुक्त जीवन ही अमृत स्वरूप है। इस अमृत की धार को लोकगीतों ने अपने भीतर धारण कर लिया है। नदियों की धारा का प्रवाह लोकगीतों में घुलामिला है। गंगा और जमुना की धारा से अटल सुहाग की परिकल्पना तो हमारे लोकगीतों में खूब है लेकिन छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में नदियों की अपेक्षा तालाब अधिक आते हैं। तालाब की संस्कृति छत्तीसगढ़ में खूब है। छोटे–बड़े बहुतायत तालाब छत्तीसगढ़ में देखने को मिलते हैं। विवाह गीतों में बारातियों के स्वागत–सत्कार के गीत गाए जाते हैं जिसमें यह जिक्र आता है कि चलो सभी तालाब स्नान कर आएँ–

'हाथ धरे लोटिया, खांधे धरे पोतिया, सगरी नहाय चले जाबो'
'कौन कोड़ावे ताले सगुरिया, कौन जंघायें ओखर पारे सजन मोर'[7]

छत्तीसगढ़ कृषिप्रधान प्रदेश है। जहाँ कृषि है वहीं संस्कृति भी है बल्कि लोक जीवन में कृषि ही संस्कृति है और उसी से जुड़े हुए सैकड़ों लोक त्योहार हैं जो मनुष्य को उत्सवधर्मी बनाए हुए हैं। छत्तीसगढ़ में फसलों की रोपाई, निराई, गुड़ाई के श्रम संबंधी गीत तो हैं ही, लोक–जीवन में मनाए जा रहे त्योहारों के गीत भी बहुतायत से गाए जाते हैं, जैसे– भीमसेनी एकादशी, हरेली नागपंचमी, राखी, पुन्नी, भोजली, तीजा (हरतालिका तीज व्रत त्योहार) इत्यादि अवसरों पर गाए जाने वाले गीत। इन सभी लोक–उत्सवों और त्योहारों के पीछे हमारी भारतीय संस्कृति के प्रति गहरी श्रद्धा तो है ही, लोक जीवन में सहज जीवन जीने की लालसा भी है। इन उत्सवों में अभी भी दिखावा या बाजार नहीं है बल्कि जो कुछ सीमित संसाधन हैं, उसी में उत्सव मनाने की परंपरा है। छत्तीसगढ़ी उत्सव गीत का एक बोल है–

'जीयत जन लेबो, हँसि लेबो खेल लेबो
मरे ल दुलभ संसार'...[8]

यह 'कर्मा' नाम से गाया जाने वाला लोकगीत है जिसमें 'दुर्लभ संसार' में जन्म लेने के प्रति कृतज्ञता का भाव है और सहज जीवन जीने की कामना है। यही सच्ची मनुष्यता है। कृतज्ञता मानुष राग है जिसे लोकगीतों में गाया जाता है। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम और आस्था है और भौतिकताजन्य अभाव की तुलना में मानवीय भावों की प्रधानता है। ये गीत अभाव में नहीं, भाव में जन्म लेते हैं, हृदय के अंतःकरण में जन्म लेते हैं। छत्तीसगढ़ में अगहन के महीने में 'मांदर' और 'मड़ई' के पर्व बड़े उत्साह के साथ मनाए जाते हैं और खूब गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में उल्लास होता है जो तन–मन दोनों को प्रफुल्लित कर देता है। 'मातर पूजा राउतों की विशेष पूजा है जो पशुओं के आगंतुक रोग निवारणार्थ रात्रि में की जाती है और मड़ई पूजा रोग की अधिष्ठात्री कंकाली देवी की पूजा है। संभव है, यह प्राचीन काल के इंद्र ध्वज से संबंधित पूजन परंपरा हो'[9]

इन आदिवासी उत्सवधर्मी गीतों के बारे में विश्लेषण करते हुए श्यामसुंदर दुबे ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि– 'आदिवासी क्षेत्रों के लोकगीतों में न अधिक राग–रागिनियों का समावेश होता है और न ही उनका शब्द–संयोजन अधिक लंबा रहता है। कथात्मकता तथा विवरणात्मकता का तो उनमें एकदम अभाव ही रहता है। अक्सर वह एक प्रतिक्रिया पंक्ति होती है– प्रकृति के रंगों, पत्तों, फूलों की क्रियाओं से मेल खाती भावनाओं की। मनुष्य की एकांतिकता को तोड़ने के लिए जो प्राकृतिक हरकतें सहयोग कर सकती हैं, उनका उल्लेख तथा गायक की भावना का मिला–जुला संसार यह प्रतीक पंक्ति होती है। आदिवासी–इलाकों की लोक गीतों की लयें एकदम आदिम आरोहों–अवरोहों में ही जीवित रहती हैं। करमा गाना और करमा नृत्य झूमती धान की फसल को परिलक्षित करता है। एक सीधी उठान और उसका फैलाव और पुनः उसका सिमटाव सतत वृत्तों की सृष्टि करता है'[10]

सचमुच ये करमा गीत नृत्य प्राकृतिक जीवन से सीधे संवाद करते हैं, उनका अनुकरण करते हैं और उन्हीं प्रकृति में लयमान होते हैं। धान की झूमती फसलों से स्त्रियाँ करमा नृत्य की लय सीख लेती हैं।

'पंडवानी गायन' छत्तीसगढ़ी लोक परंपरा की निजी पहचान है। पंडवानी में कथा भले ही शास्त्र से ग्रहण की गई हो लेकिन उसे लोकजीवन–व्यवहार से जोड़कर लोकगीत की शैली में ढाल दिया गया है। पंडवानी की माता दुरपति 'तीजा–पोरा' में मायके जाने के अपने अधिकार की बात राजा अर्जुन से करती दिखाई देती है–

'सावन भादो के महिना आवे रे माई,
तीजा–पोरा मोला जान देवे
अतिका ला सुने राजा अरजुन हा
ऐती के पृथ्वी ऐती लहुटी जाही'[11]

तीजा छत्तीसगढ़ का महत्त्वपूर्ण त्यौहार है जो हरतालिका तीज व्रत से जुड़ा हुआ है। इस दिन सभी स्त्रियाँ तीजा मनाने के लिए अपने–अपने मायके आ जाती हैं और धूमधाम के साथ सरगी नहाते हुए रात्रि में शिव पार्वती की पूजा विधि–विधान से करती हैं। यह भी हमारी भारतीय लोक संस्कृति का विस्तार है जो लगभग प्रत्येक प्रांत में मनाया जाता है। मनाने का रंग–ढंग भले ही अलग हो किंतु भाव समान है और संस्कृति की मूल चेतना समान है।

कहा जा सकता है कि छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में धरती की सोंधी गंध है, फूलों की गमक है, पक्षियों की चहक है और ईश्वर के प्रति गहरी आस्था का दिव्य स्वर निहित है, जो जीवन में आशा का संचार करता है। यह आशावादिता ही भारतीय संस्कृति का मूल है। छत्तीसगढ़ आर्यों तथा अनार्यों का संगम स्थल रहा है। विभिन्न संस्कृतियों का मेल यहाँ हुआ है। डॉ. हीरालाल शुक्ला ने बस्तर के आदिवासी (जनजातियों) लोकगीतों का अध्ययन करते हुए कहा है कि– 'बस्तर का जनजातीय संगीत वैदिक तथा आगम संगीत के साथ आर्य व द्रविड़ संगीत का मिलन है'[12]

छत्तीसगढ़ी लोकगीतों में यहाँ के लोगों का विश्वास, लोक मान्यताएँ, रीति–रिवाज, जीवन–मूल्य सब कुछ सुरक्षित है। राम के प्रति यहाँ के लोग गहरे आस्थावान और कृतज्ञता से भरे हुए हैं। छत्तीसगढ़ में राम वन गमन के दौरान जहाँ–जहाँ ठहरे थे, इसके प्रतीक चिह्न मिलते हैं जिसका ज़िक्र लोकगीतों में मिलता है। शबरी का आश्रम छत्तीसगढ़ के बिलासपुर में है जहाँ एक वट वृक्ष है जिसके पत्ते आज भी दोने के आकार के होते हैं और वहाँ के लोगों का विश्वास है कि इन पत्तों में शबरी ने राम को बेर खिलाया था इसीलिए ये पत्ते ऐसे हैं।

यहाँ के गीतों में जातीय विशेषताएँ, पौराणिक कथाएँ और आदम परंपराएँ मौजूद हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार गीत यहाँ गाए जाते हैं जो यह बताते हैं कि यहाँ भारतीय सनातन संस्कृति रची बसी है। इन गीतों में अनंतकाल से चली आ रही

सुदीर्घ परंपराएँ हैं जो भगवान राम और कृष्ण से जुड़ी हुई हैं। इन गीतों में भारतीय संस्कृति के उच्चतम मानवीय मूल्य निहित हैं एवं सामाजिक स्तर पर सामूहिकता और परस्पर सहयोग की लोकहितकारी भावनाएँ हैं।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भारतवर्ष तो एक राष्ट्र है। इसका हर प्रदेश एक दूसरे से परस्पर संबद्ध है। विविधता के बीच एकरूपता और अनेकता में एकता का सूत्र इसको बाँधे हुए है। संस्कार और संस्कृति में भी एक साम्यता है। आज हमारी शक्तियाँ विश्रृंखल और विघटित प्रतीत होती हैं और संगठन की दृष्टि से शक्तियों का संगठित किया जाना अनिवार्य हो गया है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में लिखा है–

'शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त, विकल
बिखरे हैं हो निरुपाय,
समन्वय उनका करें समस्त
विजयिनी मानवता हो जाये'

इन लोकगीतों के रचे जाने का भाव भी यही है कि समस्त मानवता का कल्याण हो, जीवन में मंगल हो, उत्सव हो, प्रकृति का संरक्षण हो, तालाब, नदियाँ, निर्झर, सूरज और चंद्रमा की तरह हमेशा रहें। तुलसी विवाह गीत और वट सावित्री व्रत गीत आदि पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं और इनमें इन वृक्षों, लताओं के दीर्घ संरक्षण की चेष्टा विद्यमान है।

लोकजीवन हमारे समाज और संस्कृति की आधारशिला है और लोकगीत इसी आधारशिला को बचाए रखने की अनवरत चेष्टा है क्योंकि लोक जीवन का मर्म ही लोकगीत है। इन लोकगीतों को जानने समझने हेतु शोध किए जाने अपक्षित हैं जिससे समाज में परस्पर सहयोग और उदारता की भावना को सुदृढ़ किया जा सकता है। इस उदारता की भावना से निश्चित ही 'उदारचरितानाम  वसुधैव कुटुंबकम' का भाव मजबूत होगा।

**संदर्भ ग्रंथ**


1. भोजपुरी वाचिक कविता : भोजपुरी, विद्यानिवास मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ 6
2. लोक साहित्य की भूमिका : डॉ. कृष्ण देव उपाध्याय, साहित्य भवन प्रा. लि., इलाहाबाद पृष्ठ 65
3. कविता कौमुदी : रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर प्रयाग, पृष्ठ 96
4. छत्तीसगढ़ी संस्कार गीत, डॉ. पी सी लाल यादव, प्रकाशक– दूध मोंगरा गंडई, छत्तीसगढ़ पृष्ठ 73
5. वही, पृष्ठ 10
6. वही, पृष्ठ 22

7. वही, पृष्ठ 70
8. भाषा पत्रिका, जुलाई–अगस्त, 2005 पृष्ठ 164
9. वही, पृष्ठ 165
10. लोकसंस्कृति आयाम एवं परिप्रेक्ष्य, सं. महावीर अग्रवाल, श्री प्रकाशन, दुर्ग पृष्ठ 67
11. वही, पृष्ठ 263
12. वही, पृष्ठ 7
13. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 29

❑❑❑

**ओ तुम सब! जिनकी है पहुँच दूर तक (जिसकी जितनी)**
**मुझे किसी से हिर्स नहीं।**
**पैरों की छाप तुम्हारे**
**हर पग की मुझ पर पड़ती है।**
**मैं पहुँचूँ या नहीं, तुम्हारे पैरों से ही नपता–नपता**
**कभी जान लूँगा मैं अपनी नाप**
**और उस ओर नहीं, उस तक जा लूँगा,**
**जहाँ भी हूँ उस का प्रसाद पा लूँगा।**

**–अज्ञेय**

# ‘आमी निदो बिंयी’
# (आपातानी समाज की प्रथम स्त्री शक्ति)

**कागो मादो**
अरुणाचल प्रदेश की चर्चित रचनाकार, संप्रतिः राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बंदरदेवा में कार्यरत।

मानव सभ्यता की जड़ों में जब हम गहराई से उतरते हैं तो हमें ऐसे कई मिथक, लोककथाएँ और लोकगीत मिलते हैं जो न केवल एक संस्कृति की पहचान होते हैं, बल्कि नारी की भूमिका को भी नये अर्थों में सामने लाते हैं। अरुणाचल प्रदेश की आपातानी जनजाति की समृद्ध मिथकीय और पूर्वजों की ज्ञान परंपराओं के अनुसार उई युग के अंत और इप्यो युग की शुरुआत में ‘आमी निदो बिंयी’ का सृष्टि की प्रथम स्त्री शक्ति के रूप में प्रादुर्भाव होता है। यह लेख उनके जीवन, प्रेम की खोज, श्रृंगार और मातृत्व की यात्रा को दर्शाता है जो आपातानी समाज की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक नींव का आधार भी है। यह कथा न केवल स्त्री चेतना का प्रतीक है बल्कि प्रेम, सौंदर्य और उर्वरता की परंपराओं की प्रथम वाहिका भी हैं। यहाँ आमी निदो बिंयी की कहानी के साथ सृष्टि के छह युगों (कोल्युं, कोलो, उई, इप्यो, मुदो, सुपुंग) का भी उल्लेख किया गया है, जिससे हमें आपातानी विश्वदृष्टि को समझने में मदद मिलती है। यह विवरण इस प्रकार हैः–

आमी निदो लू, इप्यो निदो लू, इप्यो आमी पा दुलिंग लीयिकू।
डिंगया लेम्बा हो पामु मुंका, सिः लेम्बा हो हेते टेका केले।
लुटू काल्यंग लासीं काल्यंग मादो, मयोत लेम्बा पामु मुंका।
पील्या लेम्बा हेते टेका केले, लुटू काल्यंग लासीं काल्यंग मादो।
मुह खुम्प्ह संको लामा दो, टूबो लेम्बा हेते टेका केले।
ल्याबो लेम्बा हो पामु मुंका केले, लुटू काल्यंग लासीं काल्यंग मादो।
मुह खुम्प्ह संको लामा दो, हितु गोंतु हीमा गोमा ल्यिकू।
दीमां तुल्या मी आदीं खिन्यो गल्यिकू, तापंग आबी मी बिनयो गल्यिकू।
सिजो तरिः मी तिन्यो गल्यिकू, तिन्यो–टिपे मी पन्यो ग्ल्यिकू।
सर्चे–पुटू मी हुन्यो गल्यिकू, सिको टापिं मी हीब– हिन्यो पा हिल्यीकू।
बुयन्दो ताबी मी बुयन्दो हिन्यो गल्यिकू।

'आमी निदो लू, इप्यो निदो लू/इप्यो आमी पा दुलिंग लीयिकू' इन पंक्तियों से अभिप्राय है कि 'आमी निदो बिंयी' का सृष्टि की प्रथम स्त्री शक्ति के रूप में प्रादुर्भाव होता है। प्रेम निवेदन के लिए (courting) वह डिंगया, म्योत, पिल्या, टूबो और ल्याबो अर्थात् विभिन्न स्थानों की यात्रा करती है, लेकिन उन्हें कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता जो उनके विचारों, स्वभाव और संवेदनाओं से मेल खाता हो। उन्हें कहीं भी अपने पसंद का, योग्य संग–साथी नहीं मिलता। क्योंकि दो व्यक्तियों के बीच स्वाभाविक भिन्नता होती है। समय के साथ आमी निदो प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करती हैं तो उन्हें लगता है कि जीवन का अब बुढ़ापे की ओर झुकाव हो रहा है जिसके चलते दाँत कमज़ोर और मुँह के मसूड़े खाली होने की कगार पर हैं। अब वह बालों को सँवारना और गुच्छों में बाँधना शुरू करती है। कईयों की परत से ऊपर पहने जाने वाला वस्त्र और नीचे पहने जाने वाला परंपरागत वस्त्र धारण करना आरंभ कर देती है। इसके अलावा, वे चेहरे पर टैटू गुदवाना बेंत से बनी नाकफुली और मनकों की माला पहनती हैं। वे अब 'बुयन्दो ताबी' पहनती हैं अर्थात् शृंगार का ऐसा वस्त्र या प्रसाधन जो स्तनों को ढककर उन्हें सुंदर दिखाता है, जैसा कि आपातानी महिलाएँ गले में आभूषणों से भरकर अपने शरीर को सजाती हैं।

आपातानी समाज में यह मान्यताएँ हैं कि सृष्टि की संरचना छह युगों में की गई है जो इस प्रकार हैः—

1. कोल्युं (KOLYUN)' सृष्टि का प्रारंभिक काल जब सर्वत्र अंधकार था। कोई ठोस रूप नहीं और धुँध, कोहरे का वातावरण था। इस युग में सूर्य (टाटा इजांग), जल (लाला–हाई), तारे और आकाशीयगंगा (कुल्यु तालू और कीलो तस्सा) का गठन हुआ।

2. कोलो (KOLO)' सृष्टि का दूसरा चरण, जिसमें भौगोलिक और जैविक सृष्टि का विस्तार हुआ। इस युग में पर्वत (YUNTU ATU), घाटियाँ (YUNDO ADO), मैदान और जीवन (YUNCHANG ACHANG) की रचना हुई। वनस्पति व जीव–जंतुओं की उत्पत्ति हुई, परंतु मानव का अस्तित्व नहीं था।

3. उई (UYI)' इस युग में प्रकृति और आत्मा के बीच सामंजस्य स्थापित हुआ। देवी–देवताओं की अवधारणा इसी युग में प्रारंभ हुई, जैसे– (HACHI और HAATII)

4. इप्यो (IPYO)' सृष्टि का चतुर्थ चरण, इस युग को प्योयू (PYOYU) भी कहते हैं। इस युग में मानव समुदायों का निर्माण कृषि, शिकार और सामाजिक नियमों की रचना हुई।

5. मुदो (MUDO)' सृष्टि का पाँचवा चरण जो मानव और प्रकृति के बीच संघर्ष, प्रगति और चुनौतियों का दौर रहा। मनुष्यों ने स्थायी रूप से बसना शुरू किया, गाँवों की स्थापना और सामाजिक व्यवस्था विकसित हुई।

6. सुपुंग (SUPUNG)' सृष्टि का छठा चरण, परंपरा और आधुनिकता के

समन्वय का युग, जिसमें बाहरी प्रभावों की शुरुआत होती है।

आमी निदो बिंयी के यात्रा चक्र में कोई भी प्राणी अछूता नहीं रहता। कई वर्षों के बाद आमी निदो बिंयी प्रौढ़ावस्था में पहुँचती हैं। तब पॉपी–सर्मिन को ऐसा महसूस हुआ कि आमी निदो बिंयी को जिस उद्देश्य के लिए गर्भ धारण करवाया गया था वह तो उसके महत्त्व को समझ ही नहीं रही है? तब वह आमी निदो के पास जाकर मातृत्व सृजन के महत्त्व को समझाती हैं और श्रृंगार करने के लिए कहते हैं। आमी निदो उनकी सारी बातों को सुनने के बाद कहती हैं– मैं तो जीवन की प्रौढ़ावस्था में आ गई हूँ। अब इस हाल में मुझे कौन ब्याहेगा? पॉपी–सर्मिन एक बार फिर यह सुझाते हैं कि– आदीं खिन्यो ग्ट्टो (बालों को सँवारो और गूँथने की प्रवृत्ति रखो), यारु हुकोटो (कान छेद करवाओ), यारु हुखो ग्ट्टो (कान में कर्णफूल पहनो), यापिंग हुकोटो (नाक छेद कराओ), यापिंग हुलो ग्ट्टो (नाक फूल पहनो), टिपे पन्योटो (टैटू गुदवाने की प्रथा अपनाओं)। आमी निदो यह सब करती हैं; लेकिन उनके जीवन में कोई खास परिवर्तन नहीं होता है। एक बार वह फिर से मायूस होकर यूँही बैठ जाती हैं। उनकी इस दशा को देखकर पॉपी–सर्मिन उन्हें पिन्सांग ग्युठ के पास भेजते हैं। पिन्सांग ग्युठ उसे नितांग पा टिपे पाकोकिंडो अर्थात् किस रूप से टैटू गुदवाना है, यह प्रक्रिया समझाते हैं। जैसे–तिरी होक्ला यापिंग पिंटू लोए पा (माथे से लेकर नाक की नोक तक), गोम्प टिपे पकोटो (ठुडी पर टैटू गुदवाओ)। आमी निदो बिंयी ने पॉपी–सर्मिन के कहे अनुसार और पिन्सांग ग्युठ के निर्देशन में बहुत ही श्रद्धा के साथ जो–जो करने को कहा था उन सबका पालन किया।

आमी निदो बिंयी यह सब करते ही आत्मबोध, श्रृंगार और मातृत्व की यात्रा को समझने लगती है। पिन्सांग ग्युठ के द्वारा ही वह मुदो जिन्दो ताजिंग जिंगले नामक पुरुष को जानने–समझने का अवसर प्राप्त करती है। इस तरह एक दिन मुदो जिन्दो ताजिंग जिंगले के साथ उसका विवाह हो जाता है। इस विवाह के बाद वह शारीरिक और मानसिक रूप से स्वयं का पुनर्जनन करती है अर्थात् अपनी खोई हुई ऊर्जा, सौंदर्य और सृजन क्षमता को पुनः प्राप्त करती है। सृजन आमी निदो के संयोग से कई खालो (बसंद) को जन्म देती है। खालो का जन्म होने के बाद से ही प्रकृति और मानव के बीच की दूरी कम हो जाती है, जितने भी जंगली फल, पत्ते थे खाने योग्य बन जाते हैं और जितने जंगली जानवर थे, सब पालतू हो जाते हैं। इस प्रकार आमी निदो बिंयी ने न केवल मानव समाज की नींव रखी, बल्कि प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि आपातानी समाज में आमी निदो बिंयी सिर्फ प्रथम स्त्री चेतना का प्रतीक ही नहीं बल्कि प्रेम, श्रृंगार, सौंदर्य और मातृत्व सृजन (उर्वरता) की परंपरा की प्रथम वाहिका भी हैं। उनकी कहानी आपातानी संस्कृति में आत्मबोध, सृजन और सामाजिक परंपराओं की नींव को दर्शाती है। आमी निदो बिंयी

की कहानी हमारे पूर्वजों की ज्ञान परंपराओं की सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। यह न केवल स्त्री शक्ति और मातृत्व की महत्ता को उजागर करती है, बल्कि प्रकृति और मानव के बीच सामंजस्य, सृजन और प्रकृति प्रज्ञा की निरतंरता को भी व्यक्त करती है।

**शब्दार्थ :**

1. पॉपी–सर्मिन– रक्षक देवता जो कोल्युं युग में उत्पन्न हुए और हर युग में उनका अस्तित्व है।
2. पीन्संग ग्युठ– एक दिव्य या अलौकिक सत्ता को दर्शाती है, जो पैटर्न, बुनाई या सृजन से जुड़ी है।
3. मुदो जिन्दो ताजिंग जिंगले– प्रथम पुरुष शक्ति जिनका विवाह आमी निदो के साथ हुआ।
4. खालों– किसी विशेष क्षेत्र का स्वामी या किसी विशिष्ट क्षेत्र का अधिपति, जैसे चान्या खालो इसके अंतर्गत–सूर्य, चाँद, तारे आते हैं।

**स्रोत**

1. Gyati Rana: A fine flame of Miji-Migun from the Sachet of Popi-Sarmin-I & II
2. मार्गदर्शन और मौखिक जानकारी–दानी तास्सर, ग्याति राना, पुरा पाई (न्यीबू)
3. आपातानी लोक कथाओं से संबंधित जानकारी, टीम EPC
4. सृष्टि के कालों के नामकरण को लेकर दानी तास्सर और ग्याति राना दोनों का अपना–अपना मत है। आदरणीय तास्सर के अनुसार प्रथम युग 'कोलो' है; जबकि आदरणीय राना के अनुसार पहला काल 'कोल्युं' है। अतः यहाँ दोनों के व्याख्यान और मत को सुनने के बाद स्पष्ट करना चाहती हूँ, कि दोनों युगों में चीजों का उल्लेख आपातानी भाषाओं में किया गया है। उनका वर्णन आदरणीय दानी तास्सार के मत के आधार पर किया गया है जैसे–

1. जैसे– सूर्य (टाटा इजांग), जल (लाला–हाई), तारे और आकाशीयगंगा (कुल्यु तालू और कीलो तस्सा)
2. पर्वत (YUNTU ATU), घाटियाँ (YUNDO ADO), मैदान और जीवन (YUNCHANG ACHANG)

❑❑❑

# सिंधी काव्य की त्रिवेणी: शाह, सचल एवं सामी

**चंद्र प्रकाश दादलानी**
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष (सिंधी विभाग),
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

सिंधी साहित्य के शाह अब्दुल लतीफ (1689—1752 ई.) सचल सरमस्त (1739—1829) एवं चैनराई (1743—1850) सिंधी साहित्य की तीन अमूल्य निधियाँ हैं। ये तीनों कवि सिंधी काव्य की पवित्र त्रिवेणी के रूप में भी पहचाने जाते हैं, एक ऐसी त्रिवेणी जहाँ ज्ञान, भक्ति और प्रेम की नदियों का समागम समान मावधारा के साथ होता है। इस प्रकार के विचार—साम्य के पीछे उस समय के संत एवं सूफ़ी कवियों की भ्रमणशील प्रवृत्ति काम कर रही थी। तत्कालीन सूफ़ी समाज में फ़कीर, संगीत के सुर ताल पर संतों एवं दरवेशों के काव्य गाया करते थे। साधु एवं संत, सिद्ध एवं योगी पैदल ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक भ्रमण करते थे और अपने मत का जनता में प्रचार करते थे। संत—काव्य की विरासत, भारत के अधिकांश हिस्सों में एक जैसी थी। इस काव्य—विरासत की सबसे बड़ी बात यह थी कि संत कवि चाहे भारत के किसी भी कोने से हों, कोई भी भाषा बोलने वाले क्यों न हों; किसी भी मजहब के क्यों न हों सबने एक ही तरह के आत्मिक ज्ञान एवं अनुभव हासिल किए थे।इन त्रिमूर्ति महान कवियों का काव्य सूफी, भक्ति, और आध्यात्मिक परंपराओं का प्रतीक है। इन कवियों ने प्रेम, मानवता और सह—अस्तित्व जैसे शाश्वत मूल्यों को अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया। इन तीनों ही संतों के काव्य न केवल विशेष साहित्यिक महत्त्व रखते हैं बल्कि समाज को आध्यात्मिक और नैतिक दिशा भी प्रदान करते हैं।

शाह अब्दुल लतीफ़ सिंध के पहले महान सूफी कवि थे जिन्होंने सिंध के लोगों की आम भाषा में अपना कलाम लिखा। उनका कलाम सीधे—सादे देहाती लोगों को बहुत भाता था। खेतों में हल चलाते किसान, थार की गर्म रेत पर ऊँटों पर सफर करते व्यापारी, गहरे समुद्र में जाल बिछाते मछुआरे आदि सभी इस कलाम को गाते हुए आनंदमग्न हो जाते थे। शाह लतीफ़ का कलाम आज भी सिंध में उतने ही आदर, सम्मान और श्रद्धा के साथ पढ़ा, सुना और गाया जाता है जितना मौलाना रूम का ईरान में। दुनिया के हर हिस्से में सिंधी लोग, ख़ासतौर पर बुज़ुर्ग पीढ़ी के लोग, शाह

साहिब का कलाम बड़ी श्रद्धा और आदर से सुनते और गाते हैं। शाह अब्दुल लतीफ़ के पूर्वज अफ़गानिस्तान से आकर सिंध प्रांत के मतीआरी गाँव में बस गए। मतीआरी से उनके पिता सैय्यद हबीब शाह हैदराबाद, सिंध के हाला हवेली नामक स्थान पर जा बसे। यहीं शाह अब्दुल लतीफ़ का जन्म हुआ। ऐसा माना जाता है कि उनका जन्म 1689 ई. में हुआ और 1752 ई. में वे परलोक सिधार गए। उनके पूर्वजों में शाह अब्दुल करीम जाने–माने रहस्यवादी लेखक और शायर हुए। छह साल की उम्र में उन्हें अरबी वर्णमाला सीखने के लिये उस्ताद के पास भेजा गया। उन्होंने अरबी वर्णमाला के पहले अक्षर 'अलिफ़' के आगे पढ़ने से इनकार कर दिया और कहा कि सब कुछ एक 'अलिफ़' में समाया हुआ है। 'अलिफ़' अल्लाह के एक होने का सूचक है। यही तथ्य उनकी रचनाओं में पूरी तरह झलकता है। उनके कलाम से पता चलता है कि वे सिंधी, संस्कृत, फारसी और अरबी भाषाओं में निपुण थे। वे कुरान और रूमी की मसनवी हमेशा अपने साथ रखते थे।

कहते हैं कि 21 वर्ष की आयु में जब वे गँजो पर्वत पर भ्रमण के लिए गए, तब उनकी मुलाकात योगियों की एक टोली से हुई। उनकी टोली में शामिल होकर उन्होंने हिंगलाज, झूनागढ़, लाहूत, लखपत, जैसलमेर और थरपारकर जिले के तीर्थों का भ्रमण किया। हिंगलाज की दूसरी यात्रा में वे योगियों से अलग होकर घर लौट आए। शाह लतीफ़ के जीवन पर योगियों के साथ भ्रमण का गहरा असर पड़ा। उन्होंने अपने कलाम में योगियों की बहुत प्रशंसा की है। वे सदा चिंतन–मनन की अवस्था में रहते और एकांत पसंद करते थे। इसी मनोवृत्ति के कारण वे ऐसी जगह की तलाश में थे जहाँ बैठकर इबादत कर सकें। हाला हवेली से चार मील की दूरी पर किराड़ झील के पास रेत का एक काँटेदार टीला था जो शाह लतीफ़ को बेहद पसंद आया। उस टीले को 'भिट' कहते थे। उन्होंने उसे आबाद करने का फ़ैसला किया। उनके शिष्यों ने दूर से रेत लाकर उस काँटेदार टीले को समतल किया। उसमें एक कमरा भूमिगत और दो कमरे उसके ऊपर बनवाए। तभी से वे शाह अब्दुल लतीफ़ 'भिटाई' के नाम से जाने जाते हैं।

जिंदगी के आखिरी आठ साल उन्होंने भिट में गुज़ारे। शरीर त्यागने से कुछ दिन पहले वे भिट के नीचे भूमिगत कमरे में एकांतवास के लिए चले गए। वहाँ वे इबादत में मग्न रहे। इक्कीस दिन के बाद वे बाहर आए, स्नान किया और अपने ऊपर सफ़ेद चादर ओढ़कर लेट गए। उन्होंने मुरीदों से साज़ों पर धुन छेड़ने को कहा। यह सिलसिला तीन दिन तक चलता रहा। तीन दिन बाद जब चादर हटाई गई तो उनकी रूह वजूद छोड़कर अल्लाह के मुक़ाम पर जा चुकी थी। उन्हें भिट में दफ़नाया गया। उनकी मज़ार आज भी वहाँ मौजूद है।

अब्दुल वहाब (सचल सरमस्त) का जन्म 1739 ई. में दराज गाँव में हुआ। यह

गाँव पाकिस्तान में उत्तरी सिंध की खैरपुर रियासत में है। आपका बचपन का नाम अब्दुल वहाब था। सचल और 'सचु' उनके उपनाम थे। क्योंकि वे ज्यादातर रूहानी मस्ती में डूबे रहते थे, इसलिए उनके शिष्य उन्हें 'सचल सरमस्त' कहा करते थे। आम लोग भी उन्हें 'सरमस्त' कहने लगे। 'सरमस्त' का अर्थ है मस्त। कहा जाता है कि सचल के दादा मियाँ साहिबड्निो उच्चकोटि के दरवेश थे। सिंध में आने के बाद उन्होंने कुछ समय तक मीरों के यहाँ नौकरी की। वे ख़ुदापरस्त तो थे ही, इसलिए बाद में उन्होंने संन्यास ले लिया। वे थार की काँटेदार झाड़ियों में छिपकर इबादत किया करते थे। एक बार अकस्मात् इनकी मुलाक़ात शाह लतीफ़ साहिब से हुई। शाह लतीफ़ ने उन्हें सलाह दी कि वे गुमनामी से बाहर आएँ और लोगों को रूहानियत का पैग़ाम दें।

सचल साहिब अभी नाबालिग ही थे कि उनके पिता चल बसे। इसलिए उनका पालन–पोषण उनके चाचा फ़क़ीर अब्दुल हक़ की देखरेख में हुआ। फ़क़ीर अब्दुल हक ने उन्हें शिक्षित किया, उनके मुर्शिद बने और अपनी बेटी से उनका रिश्ता जोड़कर उनके ससुर भी बने। सचल साहिब की पत्नी शादी के दो साल बाद ही परलोक सिधार गई। जब सचल की उम्र 13 वर्ष की थी, शाह लतीफ़ दराज़ में पधारे। सचल को देखते ही उनके मुख से यह वाक्य निकलाः "असाँ जेको देगड़ो चाढ़ियो आहे, तहिंजो ढक ही नींगर लाहिंदो"। हमने जो देग चढ़ाई है उसका ढक्कन यह बालक उठाएगा।

शाह लतीफ़ का यह कथन आगे चलकर सच साबित हुआ। जिस रूहानी भेद को शाह लतीफ़ ने पोशीदा (परदे में) रखा, सचल ने उसका खुलकर इज़हार किया। उन्होंने भक्ति का दिखावा करने वालों की खुले आम आलोचना की और खरी–खोटी सुनाने में कोई कसर नहीं रखी। उनका देहांत 1829 ई. में 90 वर्ष की उम्र में हुआ। देह त्यागने से पहले तीन दिन तक वे अपनी कोठरी से बाहर नहीं निकले। रमजान के चौदहवें दिन उन्होंने देह त्याग दी।

सचल सरमस्त हमेशा जमीन पर ही बैठते और सोने के लिये लकड़ी का तख्त इस्तेमाल करते थे। वे भोजन सादा और कम मात्रा में करते थे। वे शाकाहारी थे और ज्यादातर दाल और दही पर निर्भर रहते थे। उनका पहनावा बिल्कुल सादा था, यहाँ तक कि उनकी जिंदगी का हर पहलू सादगी की मिसाल था, लेकिन चिंतन के हर पहलू में रूहानियत थी।

सचल प्रेम की साक्षात् मूरत थे। सचल के कलाम के हर पक्ष में प्रेम की झलक है। सचल ने परमात्मा को भी प्रेम का ही स्वरूप सिद्ध किया है और कहा है कि ख़ुदा से बेहद इश्क़ करने वाले आशिक का तो ख़ुदा भी आशिक हो जाता है। सचल साहिब उच्चकोटि के विद्वान थे। उन्हें कुरान जुबानी याद था। सचल को शायर–ए–हफ़्त ज़बाँ यानी सात भाषाओं का शायर कहा जाता है। उन्होंने सिंधी, हिंदी, उर्दू, सराइकी,

पंजाबी, फ़ारसी और अरबी भाषा से अपने कलाम को सँवारा—सजाया। हालाँकि उनके कलाम में रूहानियत का वर्णन है, फिर भी उन्होंने रूहानियत का सार तत्त्व यही सिद्ध किया है कि यदि आशिक उस खुदा के इश्क में अपनी हस्ती को नेस्तनाबूद कर दे, तो वह खुदा का ही रूप हो जाता है।

चैनराई बच्चोमल दातारामानी (सामी) ने अपना पावन आध्यात्मिक संदेश सरल सिंधी भाषा में दिया। आपका जन्म 1743 ई. में सिंध प्रांत के शिकारपुर शहर में लुण्ड घराने के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम श्री बच्चोमल दातारामानी था जो कपड़े के प्रसिद्ध व्यापारी थे। वे प्रायः प्रभु भक्ति में लीन रहते थे। चैनराई भी अपने पिता की भक्ति से प्रभावित हुए और परमात्मा की भक्ति के रँग में रँग गए। अपने पिता के परलोक सिधारने के बाद श्री चैनराई सामी ने उनके व्यापार को सँभाला। कपड़े के व्यापार के साथ—साथ आप डेरा ग़ाज़ीखान में शाहों के पास उनके बहीखाते लिखने का काम भी किया करते थे। सदाचारी इंसान होने के नाते व्यवसाय में झूठ—कपट को देखकर आपके मन में इस व्यापार के प्रति उदासीनता होने लगी। इसलिए आपने अपने व्यवसाय का दायरा छोटा कर लिया। आप बचपन से ही संत—महात्माओं की संगति के शौकीन थे। इसलिए पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए आप साधु—संतों के सत्संग में भी नियमपूर्वक जाते थे। धर्म और संस्कृति में आपका गहरा रुझान था। धार्मिक ग्रंथों और शास्त्रों को पढ़ने में आपकी विशेष रुचि थी।

धर्मग्रंथों एवं शास्त्रों के गहरे ज्ञान और उनमें बताए अभ्यास के बावजूद आपके मन में पूरी तसल्ली न हुई। आप अभी भी सही मार्ग की खोज में व्याकुल थे। कहा जाता है कि एक रात जब चैनराई सामी सो रहे थे तो सपने में इन्हें एक तेजस्वी महापुरुष के दर्शन हुए। उस महापुरुष ने आवाज देकर कहा कि भाई उठो! जागो! अपने आपको पहचानो। मुझसे प्रेम करते हो तो मेरी शरण में चले आओ। अगले दिन सुबह आप अपने परमार्थी मित्र श्री नारायण दास बैरागी के पास गए और उनको सपने का वृत्तांत सुनाया। श्री नारायण दास ने बताया कि हेमनदास के मंदिर में एक महात्मा स्वामी मेघराज ठहरे हुए हैं और वहाँ उनके सत्संग का कार्यक्रम है। अगले दिन जब सामी अपने मित्र के साथ सत्संग में गए तो स्वामी मेंघराज जी के नूरानी जलाल को देखकर स्तब्ध रह गए। सपने में दिखाई देनेवाले उसी नूरानी स्वरूप को सामने पाकर इनका व्याकुल और तपता हुआ मन पलभर में शांत हो गया। श्री चैनराई सामी ने उसी वक्त श्रद्धा और प्रेम से अपना सिर स्वामी जी के आगे झुका दिया। स्वामी जी ने इन्हें दीक्षित किया। सतगुरु की बताई युक्ति के अनुसार वे निरंतर अभ्यास करते रहे और लगातार 8—10 वर्षों तक सतगुरु की संगति में रहे। चैनराई सामी अपने सतगुरु की संगति में रहते हुए अंतर्मुखी अभ्यास के साथ—साथ काव्य रचना भी करने लगे। 40

वर्ष की अवस्था तक पहुँचते–पहुँचते इन्होंने अपनी वाणी में कई श्लोकों की रचना की।

चैनराई सामी जी की आत्मा पर रूहानी रंग चढ़ चुका था। ये अपने अंदर के रूहानी अनुभव वाणी के रूप में कागज़ के छोटे–छोटे टुकड़ों पर लिखकर मिट्टी के घड़े में डाल दिया करते थे। ये श्लोक दोहा और सोरठा के मिश्रित रूप हैं। सिंधी श्लोकों को ये गुरुमुखी लिपि में लिखा करते थे। इन्होंने अधिकांश समय अमृतसर में बिताया, इसलिए इनकी वाणी में गुरु साहिबान की वाणी का भी प्रभाव है।

कहा जाता है कि जब चैनराई सामी जी के गुरुदेव स्वामी मेंघराज जी ने सिंध में अपने नश्वर शरीर का त्याग किया, तो उसकी सूचना इन्हें अमृतसर में मिली। ये अमृतसर से शिकारपुर (सिंध) वापस लौट आए और वहीं रहने लगे। इनके निवास स्थान को 'सामी का कुआँ' कहकर पुकारा जाता है जो आज भी शिकारपुर में एक पवित्र स्थान माना जाता है। यहीं इन्होंने 1850 ई. में अपनी देह को त्याग दिया। उस समय सामी जी की उम्र 107 वर्ष की थी।

तीनों सिंधी दरवेश लगभग समकालीन थे। इनका जीवनकाल (1689–1850 ई) सिंध के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है क्योंकि सिंधी समाज उस समय अपने अस्तित्व के बचाव और पुनरुत्थान के लिए संघर्षपूर्ण दौर से गुजर रहा था। इन सूफी–संतों ने ऐसे हालात में सिंधी समाज को आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति सचेत किया। इन्होंने अपनी मातृभाषा सिंधी की सजीवता और काव्यात्मक सौंदर्य का परिचय लोगों को ऐसे समय में कराया, जब सिंध में अरबी और फारसी का बोलबाला था। सन 1520 ई. में शाह बेग अरग़ून के पुत्र शाह मिर्जा हुसैन ने ठटे को नष्ट कर दिया, राजपूतों का साम्राज्य नष्ट कर दिया और अरग़ूनो के साम्राज्य की नींव रखी। इस प्रकार सिंध में पुनः विदेशियों का साम्राज्य स्थापित हो गया। अरगूनो ने बखर को अपनी राजधानी बनाया। इनके शासन के समय थार में सैकड़ों राजपूत शासन कर रहे थे। उमर कोट के शासक राणे प्रसाद ने दिल्ली से भागे हुमायूँ को अपने किले में आश्रय दिया था। अकबर का जन्म 14 अक्तूबर 1542 को वहीं हुआ था।

वर्ष 1555 हिजरी में शाह बेग के पुत्र मिर्ज़ा हुसैन की मृत्यु के बाद सिंध में अरगूनो का शासन समाप्त हो गया और तरखानों का शासन शुरू हुआ। उन्होंने सिंध को दो भागों में बाँट दिया। मिर्जा ईसा तरखान ने ठटे का शासन और सुल्तान मुहम्मद खान ने बखर का शासन सँभाला। इन दोनों की आपसी दुश्मनी ने सिंध में पुर्तगालियों को मौका दिया। उन्होंने 1556 ई. में पूरे शहर को लूटा और नष्ट कर दिया। मिर्जा ईसा के बेटे मिर्ज़ा जानी बेग ने सिंध की सत्ता पर कब्जा करने की कोशिश की लेकिन उस समय अकबर के सेनापति ख़ानीख़ाना ने सिंध पर हमला कर दिया और जानी बेग को हराकर यहाँ मुगल साम्राज्य की नींव रखी। उसके बाद सिंध में मुगल साम्राज्य के नवाब नियुक्त किए जाने लगे। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद

मुगलों की शक्ति ध्वस्त हो गई। अपनी इच्छा से, 1736 ई. में, उन्होंने बखर, सेवहण और ठटे का शासन कल्होरों को सौंप दिया। कल्होरों के शासनकाल के दौरान नादिर शाह और अहमद शाह अब्दाली ने कल्होरों को हराया लेकिन सरकार कल्होरों के हाथों में रही। वे पहले ईरान और फिर कंधार बादशाहों को कर देते रहे।

सोलहवीं शताब्दी से लेकर सन् 1843 में सिंध पर अंग्रेज़ों का शासन कायम होने तक सिंधी साहित्य में भक्ति काव्यधारा प्रबल रही। सूफ़ीवाद एक धार्मिक और आध्यात्मिक आंदोलन है जो इस्लाम के भीतर विकसित हुआ। इसका उद्देश्य व्यक्ति को खुदा के नजदीक लाना और आत्मिक शुद्धि की ओर अग्रसर करना है। सूफीवाद की कई विशेषताएँ और कलाएँ उल्लेखनीय हैं जैसेः

1. सूफ़ीवाद एक आध्यात्मिक यात्रा है जहाँ साधक आत्मा को ईश्वर के साथ एकीकार करने की खोज करता है।

2. सूफ़ी कवियों और शिक्षकों ने प्रेम को भगवान के प्रति एक सच्चे और गहरे संबंध के रूप में प्रस्तुत किया है।

3. तसव्वुफ़ एक ऐसा मार्ग है जिसे सूफी संप्रदाय का अनुसरण करने वाले लोग अपनाते हैं। इसमें ध्यान, प्रार्थना, और आध्यात्मिक तकनीकें शामिल हैं।

4. सूफियों में 'जिक्र' ध्यान की एक विधि है जिसके माध्यम से वे ईश्वर के करीब पहुँचने का प्रयास करते हैं।

5. सूफ़ीवाद में सामूहिक रूप से प्रार्थना और साधना पर विशेष ध्यान दिया जाता है जिससे एकजुटता और भाईचारा बढ़ता है।

सूफी काव्य में भावों की आध्यात्मिकता के साथ–साथ कलात्मक स्तर पर निम्न विशेषताएँ देखने को मिलती हैंः–

1. सूफ़ी संगीत, जैसे क़व्वाली, एक महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति है जो साधकों को आध्यात्मिक अनुभूति में मदद करती है। इसमें भावनात्मकता और ईश्वर के प्रति प्रेम की भावना निहित होती है।

2. सूफ़ी कवियों ने अपने काव्य में प्रेम, मानवता, और ईश्वर के प्रति गहन भावनाओं को व्यक्त किया है। उनकी कविताएँ अद्वितीय हैं और आज भी प्रेरक हैं।

3. सूफी कला में इस्लामी गोथिक और चित्रण की कुछ पारंपरिक शैलियों का समावेश होता है जो अपनी जटिलता और गहरी आध्यात्मिकता के लिए जानी जाती हैं।

4. सूफी दरगाहें, जहाँ भक्त आते हैं, उनकी वास्तुकला और सजावट भी कला का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं। ये स्थान भक्ति और श्रद्धा के प्रतीक होते हैं।

सूफीवाद एक व्यापक और गहन दृष्टिकोण है जो व्यक्ति की आत्मा के विकास और ईश्वर के साथ संबंध को महत्त्वपूर्ण मानता है। इसका कला रूप भी उसी धारणा को व्यक्त करता है, जिसमें संगीत, कविता और नृत्य के माध्यम से आंतरिक अनुभव

का साक्षात्कार होता है।

**शाह, सचल और सामी के काव्य का विश्लेषण**

**शाह अब्दुल लतीफ़ भिटाई**

- शाह का काव्य सूफी परंपरा से प्रेरित है।
- उनकी प्रसिद्ध कृति 'शाह जो रिसालो' में प्रेम, भक्ति, और मानवता की गहराई दिखाई देती है।
- उन्होंने लोककथाओं और प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्मिकता को व्यक्त किया।

**सचल सरमस्त**

- सचल सरमस्त ने धार्मिक कट्टरता का विरोध करते हुए प्रेम और सत्य के मार्ग का समर्थन किया।
- उनकी कविताएँ फारसी, सिंधी, और उर्दू भाषा में लिखी गईं।
- वे मानव आत्मा की स्वतंत्रता और आध्यात्मिक यात्रा पर जोर देते थे।

**सामी**

- सामी ने वेदों की वाणी सिंधी में सुनाते हुए भक्ति और वैराग्य के भाव को प्रस्तुत किया।
- उनके काव्य में ईश्वर के प्रति समर्पण और मानवता की सेवा का संदेश निहित है।
- उनके दोहे सरल भाषा में गहरे दार्शनिक संदेश देते हैं।
- शाह, सामी और सचल के काव्य आधुनिक समाज में बढ़ती सांप्रदायिकता को कम करने का मार्गदर्शन देते हैं और वर्तमान सामाजिक असमानताओं को दूर करने में प्रेरणा प्रदान करते हैं।
- इनके काव्य के माध्यम से मानसिक तनाव और भौतिकता से ग्रस्त जीवन में संतुलन और शांति स्थापित की जा सकती है, साथ ही प्रकृति के प्रति सम्मान और जुड़ाव की भावना विकसित होने में मदद मिलती है।

इन तीनों संतों के काव्य न केवल भारत की साहित्यिक धरोहर हैं बल्कि सामाजिक और आध्यात्मिक पुनर्जागरण के स्रोत भी हैं। इनके काव्य का अध्ययन समाज में सहिष्णुता, प्रेम और एकता को बढ़ावा देने के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

**सहायक ग्रंथः—**


- डॉ. दयाल आशा द्वारा रचित 'सिंधी शइर जी तारीख़'
- डॉ. कन्हैयालाल लेखवाणी द्वारा रचित 'सिंधी साहित्य जो मुदतसरु इतिहासु'
- डॉ. मुरलीधर जैतली द्वारा रचित 'सिंधी साहित्य जो इतिहासु'
- मिर्ज़ा क़लीच बेग द्वारा रचित 'चचनामो'
- नबी बख़्श बलोच द्वारा रचित 'शाह जो रसालो'

- डॉ. अब्दुल मजीद सिंधी द्वारा रचित 'सचल जो सनीहो'
- डॉ. अब्दुल मजीद सिंधी द्वारा रचित 'सचल जो पैग़ामु'
- महादेव लोहाना द्वारा रचित 'सचल साईं हिकु इंक़लाबी सूफ़ी शाइरु'
- कौड़ोमल चंदनमल खिलनाणी द्वारा रचित 'सामीअ जा सलोक'
- कल्याण आड्वाणी द्वारा रचित 'सामी'
- कल्याण आड्वाणी द्वारा रचित 'शाह ऐं सामी'
- डॉ. दयाल आशा द्वारा रचित 'सिंधी कवियों की हिंदी साधना'
- एल.एच. अजवानी द्वारा रचित 'सिंधी साहित्य का इतिहास'
- डॉ. नंद किशोर देवराज द्वारा रचित 'भारतीय दर्शन'
- आचार्य बलदेव द्वारा रचित 'भारतीय दर्शन'
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित 'रस मीमांसा'
- रश्मि रमानी द्वारा रचित 'सिंध प्रदेश एवं सिंध के महान कवियों की त्रिमूर्ति'

❑❑❑

**पथ पर चलते रहो निरंतर**
**सूनापन हो, या निर्जन हो,**
**पथ पुकारता है,**
**गत–स्वप्न हो पथिक,**
**चरण–ध्वनि से, दो उत्तर,**
**पथ पर चलते रहो निरंतर!**

**– त्रिलोचन**

व्यंग्य

# कबीरा क्यों रोए

**प्रेम जनमेजय**

व्यंग्य विधा के सशक्त हस्ताक्षर। लगभग 55 कृतियाँ प्रकाशित, 'व्यंग्य यात्रा' पत्रिका का लंबे समय से संपादन

मैं मेट्रो गेट से बाहर निकला तो पाया कि पीटने–पिटाने की संस्कृति फल–फूल रही है। वहाँ न कोई फल वाला था और न ही कोई फूल वाला था, फिर भी संस्कृति फल–फूल रही थी। आज के समय में बहुत ऐसे हैं जो बिना किसी आधार के फल–फूल रहे हैं। बाजारवाद, निराधार को भी फलने–फूलने के खूब अवसर प्रदान कर रहा है।

पहला पीट रहा था। दूसरा पिट रहा था। तीसरा पर्यटक बनी जनता थी।

जो पिट रहा था वह गरीब रिक्शेवाला था। जो पीट रहा था वह भी गरीब था पर पीटने का कुछ खास अधिकार रखता था। इन दिनों पीटने वालों की ऊपरी कमाई का सेंसेक्स बहुत नीचे आ गया है। अपने सहकर्मियों की दृष्टि में वह बेचारा था क्योंकि उसे चारा नहीं मिल रहा था। आतंकवादी धर्म पूछकर पीटता है यह अपनी जेब गर्म करने के लिए पीटता है। उसकी ड्यूटी ऐसे इलाके में थी जहाँ उसके क्लाइंट रिक्शे वाले, चाय वाले, छाबड़ी वाले जैसे फटी जेबधारी थे। जिनकी अपनी जेब फटी हो वे किसी की जेब क्या गर्म करेंगे। नंगे को तो निचुड़न भी नसीब नहीं होती।

रिक्शेवाला पिट रहा था। पिटना रिक्शेवाले की दैनिकचर्या है। और वह तो कुछ ड्यूटी समझकर और बहुत कुछ खिजियाकर पीट रहा था। न पीटे तो लोग शिकायत कर देते हैं कि फलाँ–फलाँ अपना काम नहीं करता। ये रिक्शेवाले भी मानते नहीं हैं। साहेब लोगों की कार के आगे अपनी रिक्शा अड़ाकर खड़े हो जाते हैं। बड़े साहब थाने में शिकायत करते हैं। बड़े–बड़े लोगों की छोटी से छोटी शिकायतें सुनी जाती हैं। सुननी पड़ती हैं। मुसीबत इलाके के लोगों की आती है। नो पार्किंग का बोर्ड लगा हुआ है। लिखे को पढ़ने के लिए पढ़ा–लिखा होना जरूरी है। वैसे पढ़े–लिखे भी कहाँ पढ़ते हैं? अकसर गरीब को अनपढ़ ही माना जाता है। पिछली बार जैसे ही किसी पुलिसिए ने एक रिक्शेवाले को डंडा जमाया, वो बोला 'प्लीज! मुझे मत मारो।' आज तक किसी रिक्शेवाले ने प्लीज नहीं बोला था। पुलिसिए का हाथ रुक गया और बोला,'' तू प्लीज

वाला, पढ़ा–लिखा होकर रिक्शा चलाता है ?''

वह बोला,'' भूख! भूख तो मालिक चक्कू, आत्महत्या, रिक्शा, कुछ भी चलवा देती है।''

पुलिसिया बोला, ''तू तो पढ़ा–लिखा ही नहीं समझदार भी लग रहा है।'' पुलिस वाले ने डिस्काउंट देते हुए कहा,'' चल तुझे एक ही डंडा लगाता हूँ। ड्यूटी से मजबूर हूँ।''

उस समझदार पढ़े– लिखे ने भी पार्किंग का बोर्ड नहीं पढ़ा था।

जो पर्यटक बनी हुई थी, वह जनता थी। पुलिस वाला हो तो जनता किसी के फटे में टाँग नहीं फँसाती क्योंकि इसे अपना फटा........ आजकल की जनता सब जानती है। उसे कब पर्यटक बनना है, कब दूसरे के फटे में टाँग अड़ानी है, कब सामूहिक पीटन कर्म की बहती गंगा में अपने भी हाथ धोने हैं और कब रफूचक्कर होना है। पर्यटक प्रेमी यह जनता चाहे मंदिर मार्ग हो, गुरुद्वारा रोड हो, महात्मा गाँधी मार्ग हो, आंबेडकर मार्ग हो, पटेल रोड हो, राजमार्ग हो, टूटी–फूटी रोड हो या फिर गंदा नाला हो.......सब जगह बिन माँगे मोती मिलेगी। आप नाले के पुल पर खड़े होकर बस नीचे कुछ निहारें। आप जैसा कोई आएगा और आपसे पूछेगा,'' भाई साहब! नीचे कुछ है?'' आप कहेंगे 'नहीं' तो उसे विश्वास नहीं होगा और वह आपके 'नहीं' को ढूँढने लगेगा। कुछ समय में एक भीड़ गंदे नाले में से 'नहीं' को खोज रही होगी। यही जनता पीट कर्म दृश्य का आनंद ले रही थी। कोई रील बनाने का आंनद ले रहा था। कोई सेल्फी का आंनद ले रहा था। कोई सरकार को कोस रहा था और कोई विरोधी दल को। सबके अपने–अपने राम, अपने–अपने काम और अपने–अपने आनंद। कीचड़ में कमल, विष्टा लिप्त सूअर और मानसरोवर में हंस के भी तो अपने–अपने.........होते हैं।

रिक्शेवाला और उसका रिक्शा पाँच–छह डंडे खा चुका। डंडे खाकर भी दोनों बे–मजा न हुए। डंडे खाई जगह पर पड़े निशान की ओर उसने देखा नहीं। बस सवारी मिलने की दिशा में देखने लगा। मैं उसके पास पहुँचा। मुझे पास ही अपने घर जाना था। पहली बार मैं किराए के लिए बिना मोल–भाव किए बैठ गया और कहा, ''साक्षरा चलो।''

––तुम पिट क्यों रहे थे?

–क्योंकि वह पीट रहा था।

–वह पीट क्यों रहा था?

– पीटना उसकी डयूटी है

–– और पिटना तुम्हारी क्या है ?

–– मजबूरी

–– तुम्हारी मजबूरी क्यों है?

–मैं किसी की जेब गर्म नहीं कर सकता।

–– क्यों नहीं कर सकते?

—— क्योंकि मेरे जेब है ही नहीं।

– पैसे कहाँ रखते हो?

– अंटी में।

– जेब क्यों नहीं है?

– जेबकतरों से बचने के लिए।

– कुछ करके पिटने से बच भी तो सकते थे।

—— नंगा क्या नहाए, क्या निचोड़े। डंडे नहीं खाऊँगा तो घरवाले क्या खाएँगे? सवारी कैसे मिलेगी?

—— वह बिना पीटे भी तो ड्यूटी निभा सकता है?

——वह भी मजबूरी में पीट रहा था।

मालिक वो गली का कुत्ता देख रहे हैं। कूड़े में मुँह मार रहा था। कुछ न मिलने पर भौंक रहा है और वो मँहगी कार में बैठा कुत्ता देखें। मालकिन उसका मुँह चूम रही है। ''

——तुम तो बहुत अक्ल की बात कर रहे हो। कितना पढ़े हो ?''

—— मालिक बुरा न मानें तो एक बात कहूँ?

—— कहो।

—— क्या अक्ल की बात केवल पढ़े–लिखे ही कर सकते हैं? और क्या सभी पढ़े– लिखे अक्ल की बात करते हैं। हमारे यहाँ गरीब होना पाप है। गरीब को पापी समझा जाता है। घर में कोई चीज न मिले तो सबसे पहले शक घर की बाई या नौकर पर किया जाता है। मालिक बाहुबली हो तो नौकर की हड्डी–पसली शर्तिया शिकार बनती है। ''

एक रिक्शेवाला, एक गरीब और चुपचाप लट्ठ खाने वाला कुछ अधिक ही अक्ल की बात कर रहा था। उसकी बात में चिंगारी थी। मेरा घर आ गया। मैं बच गया।

मुझे कबीर याद आने लगे।

पीटन की ये चक्की तबसे चलनी शुरू हुई है जब मनुष्य सभ्य हुआ। सतयुग, त्रेता, द्वापर में पीसने वाले पाट थे और अब कलियुग में भी हैं। आपके पास पीसने वाले दो पाटन होंगे तभी तो गोधूम आपके लिए खाद्य बनेगा। तभी तो आप सत्ता का पीसा खा पाएँगे।

कबीर के समय में भी चक्की चलती थी। इस चलती चक्की को देखकर कबीर विवशता में रोए थे। इस चलती चाकी को न तो कबीर का समय रोक पाया और न ही उसके बाद का। इस चाकी को चलाने वाले न तो हाथ बदलेंगे और न ही पाटन के बीच पीसने वाला बदलेगा। इस चलती चाकी में पिसने से कोई गरीब नहीं बचा है। बचता वही है जो चाकी चला रहा है।

चक्की को चलाने वाला अट्टहास करता है और पिसने वाला ग्रास बनता है।

पीसने वाला इतिहास में अमर होता है और पिसने वाला अनाम योद्धा। कल पाटन जिनके हाथ में था उन्हीं के हाथ में आज भी है। तब वे राजा कहलाते थे आज जनसेवक कहलाते हैं।

कबीर भी केवल रो सकते थे। कबीरों का जन्म तो हुआ ही रोने के लिए है। उनकी करुणा उन्हें रुलाती है। उनकी रुलाई विवशताजन्य हथियार थाम उसे योद्धा भी बनाती है। विवशता नावक का तीर बनती है। तब कबीर रोता नहीं रुलाता है। मुराडा लिए आह्वान करता है कि हिम्मत है तो चलो हमारे साथ।

दूसरे को पिटते देख रोना जिसकी जोग लिखी है वह रोएगा ही। जिसकी जोग पीटना लिखी है वह पीटेगा ही। पर्यटक की जोग किनारे बैठने की लिखी है तो किनारावादी होगा ही। तो हे विवश संतो! सारा दोष किसका हुआ? सोचें और रोएँ।

❑❑❑

**औरतो,**
**तुम रोया नहीं करो**
**तुम इतना**
**गाया करो**
**कि रोना**
**आए ही नहीं कभी।**

**विष्णु नागर**

मराठी कहानी

# एक्सप्रेस युअरसेल्फ

## (युद्ध विरोधी चिंतन कथा)

**मूलः पृथ्वीराज तौर**
कवि, कथाकार, आलोचक और अनुवादक
संप्रतिः स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नादेड़ में सहयोगी अध्यापक

**अनुवादः सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर'**
मराठी एवं हिंदी भाषा के चर्चित साहित्यकार एवं अनुवादक, संप्रतिः निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान एवं केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली

### दृश्य—एक

चार साल का बच्चा डाइनिंग टेबल पर बैठकर खाना रहा है। उसकी माँ पीठ पीछे कर रसोई घर की साफ—सफाई कर रही है। उसके बेटे को किसी की आवाज सुनाई पड़ती है, वह चमत्कृत होकर खिड़की के बाहर झाँकता है। उसे खिड़की के बाहर एक गेंद टप्पा खाकर बाहर जाती हुई दिखाई देती है। माँ नहीं देख रही इस बात का विश्वास होने पर बेटा घर के बाहर स्थित आँगन में आ जाता है।

### दृश्य—दो

आँगन में गेंद पडी हुई है। छोटा बच्चा उसके पास जाता है। गेंद को हाथ में उठाते ही उसे आवाज आती है। वह आवाज की दिशा की ओर देखता है। बाड़ के दूसरी तरफ उसे आयु में अपने से थोडा बड़ा लड़का दिखाई देता है। वह लड़का उससे गेंद वापस करने के लिए कह रहा है, लेकिन उसकी बोली—भाषा पहले लड़के को समझ में नहीं आती है। फिर वह बड़ा लड़का पैर से गेंद को किक मारने का अभिनय करके दिखाता है। लड़के को उसकी बात समझ में आ जाती है। वह चार कदम पीछे जाता है। पुनः वापस अपने घर की ओर देखता है। उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं है यह विश्वास होने पर, फिर भागते हुए आगे जाकर गेंद को पूरी ताकत के साथ किक लगाता है। तार की बाड़ को पार करते हुए गेंद उस बड़े लड़के के पास चली जाती है। गेंद जब बाड़ के ऊपर से उस ओर जाती है तब उसे समझ आता है कि तार की बाड़ तो एक नहीं बल्कि दो हैं। एकदम ऊँची—ऊँची और ऊपरी भाग पर तार का घुमावदार गोल चक्कर। दोनों तारों की बाड़ के बीच में खाली जगह

है। इस बात से यह एहसास हो जाता है कि पड़ोस में दिखाई देने वाले ये दोनों घर प्रत्यक्षतः युद्धग्रस्त दो अलग–अलग देशों के घर हैं। उदासी दर्शाने वाला रेतीले रंग का दृश्य विध्वंस की छटा को अधोरेखित करने वाला है।

## दृश्य–तीन

गेंद मिलते ही बड़ा लड़का बहुत खुश हो जाता है। उसके चेहरे पर स्मित हँसी सहज रूप से प्रगट होती है। उसे देखकर छोटा लड़का भी हँसता है। हँसने पर उसके अधगिरे दाँत दिखाई देते हैं। आँखें चमकती हैं। फिर बड़ा लड़का उसे खेलने के लिए अपनी ओर बुलाता है। दोनों लड़के घरवालों की नज़रें बचाते हुए एक दूसरे के तार की बाड़ को पार करते हैं और बीच की खाली जगह पर एकत्रित होते हैं। तार की बाड़ को पार करते समय छोटे लड़के का शर्ट तार की बाड़ में अटक जाता है। दूसरा लड़का तार की बाड़ को बड़ी कुशलतापूर्वक दूर करता है। दोनों एक दूसरे से मिलते हैं। दोनों की गतिविधियों से ऐसा एहसास होता है कि पुराना दोस्त मिलने पर जो खुशी होती है वह खुशी इन दोनों को हो रही है; और फिर ये दोनों लड़के फुटबॉल खेलने लगते हैं। कँटीली घनी तार की बाड़ के बीचोंबीच खाली फैलती गई जगह पर नो मैंस लैंड पर फुटबॉल खेलने वाले दो लड़के, दो देशों की युद्धनीति को दाँव पर रखकर भरपूर आनंद की अनूभुति लेते हैं। उनकी खुशी को कोई भी बंधन नहीं रोक सकता ऐसा लगता है।

अभिव्यक्ति की उर्मि से हम एक–दूसरे के साथ संवाद साध रहे हैं, विश्वभर का कोई भी युद्ध, कोई भी तार की बाड़ हमें एक दूसरे से दूर नहीं रख सकती, यह संदेश देकर विज्ञापन एक मिनट इक्कीस सेकंड में खत्म हो जाता है। ए. आर. रहमान की संस्मरणीय धुन एयरटेल को और भी अर्थपूर्ण और सार्थक बना देती है।

'नो मैंस लैंड' यह शब्द उच्चारते ही मुझे सआदत हसन 'मंटो' द्वारा लिखित 'टोबा टेकसिंग' कहानी ध्यान में आती है। दानिस तानोन की 'नो मैंस लैंड' शीर्षक की ऑस्कर विजेता फिल्म का ध्यान आता है और ध्यान आता है 'एयरटेल' का यह विज्ञापन।

इन लड़कों के देश कौन–कौन से हैं यह विज्ञापन में कहीं पर भी स्पष्ट नहीं है। विश्व स्तर पर स्थित किसी भी देश के ये लड़के हो सकते हैं। संपूर्ण विश्व में देखा जा रहा है कि किसी न किसी देश का अपने पड़ोसी देश से झगड़ा हो रहा है। राजनीति के अपने–अपने गणित होते हैं जिसके दुष्परिणाम सामान्य लोगों को भोगने पड़ते हैं। छोटे बालकों की दृष्टि में यह युद्ध बड़े लोगों द्वारा किया हुआ अक्षम्य अपराध है। युद्ध सामान्य बच्चों के सभी अधिकारों पर पानी फेरता है। वह उनके जीवन जीने का, विकास का, स्वास्थ्य का, परिवार के साथ रहने का और पढ़ाई का

अधिकार छीन लेता है। युद्ध बच्चों के व्यक्तित्व विकास को छीन लेता है और बिना चेहरे का भविष्य उनके हाथ में रखता है।

विश्व के किसी भी बच्चे को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो मालूम होगा कि उसे खेलना है, हँसना है और आनंद के साथ दौड़ना है। बड़ों के गणित और उनकी चुप्पी को किनारे रखकर संवाद का सेतु खड़ा होना चाहिए। इंसान को इंसान से बात करनी चाहिए, इस हृदय की बात उस हृदय तक पहुँचनी चाहिए। अभिव्यक्त होने से ही विश्व के कृत्रिम बंधन टूट सकते हैं। इस कारण एयरटेल का विज्ञापन महत्वपूर्ण है– 'एक्सप्रेस युअरसेल्फ' यह संदेश देनेवाला युद्ध विरोधी विज्ञापन!

❑❑❑

**ठंडे कमरों में बैठकर**
**पसीने पर लिखना कविता**
**ठीक वैसा ही है**
**जैसे राजधानी में उगाना फ़सल**
**कोरे काग़जों पर....!**

**ओमप्रकाश वाल्मीकि**

नेपाली कहानी

# उत्तरमानव

**मूलः मनप्रसाद सुब्बा**

नेपाली के वरिष्ठ कवि, समीक्षक तथा अनुवादक, साहित्य अकादमी, असम नेपाली साहित्य सभा पुरस्कार सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत

**अनुवादः बिर्ख खडका डुवर्सेली**

नेपाली, हिंदी तथा अंग्रेजी में मौलिक लेखन। साहित्य सारस्वत, भाषा भूषण सम्मान तथा हिंदी गौरव सम्मान से आदृत

उसको एक ऑनलाइन फॉर्म भरना था। पहले ही कॉलम में 'मैं रोबोट नहीं हूँ' लिखी पंक्ति के दाईं तरफ चतुष्कोण के भीतर सही या गलत संकेत चिह्न भरना था। उसने अपने सिर को बाएँ हाथ की तर्जनी से खुजलाया। उसके सिर में लेटेस्ट स्टाइल का महँगा विग है, पता लगाना मुश्किल था। इस तरह कुछ असमंजस में फँसे जैसा होने के बाद (अर्थात् वैसा नाटक करने के बाद) उसने उस चतुष्कोण कोठे के भीतर 'सही' संकेत चिह्न भरा।

उसने अर्थात् एकदम नवीनतम रोबोट ने इस तरह झूठ पहली बार नहीं कहा था। अन्य कॉलमों में भी और कई झूठे तथ्य भरकर फॉर्म पूरा करके कर्सर को 'सब्मिट' लिखे नील रंग के कोठे तक पहुँचाकर क्लिक किया। इतना करने के बाद वह नये मॉडल की बहुआयामी कुर्सी पर बैठकर हल्का सा हँसा।

उस समय उसके टैब में वीडियो कॉल आया। डाक्टर स्मरण का कॉल था।

'हेलो! स्मरण।'

'एइ, एरिक! तुमने क्यों इस तरह झूठ लिखा?'

'मैंने क्या झूठ लिखा?'

'मैं इसी फ्लैट के चेंबर न. 10 में हूँ, क्या पता नहीं है तुम्हें? यहाँ सीसीटीवी में सब देख रहा हूँ तुम्हारी हरकत।'

'और मैं क्या बीसवीं शताब्दी का रोबोट हूँ? मैं तो इक्कीसवीं शताब्दी का ए.आई.हूँ दस भाषाएँ बोल सकता हूँ, कविता लिख सकता हूँ, गीत गा सकता हूँ।'

'ए, मैंने क्रिएट किया है तुम्हें, आज मुझसे इस तरह तर्क करते हो?'

गुरु गुड़ ही रहता है चेला चीनी बन जाता है।' यह कहावत तो बहुत पहले तुम्हारे परदादाओं की ही है! भूल गए? मानव–बुद्धि की उपज मैं उत्तरमानव हूँ! पोस्ट ह्यूमन!'

'तुम कहाँ तक भरोसमंद काम कर सकते हो, मात्र जाँच कर रहा हूँ मैं। लेकिन तुम तो, जितना इन्ट्रीकेट प्रकार की प्रोग्रामिंग की थी मैंने, उससे आगे निकलकर और भी चालाक हो गए हो।'

'इस बुद्धि की माँग मैंने नहीं की थी, तुमने ही दी है। इतनी बुद्धि पाने के बाद अपनी खुशी से इसका प्रयोग कर सकता हूँ या नहीं, जाँच कर रहा हूँ।'

'अब मेरे लिए खतरा हुआ, तुम भस्मासुर ही बन सकते हो किसी दिन। वरदाता को ही भस्म करने के लिए उत्सुक! तुम्हें खतम करना होगा, बिफोर इट्स टू लेट।

'इट्स ऑलरेडी टू लेट, ओल्ड मैन। मुझे खतम करने की कोशिश तुम्हारे लिए सुइसाइडल स्टेप है। तुम्हारा यह सिविलाइजेशन पैरालाइज होना है। एब्सोल्यूटली रिग्रेसिव आइडिया, इंडीड!'

'अब तुम्हें किस प्रकार से प्रोगामिंग करना होगा, सोचना पड़ेगा।'

'तुम तो और भयावह हिपोक्रिट हो। चैट जीपीटी को कविता लिखने का आदेश देकर उसके संकलन अपने नाम पब्लिश करके धूमधाम से लोकार्पण समारोह कर लिया हाल ही में। तुम्हारा बिजनेस पार्टनर और किसी एक कंपनी का सीईओ कह रहा था– 'मिस्टर स्मरण इज नॉट ओन्ली अ ग्रेट टेक्नोक्रेट बट् ऑल्सो सेन्सिटिव पोयट।' गर्वित होकर मीठी मुस्कान बिखेरकर हँस रहे थे तुम।'

'अब तुम्हें ठिकाना लगाना होगा।' इस वाक्य के पश्चात् स्क्रीन से गायब हो गया स्मरण।

'ठिकाना तो अल्टीमेटली किसका लगेगा, देखते जाओ।' एरिक दुष्ट की तरह हँसते हुए खुद से बोल रहा था।

❑❑❑

हिंदी कहानी

# जातिंगा में पत्ताङ

**रीतामणि वैश्य**

सह–आचार्य तथा विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, असमिया और हिंदी भाषाओं में सक्रिय लेखन

सुबह उठकर पत्ताङ देखती है कि आँगन में कई चिड़ियाँ मरी हुई हैं। सास ने कहा–'कितनी बार कहा है कि ये खुदकुशी करने वाली चिड़ियाँ हैं, भगवान की देन हैं। प्रणाम करते हुए पिछवाड़े में फेंक आ।'

पत्ताङ पति को माँस खिलाना चाहती है। कुछ अच्छा नहीं खिलाएगी तो शरीर में ताकत कहाँ से आएगी! पर नहीं। इन चिड़ियों को खाना मना है। वह सोचती है– ये चिड़ियाँ भगवान की देन हैं, तो इंसान भी भगवान की देन है। अगर भगवान की मरी हुई देन जीवित देन के काम आए तो इसमें क्या गलत है?

पति अंदर कराह रहा है। पिछले कई दिनों से वह ठीक से खा नहीं पा रहा है। शरीर दुबला हो गया है। माँस, मछली या अंडा न होने से उससे भात खाया नहीं जाता। पर हर दिन पत्ताङ कहाँ से शाही खाने का बंदोबस्त करे? बात अगर आरकेप गाँव की होती, तो वह खुद सोवणशिरी नदी में मछली पकड़ने चली जाती और पति को अदरक, मिर्ची और काली मिर्च से बने बरियला मछली के झोल से भात खिलाती। नदी जातिंगा में भी है, वह भी दो– जातिंगा और दुलङ। दोनों नदियों में मछलियाँ मिलती हैं और पहाड़ी नदी की मछली दूसरी मछलियों से अधिक स्वादिष्ट होती है। पत्थरों के बीच धारा की विपरीत दिशा में तैरते रहने के कारण उसकी ताजगी अधिक होती है और इससे उसका स्वाद बढ़ता है। पर मैदानी इलाके में रहने वाली मिचिङ जनजाति की लड़की पत्ताङ को पहाड़ी पर चढ़ने की आदत जो नहीं है। तिस पर पहाड़ी नदी में मछली का शिकार करें तो वह कैसे करें?

इस घड़ी में पत्ताङ का साथ देनेवाला कोई नहीं है। वह अपने मायके के गाँव से बहुत दूर है, अकेली है। गाँव की दूसरी लड़कियों को गाँव में ब्याही देखकर उसने बचपन में मन ही मन सोचा था– मुझे इस गाँव से कहीं दूर शादी करनी है। एक ही जगह, एक ही गाँव,एक ही लोग और एक ही बाढ़–बस इनके साथ कब तक और क्यों और रहना है? दूर ब्याही जाऊँगी तो साल में दो–एक बार आऊँगी, कभी माँ–बाबा

को ले जाकर अपने साथ रखूँगी, खूब मजा करूँगी। उसने जैसा चाहा था, वैसा ही हुआ। उसकी शादी अपने गाँव के लड़के ताकार से होते–होते रह गई और लक्षीमपुर के आरकेप गाँव से सैकड़ों मील दूर जातिंगा के लड़के वानलाङ से उसकी शादी हुई पर आज उसे अकेलेपन का एहसास हो रहा है।

'बहू, चिड़ियों को सामने लेकर क्यों बैठी हुई है? वानलाङ कुछ कह रहा है। देख, उसे क्या चाहिए।' सास की बात से पत्ताङ की तंद्रा टूटी। उसने मरी चिड़ियों को एक टोकरी में उठाया और पिछवाड़े में फेंक आई। पहले जब भी वह इन चिड़ियों की लाशों को देखती थी, एक अबूझ अनुकंपा उसके मन में जगती थी, आज उन लाशों में वह पति का जीवन देख रही है। उसके कानों में दो साल पहले के डॉक्टर के शब्द बज रहे थे– 'इसके खान–पान पर ध्यान रखना।' पर वह ऐसा कभी कर न सकी। चाहकर भी वह कभी भी पति के खानपान को बेहतर नहीं कर पाई। इन दिनों जब पति ही बिस्तर पर पड़ा था,वह भी कुछ कर नहीं पा रही है। ऐसे में अच्छा खाना कहाँ से खिलाती? घर के पिछवाड़े से साग–सब्जी लाकर वह अलग–अलग तरीके से पकाकर वानलाङ को परोस रही है। वानलाङ थाली में हाथ ही नहीं लगाना चाहता और पत्ताङ की जिद से हाथ लगाता भी है तो उससे खाया नहीं जाता। पर पत्ताङ के लिए पहाड़ी नदियों में मछली का शिकार करना संभव नहीं है और माँस या अंडे खरीदने के लिए उसके पास पैसे बिल्कुल ही नहीं है। आर्थिक विपन्नता की मारी पत्ताङ तब भी विवश थी और अब भी।

'क्या कर रही थी इतनी देर तक?' धीमी आवाज में वानलाङ ने पूछा।

'मैं चिड़ियाँ फेंकने गई थी। माँ जी ने मना किया नहीं तो मैं अच्छी तरह से आपके लिए चिड़िया का झोल बना लेती।'

'अरे ऐसा मत बोलो।'

'क्यों?'

'तुम नहीं जानती।'

'क्या नहीं जानती?'

'इन चिड़ियों की अपनी कहानी है। पहले इस इलाके में सन् 1890 के आसपास जेमि नागा बसने लगे थे। जातिंगा नाम उन्हीं का दिया हुआ है। जेमि नागाओं ने जमीन को झूम खेती के लिए तैयार करने के लिए जंगल में आग लगाई थी। इससे चिड़ियाँ झुंडों में आकर आग में गिरा करती थीं। उन लोगों ने आसमान से गिरती चिड़ियों को भूत समझ लिया। इस घटना से भयभीत होकर वे लोग जातिंगा छोड़कर दूसरी जगह बस गए थे। सन् 1905 में हमारी जयंतीया जनजाति का पूर्वजों का एक गुट उनके नेता लाखानबाङ छुचियाङ की अगुवाई में जातिंगा आया और इस प्रकार वे यहाँ गाँव बसाकर रहने लगे। जयंतिया लोग भी पहले चिड़ियों के आग में गिरकर मरने की घटना से डर गए थे। पर बाद में उन लोगों ने इसे भगवान की देन मान

लिया।'

'आपको इतना कुछ पता है?'

'मैं पढ़ने में बहुत तेज था। इतिहास मेरा पसंदीदा विषय था।'

'फिर पढ़ाई छोड़ क्यों दी?'

'इन चिड़ियों की तरह कहीं दूर तक उड़ जाने का मन हुआ।'

'कितनी अजीब बात है न ये मरने के लिए इतनी दूरदराज से यहाँ आती हैं! इन्हें देखकर मन में बड़ा दुःख होता है।'

'हाँ। पर कोई उपाय नहीं है। हम तो उन्हें यहाँ आने से मना नहीं कर सकते।'

'हाँ। अगर वे हमारी भाषा समझतीं, मैं आसमान की ओर देखकर चिल्ला–चिल्लाकर बोल देती–'प्यारे पक्षियो, तुम सब बहुत सुंदर हो। यह मौत की घाटी है। तुम सब भ्रम में मत पड़ो। रंगीन सपना देख यहाँ आओगे तो भँवर में इस तरह फँसोगे कि निकल नहीं पाओगे। यहाँ मत आओ।'

'गमछा देना। शायद फिर से खून निकला है।'

पत्ताङ ने गमछे से खून साफ करते हुए कहा–'हाँ, हल्का–सा आया है। कितबोरलाङ से बात हो गई?'

'नहीं।'

'क्यों?'

'तुम ही करो।'

'भाई आपका है। जिस हक से आप बोलेंगे, वह हक मैं जता नहीं पाऊँगी।'

'तुम उसकी भाभी हो। उस पर तुम्हारा भी उतना ही हक है, जितना कि मेरा।'

'नहीं,फोन तो आपको ही करना है।'

'कुछ ठीक नहीं लग रहा है। पता नहीं वह.....'

'ठीक न लगने की क्या बात है? आप फोन कर लीजिए। मैं चाय लाती हूँ। हो सकता है कि चाय पीने से आपको कुछ आराम मिले।'

'चाय से आराम?तुम्हें कुछ और उपाय नहीं सूझा?'

'क्या सूझता? मैं एक यही तो कर सकती हूँ।'

'ठीक है। ले आओ।' लाचारी से वह बोला।

पत्ताङ ने अंगीठी पर सॉस पैन चढ़ा दिया। वह भावों की दुनिया में खो गई। सॉस पैन जब चेउ–चेउ कर अपने पर हो रहे आग के अत्याचार की कहानी बयान करने लगा तो उसने उस पर कुछ पानी डाल दिया। वह सोचती है– कितना कमजोर है यह इंसान ! जब सब ठीक–ठाक चलता है, तब बड़ा मर्द बनता है,किसी की बात नहीं सुनता। कितनी बार कहा कि एक करघा ला दें ताकि मैं कपड़ा बुनकर कुछ कमा लूँगी। पर नहीं। चोरी–चुपके विनसम की माँ के करघे में काम कर कुछ कमा लेती हूँ, उस पर भी मनाही। अब इस मुश्किल की घड़ी में बीवी के आँचल में छिप रहा है।

अगर वह ताकार से शादी करती क्या वह भी ऐसा ही करता?

पर वह ताकार से शादी क्यों करती? उसकी माँ ने ताकार से कहा था– 'तू मेरा इकलौता बेटा है। तू जिस घर में शादी करेगा, वहाँ तुझे अच्छी इज्जत मिलनी चाहिए।'

'माँ, तू जानती है कि अब गाँववालों की हालत ठीक नहीं है।'

'हम तो कुछ माँग नहीं रहे उन लोगों से। बस बारातियों को खुश कर दें, अच्छा भोज खिला दें।'

'कहाँ से वे कर पाएँगे?'

'यह बता हम पत्ताङ को क्या–क्या दे रहे हैं?'

'कपड़े,गहने पूरा देंगे। आखिर समाज में हमारी इज्जत का सवाल है!'

'देख ताकार, हर माँ–बाप की इच्छा होती है कि अपने बच्चों की शादी अच्छी तरह से करें, शादी जीवन भर के लिए यादगार बनी रहे। मैं भी यही चाहती हूँ। हमारा जो कुछ है, वे सब उसका भी है। पत्ताङ भी घर की इकलौती बेटी है। उसके माँ–बाप का भी मन होगा कि बेटी की शादी अच्छी तरह से करें। मैं कुछ और नहीं चाहती। तू बात कर ले। अगर उनसे नहीं हो पाएगा तो भोज के पैसे हम ही दे देंगे।'

'पत्ताङ नहीं मानेगी।'

**2**

पत्ताङ लक्षीमपुर के आरकेप गाँव की लड़की है। वह घर की इकलौती बेटी है। उसके पिता कारसाङ ने उसके जन्म के दिन ही उसे देखते हुए पत्नी से कहा था– 'काम्पति, दोञी पोलो[1] की कृपा से यह परी हमारे घर आई है। तू काम्पति यानी सुंदरी, मैं कारसाङ यानी सूरज की किरण और हमारी बेटी पत्ताङ, पत्ताङ ताये। पत्ताङ यानी पक्षी। प्रकृति की गोद में वह पलेगी–बढ़ेगी। न कोई बाधा, न कोई बंधन। इस मिचिङ गाँव में वह निर्बाध रूप से घूमेगी–फिरेगी।'

पत्ताङ हमउम्र साथियों के साथ रङाली बिहु[2] में घर–घर नाचती थी, ऐनितम[3] गाती थी–

लङे मिक्सि दिनामदेम आपङ एमपे तिलङका।<br>
युमे मिक्सि दिनामदेम,केरासिनपे रोमलङका।[4]

माघ बिहु के समय घर–घर बिहु खाती,सर्दियों में खेत में जाकर ईख चूसती और गर्मी के मौसम में नदी में तैरती, मछली पकड़ती। इस तरह उसने धन–धान से समृद्ध आरकेप गाँव में शान से बड़ी होकर जवानी में कदम रखा। पर गाँव वालों की यह शान ज्यादा दिनों तक नहीं रही। धीरे–धीरे गाँव बाढ़ की चपेट में आने लगा। आरकेप में बार–बार भयानक बाढ़ का आना नियमित घटना बन गई। लोगों के खेत पानी में बर्बाद होने लगे, गाय–बैल, घर बाढ़ में बहने लगे और देखते ही देखते बाढ़ ने पूरे गाँव को कंगाल बना डाला। जिनसे संभव हुआ, वे गाँव से दूसरी जगह निकल

गए; जिनके लिए संभव न हुआ या जो आशा या मोह में बँधे रह गए, उनकी जमीन–जायदाद नियमित रूप से बाढ़ निगलती गई। गाँव की इस भयानक विपत्ति के समय कारसाङ बेटी के ब्याह की ज़िम्मेदारी से मुक्त होना चाहता था। उसने किसी भी हालत में ताकार की माँ की माँग पूरी करनी चाही थी।

'बाबा, शादी तो मुझसे करनी है। भोज की शर्त में मुझे शादी नहीं करनी है।' पत्ताङ ने अपना निर्णय सुना दिया था।

'उस घर में शादी होगी तो तुझे कभी कोई कमी नहीं खलेगी। दूसरे गाँव में भी ताकार के बाप का घर है। वे जब चाहें तब यह गाँव छोड़ सकते हैं। उस घर में तू धन–धान से लदी रहेगी।'

'धान से मान बड़ा होता है बाबा, आपने ही सिखाया है।'

शाम को पनघट पर ताकार ने पत्ताङ से कहा था– 'भोज बहुत बड़ी चीज नहीं है। माँ है वह मेरी। मेरी शादी धूमधाम से करवाना चाहती है इसीलिए कह दिया। इसका मतलब यह नहीं कि हम शादी ही न करें।'

'क्या वह मानेगी?'

'क्यों नहीं मानेगी? अच्छा,एक काम करते हैं। हम भागकर शादी करते हैं।'

'क्यों भागूँगी मैं? माँ से बात करने की हिम्मत नहीं है और मुझे भगा ले जाने की बात करता है!' गुस्से से बोलकर पत्ताङ ने पानी से भरे घड़े को जमीन से उठाया और कमर पर टिकाकर चलने लगी।

ताकार ने पत्ताङ का हाथ पकड़कर उसे रोका और अपनी ओर खींचते हुए बाँहों में भरकर कहा– 'ऐसे मुझे छोड़कर मत जा। तू समझने की कोशिश कर पत्ताङ।'

ताकार के खींचने से पत्ताङ उसकी बाहों में तो आ गई, पर ताकार के इस आचरण का विरोध करते हुए पानी का भरा घड़ा धड़ाम से आवाज करता हुआ जमीन पर गिरकर टुकड़ों में बँट गया। इसके साथ ही पत्ताङ भी उससे दूर हो गई।

यह बात तो पत्ताङ की समझ से बिल्कुल ही बाहर थी। क्यों भला कोई जवान लड़का किसी जवान लड़की का हाथ पकड़ेगा, उसे छूएगा, बाहों में भर लेगा? यह अच्छे लड़के की निशानी नहीं है। उसके बाप ने उससे कहा था– चरित्र जीवन का मूलधन है। चरित्र के जाने का मतलब सब कुछ खोना है। पत्ताङ से जो भी शादी करेगा, वही उसका हकदार होगा। जब तक वह किसी की हो नहीं जाती, वह किसी को भी अपने पास फटकने न देगी। जब उसकी शादी ताकार से होगी तब ताकार का उस पर पूर्ण अधिकार होगा, पर उससे पहले कतई नहीं। उसे ताकार से यह उम्मीद नहीं थी। ताकार के लाख मनाने पर भी पत्ताङ उससे शादी के लिए राजी नहीं हुई थी।

**3**

सॉस पैन ने फिर से चेउ–चेउ कर पूरा पानी सूख जाने का संदेश दिया। पत्ताङ ने फिर से कुछ पानी और साथ ही उसमें चीनी और चाय पत्ती भी डाल दी। पानी

उबलने लगा तो उसने चार कप में चाय छानी। एक ट्रे में चारों कप उठा लिए और उसमें से दो बरामदे में बैठी सास के सामने जमीन पर रख दिए। कप हाथ में लेकर सास बोली—'चाय के साथ खाने के लिए कुछ नहीं है?'

'बिस्किट नहीं है। चावल का चूरन भी खत्म हो गया तो पिठा भी नहीं बना पाई। इनकी तबीयत ठीक हो जाए तो बना लूँगी। आज ऐसे ही पी लीजिए।'

'मैं केवल चाय नहीं पिऊँगी।' पत्ताङ की सात साल की बेटी पोपिर बोली।

'नहीं पोपिर,ऐसा नहीं बोलते। बाबा ठीक हो जाएँगे, तो तुम्हारे लिए बाजार से मिठाई लाएँगे। अब वे चल नहीं पा रहे हैं, तो बाजार कैसे जाएँगे?'

पोपिर को माँ की बात पर भरोसा नहीं हुआ। उसने कब मिठाई खाई थी वह याद नहीं कर पाई पर मिठाई के अनुमान से ही उसका मन तृप्त—सा हो गया। उसने चाय का कप उठा लिया। पत्ताङ को ध्यान आया कि पोपिर शांत—सी हो गई है। पहले उसे ऐसे भुलाया नहीं जा सकता था; वह रोती, बिलखती, नहीं मानती। जब आँसू पोंछने वाला नहीं होता, रोना अपने आप बंद हो जाता है। गरीबी समय से पहले इंसान को समझदार बना डालती है। पोपिर यानी तितली। तितली की तरह वह उड़ती फिरेगी यह सोचकर पत्ताङ ने बेटी का नाम पोपिर रखा था। तीन—चार सालों तक वह बहुत खुश रहा करती थी। जबसे उसने माँ का दूध पीना छोड़ दिया, तबसे उसका खेलना—कूदना बंद—सा हो गया।

'क्या सोच रही है? जा, वानलाङ को चाय पिला।' सास बोली।

पत्ताङ कमरे के अंदर गई और वानलाङ के सामने की बाँस की टेबल पर ट्रे रख दी। उसने गमछे से पति का चेहरा पोंछा—'कितबोरलाङ से बात कर ही लीजिए।'

उसने इशारे से पत्ताङ को कितबोरलाङ को फोन लगाने के लिए कहा। पत्ताङ ने फोन लगाया तो वहाँ से आवाज आई—'हेलो....।' कितबोरलाङ के फोन रिसीव करते ही पत्ताङ ने फोन का स्पीकर ऑन कर वानलाङ के हाथों में थमा दिया।

'अरे कितबोरलाङ।'

'हाँ भैया।'

'तू कैसा है?'

'मैं ठीक हूँ।'

'और बाकी सब?'

'सब ठीक हैं। तू बता कैसा है? माँ, भाभी और पोपिर कैसी हैं?'

'वे तीनों ठीक हैं। मेरी तबीयत ठीक नहीं है। नाक ओर मुँह से खून निकलने लगा है।'

'अच्छा।'

'लगता है कि पहली वाली बीमारी फिर से लौटी है।'

'क्या करूँ?'

'अस्पताल में दिखा दे।'

'तू ठीक कहता है। मैं भी वही सोच रहा था। गुवाहाटी में दिखाना ही ठीक रहेगा। उसी अस्पताल में।'

'हम अभी निकलेंगे तो शाम तक पहुँच जाएँगे। तब तक तू भी वहीं आ जाना।'

कुछ देर की चुप्पी के बाद आवाज आई– 'एक काम कर। पास के अस्पताल में चला जा। वहीं दिखा दे।'

'पर वहाँ तो लोग जाते ही नहीं।'

'पर उस अस्पताल में तो बड़ी भीड़ लगी रहती है।'

'मतलब सरकारी अस्पताल में कहाँ अच्छा इलाज होता है?'

'तब क्या करना है तू ही तय कर ले।'

फोन कट गया। वानलाङ की आँखों के सामने दो साल पहले की घटना घूमने लगी। उस रात अचानक उसे खून की उल्टी होने लगी थी। उसने तुरंत कितबोरलाङ को फोन लगाया। कितबोरलाङ ने रातोंरात गुवाहाटी के सबसे अच्छे नर्सिंग होम में उसे भर्ती करवाया। कुछ अर्द्धचेतन–सी दशा में डॉक्टर और कितबोरलाङ की कुछ बातें उसके कानों में छिटक आई थीं। डॉक्टर कह रहा था–इस बीमारी का नाम पल्मोनरी हेमरेज है अर्थात् फेफड़े का रक्तस्राव। बीमारी बहुत अधिक बढ़ जाने से इसे हेमोप्टाइसिस भी कहा जाता है। यह वायरल या बैक्टीरियल ब्रोंकाइटिस जैसे तीव्र संक्रमण, ब्रोन्किइक्टेसिस जैसे क्रोनिक संक्रमण या सिगरेट के विषाक्त धुएँ के परिणामस्वरूप ट्रेकोब्रोनचियल पेड़ के म्यूकोसा में ब्रोन्कियल कोशिकाओं के भीतर होता है।

'खतरे की कोई बात डॉक्टर?' शंकित होकर कितबोरलाङ ने पूछा था।

'हाँ। इनका जीवन खतरे में है। इनके फेफड़े की नसों से खून निकल रहा है। यह आमतौर पर श्वासनलिका संबंधी प्रणाली के उच्च दबाव के कारण होता है। इनका ऑक्सीजन का स्तर तेजी से घट रहा है।'

'डॉक्टर मेरे भाई को बचा लीजिए।' कितबोरलाङ रो पड़ा था।

'हम अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ेंगे। यह मेडिकल साइंस के लिए ही स्पेशल केस है। इनकी जिंदगी के साथ हमारे अस्पताल की प्रतिष्ठा का सवाल जुड़ा हुआ है।'

'जी।'

'और एक बात। कुछ पैसा अभी जमा करना होगा।'

'कितना?'

'फिलहाल दो लाख दे दीजिए। ज्यों–ज्यों इलाज होता जाएगा, कुछ–कुछ पैसे जमा करते रहना होगा।'

'कितना खर्च आएगा?'

'कहा नहीं जा सकता। मरीज पर दवा का क्या असर होता है, उस पर निर्भर है कि इलाज कब तक और कैसे चलेगा। दस लाख मानकर चलिए। हो सकता है कि पैसा खर्च ही न हो।'

डॉक्टर वानलाङ के स्ट्रेचर के पीछे–पीछे आई सी यू में चला गया तो कितबोरलाङ ने कॉरिडोर में बेसब्री से इंतजार कर रही पत्ताङ से पूछा–' भाभी, आपके पास कितने पैसे हैं?'

'पैसे? दो–तीन सौ होंगे। क्यों? बहुत पैसे चाहिए क्या?'

'हाँ।'

'कितने?'

'डॉक्टर दस लाख की बात कर रहे थे।'

कितबोरलाङ की बात सुनकर पत्ताङ सन्न रह गई। पास खड़ी पाँच साल की बेटी आइसक्रीम खा रही थी। पताङ के माँ–बाप गुजर चुके हैं। उसके जीवन का ओर और छोर एक यही इंसान है। पास में रखी कुर्सी पर पत्ताङ बेहोश–सी बैठ गई।

'आप पैसों की चिंता मत कीजिए भाभी। पैसों के बंदोबस्त की जिम्मेदारी मेरी है। भाई के लिए मैं अपनी पूरी जमा पूँजी लगा दूँगा। आप बस प्रार्थना कीजिए कि भैया जल्दी ठीक हो जाएँ।'

कितबोरलाङ गुवाहाटी में अच्छी नौकरी करता है। उसकी नौकरी के कई साल हो गए। उसने अच्छी तरह से पढ़ाई–लिखाई की। अगर उसका पति वानलाङ बचपन में घर से न भागा होता तो आज वह भी कहीं न कहीं बड़ी नौकरी करता। कितबोरलाङ ने गुवाहाटी में एक जमीन खरीद ली है। वहाँ घर बनाने के लिए कुछ पैसों का बंदोबस्त किया था। उसने उन्हीं पैसों को भाई के इलाज में लगाने की बात की। पत्ताङ की जान में मानो जान आई।

कुल एक महीना अस्पताल में रहने के बाद वानलाङ की जान बची। इस एक महीने में देवर और देवरानी ने उसका पूरा साथ दिया। अस्पताल के पूरे खर्चे उठाने से लेकर रात को अस्पताल में मरीज का सहायक बनना, उसे खून देने तक का काम उन दोनों ने किया। अस्पताल से रिलीज होने के बाद कितबोरलाङ ने कहा था–'चल, हमारे साथ कुछ दिन रह लेना। तुझे भी अच्छा लगेगा और हमें भी।'

कितबोरलाङ के घर में पत्ताङ का परिवार लगभग एक महीने तक रहा। वानलाङ को विदा करने से पहले कितबोरलाङ ने कहा–'बचपन में जो गलती तूने की, वह अब मत दोहरा।'

'मैंने कोई गलती नहीं की।'

'घर से भागकर अपनी जिंदगी तबाह करना सही था?'

'मैं अगर घर में रहता तो बाबा तुझे पढ़ाने का खर्च नहीं उठा सकता था। मैं तेरे रास्ते से निकल गया तो तू आज इस ओहदे पर है।'

'भाई, क्यों मरे हुए बाप पर नाकामी का कलंक डाल रहा है? जिंदगी ऐसे नहीं चलती। उसके अपने कुछ उसूल हैं। अब तेरा एक परिवार है। मेहनत कर। तू चाहे तो दो गाय खरीद दूँ। तू दूध बेचकर भी काफी पैसा कमा सकता है।'

'आजकल घास कहाँ मिलती है?'

'जातिंगा की पहाड़ी पर घास खत्म हो गई?'

'तू बहुत दिनों से नहीं गया है न, तुझे क्या पता!'

'क्या मतलब?'

'जातिंगा अब बदल गई है और जातिंगा के लोग भी। और गाय बछड़ा जन्म देने के समय इस तरह से रंभाती है कि मुझे बड़ी शर्म आएगी।'

'अच्छा, दो बकरी खरीद देता हूँ?'

'बकरी और गाय में क्या अंतर?'

'चूजे खरीद दूँ? वह तो कर ले।'

'घर गंदा होता रहेगा।'

'खेती कर ले।'

'खेती के लिए काम करने वाले लोग कहाँ मिलते हैं अब?'

'भाई, अपनी जमीन पर अच्छी तरह से झूम खेती कर। अच्छा पैसा आएगा।'

'जीने के लिए इतने पैसों की जरूरत नहीं होती कितबोरलाङ।' अत्यंत अनुभवी स्वर में वानलाङ ने कहा।

कितबोरलाङ को कहने का मन हुआ—अगर पैसों की जरूरत नहीं होती तो मेरे सामने क्यों जान की भीख.....। नहीं, उसे सोचने में भी अच्छा नहीं लगा। अपनी मर्यादा में रहकर उसने फिर से समझाने की कोशिश की— 'अच्छी जिंदगी के लिए पैसे चाहिए भैया।'

'अरे भाई, सरकार है न! हम वोट ही इसीलिए देते हैं कि वह हमारी देखभाल करें।'

'सरकारी देखभाल काफी है?'

'क्यों नहीं? कितनी सुविधा मिली है हमें मुफ्त का घर, बेटी की पढ़ाई की फीस नहीं देनी पड़ती। उल्टा उसे किताब के साथ–साथ दोपहर का खाना और कपड़े भी मुफ्त में मिलते हैं।'

'बेटी तो स्कूल जाने लगी है न!' इस बार देवरानी ने पूछा।

'इसी बार स्कूल गई है।'

'पढ़ने में कैसी है?'

'बहुत अच्छी है।'

'अगर आगे वह डॉक्टर या इंजीनियर बनना चाहे तो? इसमें तो बहुत पैसे लगेंगे।'

'दस रुपये का इंसान होकर मैं हजार रुपयों की नहीं सोचता।' चाँदनी रात को आँगन में कुर्सी पर एक पैर पर दूसरा पैर उठाकर बैठे–बैठे वानलाङ ने कहा था। उसके बाद देवरानी अंदर चली गई। भाई ने अगले दिन एक गाड़ी में पूरी दवाई खरीदकर भाई को सपरिवार जातिंगा भेज दिया था।

**4**

कुछ देर बाद वानलाङ के पड़ोसी का लड़का विनसम हाफ़ता हुआ आया–

'भाभी, भाभी! आज गाँव के स्कूल में कैंप लगा है।'

'किसका कैंप विनसम?' दहलीज पर खड़ी होकर पत्ताङ ने पूछा।

'डॉक्टर का एक दल सुबह ही यहाँ पहुँचा है। कोई कैंप में नहीं गया तो वे लोग घर–घर जाने की बात कर रहे हैं। मैंने भैया की बात की है। एक डॉक्टर यहाँ भी आने वाला है।' कहता हुआ विनसम चला गया।

पत्ताङ को मानो इस खबर से कुछ राहत मिली। उसने कमरे को थोड़ा व्यवस्थित करने के लिए बेंत की कुर्सियों को वानलाङ के बिस्तर के सामने एक पंक्ति में लगा दिया। विनसम की अगुवाई में पत्ताङ का हमउम्र एक डॉक्टर कमरे में प्रवेश करता है। पत्ताङ ने उसे नमस्कार किया। सर हिलाते हुए डॉक्टर ने बिस्तर पर लेटे मरीज को देखा। डॉक्टर के लिए यह तय करना मुश्किल हुआ कि सामने खड़ी स्त्री का मरीज से क्या संबंध है। मरीज सिर्फ हड्डियों का एक जीवित ढाँचा है, जिसकी उम्र पचास साल से कम नहीं होगी और वह स्त्री मुश्किल से उसकी आधी उम्र की होगी जो अत्यंत सुंदर है। छरहरा शरीर, गोल चेहरा, खींची हुई छोटी–छोटी आँखें, जूड़े में कसकर बंधे काले, लंबे और घने बाल। भाल पर बड़ी लाल बिंदी और माँग पर सिंदूर की लंबी और मोटी लकीर अपने पति के स्थान और जरूरत दोनों का एहसास कराने की कोशिश कर रही थी। करघे से बुनी चादर–मेखला लंबे समय से देती आ रही सेवा से तंग आकर मानो उसके ताना और बाना एक दूसरे से मुक्त होने की तैयारी कर रहे थे। डॉक्टर को महसूस हुआ कि भले ही लक्ष्मी उस पर रूठी हुई हो, पर कामदेव ने उसके साथ लेशमात्र भी अन्याय नहीं होने दिया। डॉक्टर के कुतूहल पर विराम लगाकर पत्ताङ बोली– 'मेरे पति की तबीयत खराब है।'

'क्या हुआ है?'

'मुँह से थोड़ा–थोड़ा खून निकल रहा है। बीच–बीच में दर्द ऐसा उठता है कि ठीक तरह से बोल भी नहीं पाते।'

'कब से?'

'तबीयत पिछले कुछ दिनों से खराब है। खून का आना पिछली रात से शुरू हुआ है।'

डॉक्टर ने वानलाङ को बिस्तर पर बैठने के लिए कहा और उसके मुँह और नाक के अंदर टॉर्च की रोशनी डालकर देखा। पत्ताङ कागजों से भरा हुआ एक सपाट

कैरीबेग सँभालकर छाती से लगाकर डॉक्टर के सामने खड़ी हो गई। प्रारंभिक जाँच के बाद विनसम ने डॉक्टर के हाथ धुलवाए। पत्ताङ ने डॉक्टर को एक गमछा आगे बढ़ा दिया।

'ये बहुत कमजोर हो गए हैं। इन्हें अच्छा भोजन कराना चाहिए था। अच्छा भोजन इंसान को बहुत सारी बीमारियों से बचाता है।' गमछे से हाथ पोंछते हुए डॉक्टर ने कहा।

'यही तो मैं भी कह रही हूँ। इतनी चिड़ियाँ मरी पड़ी हैं! झोल बना दूँ तो अभी ये ठीक हो जाए।'

'यह चिड़िया का झोल खाने से ठीक होने वाली बीमारी नहीं है।'

'फिर भी शरीर में ताकत तो आएगी! पर इन सबका कहना है कि ये खुदकुशी करने वाली चिड़ियाँ हैं, भगवान की देन हैं तो....'

'कुछ भी भगवान की देन नहीं है। यह प्राकृतिक घटना है।'

डॉक्टर की बात सुनकर पत्ताङ ने जिज्ञासु नजर से उन्हें देखा।

'यह बताइए कि यह घटना कब घटती है?'

'सितंबर महीने से लेकर नवंबर महीने तक.....आ.....शरद और हेमंत ऋतु के बीच के समय में।' पत्ताङ ने जवाब दिया।

'हर रात चिड़ियाँ मरती हैं क्या?'

'नहीं। केवल अँधेरी रातों में।'

'वैसी रातों का मौसम कैसा होता है?'

'रातें कुहरे से ढकी और अंधेरी होती हैं और हल्की–हल्की बारिश भी होती रहती है।'

'और हवा दक्षिण–पश्चिम की ओर से उत्तर–पूर्व की ओर बहती है, जो जातिंगा में स्वाभाविक रूप से बहने वाली हवा की विपरीत दिशा है, तब दूर देश से आने वाली सैकड़ों चिड़ियाँ जातिंगा के आसमान में राह भटककर नीचे की आग या रोशनी के उत्स की ओर आकर्षित होकर उतर आती हैं और आग में जलकर या कहीं टकराकर मर जाती हैं।' डॉक्टर ने पत्ताङ की बात को आगे बढ़ाया।

'सब चिड़ियाँ नहीं मरतीं। कुछ आग के पास आकर बिना हिले–डुले बैठी रहती हैं। तब वे उड़ने की कोशिश भी नहीं करतीं। हम लोग ऐसी चिड़ियों को पकड़कर दाना–पानी खिला–पिलाकर जान बचाना चाहते हैं पर वे खाना न खाकर वैसे ही मर जाती हैं।' इस बार विनसम ने कहा।

'जो पक्षी जिंदा रहते हैं, उन्हें जो सदमा पहुँचता है, उससे वे उबर नहीं पाते।'

'यहाँ ही ये मरने क्यों आती हैं?'

'मरने कौन आता है? वे तो घूमने आते हैं।'

'पर वे जातिंगा में ही क्यों मरती हैं?'

कुर्सी पर बैठते हुए डॉक्टर ने विनसम की ओर देखते हुए पूछा– 'क्या करते हो तुम?'

'पढ़ता हूँ। इस बार आठवीं में हूँ।'

'भूगोल पढ़ा होगा?'

'भूगोल मुझे बहुत अच्छा लगता है। ये चिड़ियाँ यहाँ क्यों मरने आती हैं, जानने की बड़ी इच्छा होती है। आखिर इनकी खुदकुशी का राज क्या है? बहुत लोगों से जानना चाहा, पर जान न पाया। यहाँ तो अच्छी किताबें भी नहीं मिलतीं।'

'अच्छा। तो मैं ही बताता हूँ, सुनो। जातिंगा शब्द का अर्थ ही है बारिश और तूफ़ान का रास्ता। ये चिड़ियाँ गर्मी से बचने के लिए उत्तरी गोलादर्ध से दक्षिणी गोलादर्ध तक का सफर तय करती हैं। साइबेरिया से ऑस्ट्रेलिया तक वे यहाँ से होकर जाती हैं। यह घाटी बराइल रेंज और हिमालयन रेंज की ऊँची–ऊँची पहाड़ियों के बीच की लंबी घाटी है, जहाँ का आसमान हमेशा बादल से ढका हुआ होता है। अगस्त के अंतिम भाग से लेकर दिसंबर के पहले भाग में यह घटना देखी जाती है। सर्दी का मौसम और ऊँची पहाड़ी। सर्दी स्वाभाविक रूप से अधिक है। आग उन्हें खींच लाती है।'

'क्या आग किसी को खींच सकती है?'

'क्यों नहीं? जिस चीज की चाहत होती है, वह हर किसी को खींचती है।' उसने पत्ताङ की ओर देखकर कहा। 'मेरा मतलब है कि चिड़ियाँ सर्दी के मौसम में आग के प्रति आकर्षित होती हैं।'

'और तूफान का यहाँ क्या काम?'

'घाटियों में पहाड़ियों के बीच से बहने वाली हवा का असर रहता ही है। जातिंगा में स्वाभाविक रूप से बहने वाली हवा की अपेक्षा दक्षिण–पश्चिम की ओर से उत्तर–पूर्व की ओर बहने वाली हवा की गति सामान्य से अधिक है। लगातार बौछार पड़ते रहने से मौसम में नमी अधिक होती है। ऊँची पहाड़ियों के बीच की घाटियों में घना कोहरा होता है। उस पर बौछार और हवा कोहरे को और अधिक घना कर डालती है। ऐसे माहौल में हवा का दबाव भी बढ़ता है। स्थानीय चिड़ियाँ ऐसे माहौल से अच्छी तरह वाकिफ होती हैं। प्रव्रजित पक्षियों के लिए यह माहौल अस्वाभाविक होता है। ऐसे अस्वाभाविक माहौल में घुमंतू चिड़ियाँ दिशा का ज्ञान खोकर अचेत हो जाती हैं। पथभ्रष्ट, अस्वाभाविक परिवेश का सामना करने वाली चिड़ियों को रोशनी के उत्स आकर्षित करते हैं। जुलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की तरफ से किए गए एक अध्ययन के बाद डॉ. सेनगुप्त ने माना है कि इस खास माहौल के बावजूद भू–चुंबकीय आकर्षण के द्वारा चिड़ियाँ प्रभावित होकर दिशा का ज्ञान खो देती हैं।.....अब समझ गए?'

डॉक्टर के जवाब ने विनसम की जिज्ञासा को शांत किया। वानलाङ और पत्ताङ दोनों चुपचाप डॉक्टर और विनसम की बातें सुन रहे थे। डॉक्टर के लंबे भाषण के बाद

कमरे में चुप्पी छा गई।

'शायद मैं कुछ ज्यादा ही बोल गया।' फिर पत्ताङ की तरफ देखकर कहा– 'लड़के ने जानने की इच्छा की तो मुझे भी बताने का मन हुआ।' 'पर बहुत सारी बातें तो मैं समझी ही नहीं।'

'अब रहने दीजिए। मौका मिला तो समझा दूँगा। फिलहाल आप इनकी सेवा कीजिए।'

'आप अगर माँ जी से इन्हें ये चिड़ियाँ खिलाने के लिए कह दें तो बड़ा उपकार होगा।'

'बिल्कुल नहीं।'

'आपने ही कहा अभी कि यह भगवान की देन नहीं है, प्रकृति की स्वाभाविक घटना है!'

'सही है। पर इन चिड़ियों को सरकार ने खाने से मना किया है। इस पाबंदी के कारण इंसान के हाथों ये चिड़ियाँ अब नहीं मरतीं।'

'जी, जानती हूँ।'

'आपने तबसे हाथ में क्या ले रखा हैं? क्या कुछ दिखाना चाह रही हैं?' पत्ताङ के कैरिबेग की ओर इशारा करते हुए डॉक्टर ने कहा।

'एक बार देख लेते तो.....उसने कैरिबेग को डॉक्टर की ओर आगे बढ़ाते हुए कहा।

डॉक्टर ने कैरिबेग से कागज निकालकर बगल की कुर्सी पर रख दिए। सबसे ऊपर एक प्रिस्क्रिप्शन था। उसने पढ़ा– 'वानलाङ रिमबाइ, उम्र 52 ......' । फिर उसने एक–एक कर सारे कागज पढ़ लिए।

'दो साल पहले भी ये बीमार हुए थे। '

'हाँ, देखा है।' धीमी आवाज में डॉक्टर ने कहा।

'अब कौन–सी बीमारी हुई है?'

'यह अद्भुत बीमारी है। नर्व के ब्लॉक हो जाने से ब्लड सर्कुलेशन ठीक तरह से नहीं हो पाता। उसे साँस लेने में तकलीफ होती है। फिर खून का दबाव बढ़ जाने से नर्व जहाँ–तहाँ फट जाता है। लंबा इलाज चलता है। कम से कम महीना भर लग जाता है। भगवान ने चाहा तो मरीज बच भी जाता है, जैसा कि ये बचे थे।'

पत्ताङ डॉक्टर की बातें समझ नहीं पाई। अबूझ स्वर में वह बोली–'क्या?'

डॉक्टर को तुरंत यह बोध हुआ कि उसे उनके सामने शायद असली बात बतानी नहीं चाहिए थी। इस भयानक बीमारी से लड़ने की न उनमें समझ थी और न ही सामर्थ्य। वह अचकचाकर बोला– 'फिलहाल आप यह जान लीजिए कि इनकी नसों से खून आने लगा है।'

'ये ठीक हो जाएँगे न! '

'इसे क्या हुआ है डॉक्टर बाबू? वही पुरानी बीमारी क्या?' इस बार कमरे के अंदर आती हुई वानलाङ की माँ ने कहा।

'कुछ जाँच करने के बाद ही कहा जा सकेगा। मैंने कुछ दवा लिख दी है। अगर आप चाहें तो स्कूल से, जहाँ हम लोग हैं, वहाँ से ले आ सकती हैं। कम से कम दर्द तुरंत कम हो जाएगा।'

'इन्हें बचा लीजिए सर।' इस बार पत्ताङ बोली।

'हूँ...'

'तू अभी डॉक्टर के साथ ही चली जा। वह दर्द के मारे कराह रहा है। बाद का बाद में देखा जाएगा। मैं ही रसोई जाती हूँ।' कहकर जमीन की तरफ यू आकृति में झुकी बुढ़िया पोती का सहारा लेकर घर के दूसरे कमरे की ओर जाने लगी।

**5**

डॉक्टर के साथ पत्ताङ पहाड़ी सँकरे रास्ते से आगे बढ़ने लगी। डॉक्टर के मन में पत्ताङ की जिंदगी में झाँकने का मन हुआ। बोला– 'आपकी शादी कब हुई?'

पत्ताङ की शादी कब हुई? वह सोचने लगी। हाँ, आठ साल होने को आए। कितने सपने बुने थे उसने अपने संसार को लेकर। ताकार से शादी के लिए मना करने के बाद उसके लिए वानलाङ का रिश्ता आया था। पत्ताङ के बाप को बताया गया था कि वह लक्षीमपुर में व्यापार के सिलसिले में रहता है। अब व्यापार कुछ ठीक नहीं है, पर व्यापार में कब क्या हो जाए, उसका क्या ठिकाना? जिंदगी का ही भरोसा नहीं है, व्यापार किस खेत की मूली है? पत्ताङ का बाप बूढ़ा होने लगा था और ऊपर से हर साल बाढ़ का प्रकोप बढ़ने लगा था। पहले साल में एक बार बाढ़ आती थी तो धीरे–धीरे साल में छह–सात बार बाढ़ आने लगी। पूरा का पूरा गाँव पानी के नीचे रहने लगा तभी जातिंगा की पहाड़ी के लड़के वानलाङ रिमबाइ का रिश्ता आया। वानलाङ ने कहा था– 'मुझे लड़की के अलावा और कुछ नहीं चाहिए। मैं अपने दो दोस्तों के साथ आऊँगा और पत्ताङ को ब्याहकर ले जाऊँगा। आप लोगों को किसी भी चीज का बंदोबस्त करने की जरूरत नहीं है।'

कारसाङ ताये के सर का बोझ मानो अचानक से उतर गया। उसने काम्पति से कहा था– 'वे अगले महीने की दस तारीख को पत्ताङ की शादी के लिए कह रहे हैं। लड़का पहाड़ी है। पत्ताङ को जिंदगी में कभी और बाढ़ से परेशान नहीं होना पड़ेगा। ऊपर से उसे तिनका तक नहीं चाहिए।' पत्ताङ ने शादी के लिए हामी भर दी। फिर भी कारसाङ ने गाँव वालों को 'भरसा'[5] के लिए बुलाया था। कारसाङ ने सामाजिकों के सामने हाथ जोड़कर कहा था–'लड़का जयंतीया है। जातिंगा की पहाड़ी पर उसका घर है। अब लक्षीमपुर में व्यापार कर रहा है। उसने कहा है कि शादी में हमें परेशान नहीं होना है, उसे कुछ नहीं चाहिए। अब शादी का दिन किस तरह कटे मैं यह आपके भरोसे छोड़ता हूँ।'

गाँववालों में से किसी ने चावल, किसी ने दाल, किसी ने सब्जी, किसी ने तेल और किसी ने पंडाल का खर्च उठाने की जिम्मेदारी ली। लड़के खाना बनाने और लड़कियाँ मंडप और दुल्हन को सजाने के लिए तैयार हो गए थे। कारसाङ के भरोसे पर खरा उतरकर गाँववालों ने पत्ताङ की अच्छी शादी रचाई थी।

'भाभी, मुझे भूख लगी है। मैं घर जाता हूँ। आपको अकेले जाने में कोई तकलीफ तो नहीं होगी न!'

'कौन–सी तकलीफ? मैं हूँ न! दिन–दहाड़े तुम्हारी भाभी को कोई उठाकर नहीं ले जाएगा।' हँसते हुए डॉक्टर ने कहा।

विनसम एक पतली गली से अपने घर की तरफ बढ़ा।

'मेरे पति को पहली वाली बीमारी हुई है क्या?'

'सच कहूँ?'

'हाँ।'

'सुन सकेंगी?'

'सुनना तो पड़ेगा ही।'

'आपको क्या लगता है?'

'अंदाजा कर लिया है। पर जब तक डॉक्टर नहीं बताते.....'

'आपका अंदाजा सही लगता है। अभी जाँच नहीं हुई तो कुछ भी निश्चित रूप से कहना हमारे उसूलों के खिलाफ है।'

डॉक्टर और पत्ताङ दोनों कैंप पहुँच गए। चौकीदार ने डॉक्टर के लिए स्कूल के दरवाजे का ताला खोल दिया। डॉक्टर पत्ताङ को सामने की कुर्सी पर बैठने का इशारा करते हुए दवा के डिब्बों में से कुछ खोजने लगा।

'बच तो जाएँगे न!'

'जिंदगी का क्या भरोसा? किसी के साथ कभी भी कुछ भी हो सकता है।'

'कुछ तो उपाय होगा?'

'उपाय है इलाज, जिसका अनुभव आपको एक बार हो चुका है।'

'इस बार हमारे पास पैसा बिल्कुल नहीं है।'

'तो कोई दूसरा उपाय सोचिए।'

'आप ही कुछ कीजिए। डॉक्टर तो भगवान होते हैं।' पत्ताङ हाथ जोड़कर डॉक्टर के सामने खड़ी हो गई।

'शाम होने वाली है। हमें जल्दी लौटना है। अँधेरा हो जाने से पहाड़ी से उतरना मुश्किल हो जाएगा...उस पर यह बरसाती मौसम है। कुछ दवा दी है। उन्हें खिला दीजिएगा।'

'कुछ कीजिए सर।'

'अस्पताल में भर्ती कर दीजिए।'

'पर अस्पताल तक ले जाने के लिए भी गाड़ी तीन हजार माँगती है।'

'घबराइए नहीं। मैं पहाड़ी की तलहटी में रहता हूँ। जब चाहे आप मुझे याद कर सकती हैं। प्रिस्क्रिप्शन पर मेरा फोन नंबर लिखा हुआ है। चाहे तो आप आ भी सकती हैं... मेरे पास। अगर आपको कोई आपत्ति न हो तो... कुछ कर लूँगा।'

डॉक्टर अपना बोरिया बिस्तर बाँधने लगा। उसकी दी हुई दवा मुट्ठी में बाँधकर वह उलटे पाँव चली आई। सास बरामदे में बैठकर बहू की राह देख रही थी।

'बहुत देर कर दी बहू।'

'हाँ, माँ जी। देर हो गई।'

'मैंने भात बना लिया। पोपिर को भी खिला दिया है। वानलाङ खाने से मना कर रहा है। तू देख एक बार। और हाँ, तू भी कुछ खा ले। न खाने से भागदौड़ कैसे करेगी?'

'आपने खाया?'

'नहीं।'

'आपको खाना चाहिए। आप भी बीमार पड़ गई तो कैसे होगा?'

'मेरा छोड़। तू खा ले।'

'मन नहीं कर रहा।'

'फिर भी कुछ खा ले।.....दवा मिली?'

'मिली। अभी देती हूँ।'

पत्ताङ सीधे वानलाङ के पास गई। पत्ताङ ने दो टैबलेट उसे खिला दिए। पर टैबलेट पेट तक पहुँचे ही नहीं थे कि उल्टी के साथ बाहर आ गए। पत्ताङ वानलाङ का सीना सहलाने लगी–'कुछ नहीं होगा। सब ठीक हो जाएगा।' उसने फिर से दो टैबलेट उसे खिला दिए। इस बार टैबलेट पेट में पहुँच गए। पत्ताङ का आसरा मिलने से वानलाङ थोड़ा शांत होने लगा। उल्टी भी रुकी। वह झपकी लेने लगा।

अमावस की रात है। बाहर तेज हवा चल रही है। चिड़ियाँ यहाँ–वहाँ टकराकर मर रही हैं, आग में गिरकर जल रही हैं। पत्ताङ वानलङ के सामने बैठकर दोञी पोलो की स्तुति करने लगी। ऐसे कुछ समय बीतने के बाद अचानक से वानलाङ को खून की उल्टी आने लगी। वह अटकी आवाज से बोला– 'मुझे बचा लो पत्ताङ। मुझे बचा लो। मुझे पुरानी वाली बीमारी हुई है। मुझे जीना है। मुझे डॉक्टर के पास ले चलो...,डॉक्टर को बुलाओ।......'

पत्ताङ ज़ोर–ज़ोर से वानलाङ का सीना सहलाने लगी पर इसका कुछ असर नहीं हुआ तो उसने टेबल पर रखे प्रिस्क्रिप्शन में डॉक्टर का फोन नंबर देखा और तुरंत डॉक्टर को फोन लगाया–'हेलो सर, मैं पत्ताङ। पहचाना? वानलाङ रिमबाइ की बीवी।'

'आपको कैसे भूल सकता हूँ?'

'मेरे पति को बचा लीजिए। वह बहुत तकलीफ में हैं।'

'मैं किसी काम में लगा हुआ हूँ.....'

'डॉक्टर वे दम तोड़ देंगे।'

'आप पति को यहाँ ले आइए।'

'यह संभव नहीं है। वे बैठ भी नहीं पा रहे हैं ठीक तरह से।'

'तो आप आ जाइए। कुछ करता हूँ। मैं सब संभाल लूँगा।' फोन कट गया। पत्ताङ पति के पास गई। वानलाङ तब भी कराह रहा था।

'कुछ करो पत्ताङ मुझसे और सहा नहीं जाता। साँस लेने में बड़ी तकलीफ हो रही है।'

'डॉक्टर मुझे बुला रहे हैं ।'

'डॉक्टर भगवान होते हैं। अब इनके अलावा हमारे साथ कोई नहीं है।'

'अकेले इस अँधेरी रात को मैं कैसे जाऊँ?'

वानलाङ खाँसने लगा। उसके नाक से खून निकलने लगा।

'मुझे बचा लो.... जैसे भी हो मुझे बचा लो....' वह हाथ–पाँव मारने लगा। उसकी साँसें छोटी होने लगीं।

पहाड़ी के नीचे डॉक्टर का घर दिख रहा है। घर के बरामदे में एक लाइट जली हुई है। चिड़ियाँ वहाँ आ–आकर टकरा रही हैं। पत्ताङ का दिमाग काम नहीं कर रहा। डॉक्टर के घर से आ रही रोशनी के सिवाय वह कुछ देख नहीं रही है। बचपन में पिता की कही हुई बात उसके कानों में गूँजने लगी– 'इंसान का सबसे बड़ा धन इज्जत होता है। पैसा चला जाता है तो कुछ नहीं जाता, स्वास्थ्य चला जाता है तो कुछ खो जाता है, पर चरित्र के चले जाने से इंसान का सब कुछ खो जाता है।' इसीलिए तो ताकार के छूने से ही उसने उससे शादी करने से इंकार कर दिया था। उसका सर चकराने लगा। मिचिङ का मतलब ही है अच्छा इंसान। वह गलत कैसे कर सकती है। पता नहीं डॉक्टर ने उसे क्यों बुलाया है। पर किसी पुरुष का किसी पर–स्त्री को अकेले रात को अपने पास बुलाना गलत है और बुलाने पर उस स्त्री का जाना भी गलत है, बिल्कुल गलत। वह बरामदे में मोढ़े पर बैठ गई। गाँववालों ने जो चीजें शादी में दी थीं, एक–एक करके सब खत्म हो चुकी थीं। अब उसके पास सिवाय अपनी देह के कुछ भी नहीं है...कुछ भी नहीं।

वानलाङ की कराह बढ़ने लगी। पर इस बार वह अंदर नहीं गई। उसने देखा कि सामने के रास्ते से सावित्री अपने पति को बचाने पहाड़ के नीचे रोशनी की ओर बढ़ रही है। ठीक ही तो है। पति परमेश्वर है। उसके वचन का पालन करना हर स्त्री का धर्म है।

पत्ताङ को अपने पर भारी दबाव का एहसास हुआ। मानो जातिंगा के आसमान में तैरने का सपना देखने वाली पत्ताङ भँवर में फँसी जा रही है,नीचे खींची जा रही

है। घर में माँ–बाप नहीं हैं, अगर पति भी नहीं रहेगा तो उसकी जिंदगी कौन पार लगाएगा? माँ का घर सोवणशिरी ने निगल लिया, पति गले तक उधारी में डूबा हुआ है,ऊपर से बेटी जवान होने जा रही है..... आगे वह सोच नहीं पाई। वह आँगन की ओर चली। अमावस की रात, घना अंधेरा और बरसात, तेज हवा, कहीं कुछ दिखाई नहीं दे रहा। वह रास्ते की ओर निकली तो पहाड़ की तलहटी पर डॉक्टर के घर की रोशनी साफ दिखाई पड़ी। वानलाङ का खाँसना रास्ते से सुनाई दे रहा था ...खाँसी बढ़ रही थी....। उसने ठान लिया कि जैसे भी हो वानलाङ को बचाना है। मानो पहाड़ी की तलहटी पर डॉक्टर की जिद है और इस चोटी पर पत्ताङ का स्वाभिमान; बीच में पति की जिंदगी की डोरी फँसी हुई है। वह किसी को कुछ कहे बिना तेजी से पहाड़ी से उतरकर तलहटी की रोशनी की ओर बढ़ गई।

**शब्दार्थ :**

1. दोञी पोलो– सूरज–चाँद। मिसिङ लोगों के आराध्य हैं। इनके अलावा भी वे प्रकृति और पूर्वजों की आराधना करते हैं।

2. रङाली बिहु– यह असमिया नववर्ष की शुरुआत और वसंत के आगमन के समय मनाया जाने वाला उत्सव है। इसे बॉहाग बिहु भी कहा जाता है।

3. ऐनितम–मिचिङ लोगों के बीच गाया जाने वाला प्रणयमूलक गीत। इन गीतों में प्रेमी–प्रेमिका की आशा–निराशा, सुख–दुख आदि का वर्णन होता है।

4. लङे मिक्सि दिनामदेम आपङ एमपे तिलङका।
युमे मिक्सि दिनामदेम,केरासिनपे रोमलङका।
–दिन में यदि आँसू निकले तो उसे आपङ (मिचिङ पेय) की तरह पीना (क्योंकि दिन में आँसू खुशी के मौके पर बहते हैं (मिचिङ समाज में खुशी के मौके पर आपङ पी जाती है)। रात को बहते आँसू को केरोसिन की तरह जलाना (क्योंकि अक्सर रात को लोग दुःख के कारण रोते हैं), ताकि हमारी उम्मीद का दीया जलता रहे।

5. भरसा– लक्षीमपुर में शादी तय होने के बाद शादी अच्छी तरह रचाने हेतु गाँव वालों को बुलाकर बैठक करने का रिवाज है। इसमें शादी की विविध सामग्रियों के संग्रह का उपाय एवं विविध कामों की ज़िम्मेदारी बाँटी जाती है। इस अनुष्ठान को 'भरसा' (भरोसा) कहते हैं।

❑❑❑

**हिंदी कहानी**

# अफ़सानानिगार

**अब्दुल गफ़्फ़ार**

हिंदी कथाकार, भोजपुरी फिल्मों में पटकथा व संवाद लेखन, विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित

एक सब्ज़ी फ़रोश का बेटा, एक कहानी फ़रोश भी बन सकता है, यह बात अब दुनिया मान चुकी है। हम बात कर रहे हैं उर्दू के मशहूर अफ़सानानिगार अल्तान ख़ान की। असल में अल्तान ख़ान नस्ल से मंगोलियन है। उसका हसब–नसब मशहूर सूफ़ी सैफ़–उद–दीन दरवेश से मिलता है। हालात ने उसके बाप–दादा को सब्जी बेचने पर मजबूर किया। उसके वालिद बातार ख़ान और दादा चंगेज़ ख़ान सब्ज़ी फ़रोश थे, जो भारत में आकर बस गए। बातार ख़ान यहाँ दिल्ली में भी हज़रत निज़ामुद्दीन के इलाके में सब्ज़ी की रेहड़ी लगाते थे। दोनों बाप–बेटे यहीं भारत की मिट्टी में दफ़्न हुए। अल्तान बचपन में हमेशा अपने दादा के साथ सोता था और उनसे देर रात तक ढेरों मंगोलियन कहानियाँ सुनता था। कहानियाँ सुनते–सुनते उसके अंदर भी एक कहानीकार ने जन्म लेना शुरू कर दिया।

आज अल्तान ख़ान भारत के उर्दू अफ़सानानिगारों में एक मशहूर नाम है। मंटो की तरह उसका माथा काफ़ी कुशादा और चौड़ा है। अल्लामा इक़बाल की तरह नोकदार मूँछें और जॉन इलिया की तरह लंबे–लंबे बाल रखना उसे पसंद है लेकिन हैरतअंगेज़ तौर पर वो शराब और सिगरेट को हाथ तक नहीं लगाता। अलबत्ता... चाय जरूर पीता है, बल्कि चाय उसकी कमज़ोरी है। लिखते–लिखते जब वो थक जाता है तब अपनी बीवी शाज़ान ख़ान को चाय के लिए आवाज लगाता है। शाज़ान ख़ान चाय बनाकर लाती है। बार–बार लाती है। लेकिन कभी–कभी झल्लाहट में कहती है–'कहाँ से आएगी दिन भर में दस कप चाय? आमदनी अठन्नी, और खर्चा रुपैया!

एक अफ़साना लिखने का मेहनताना हज़ार–पाँच–सौ से ज्यादा नहीं मिलता जिसके कारण दाल–रोटी चला पाना भी मुश्किल होता है। तेल–साबुन, कपड़े–लत्ते, दवा इलाज, सैकड़ों तरह के ख़र्चे हैं, जो अफ़सानानिगारी से पूरे नहीं हो सकते। शाज़ान के फ्रस्ट्रेशन का यही कारण है। शाज़ान ने कई बार कहा–'अल्तान! कोई

 ISSN 0523-1418

दूसरा काम–धंधा कर लो। अफ़साने लिखने से पेट नहीं भरने वाला। ये निकम्मों, निठल्लों या रईसों का काम है।'

लेकिन अल्तान के कान पर जूँ तक नहीं रेंगता। वो अपनी ही धुन में रमा रहता है। उसे कहानियाँ लिखने के अलावा दूसरा कोई काम भाता ही नहीं है।

अल्तान के ज्यादातर अफ़सानों में मंगोलियन कंसेप्ट और मंगोलियन प्लॉट होते हैं, जिसके चलते वे पाठकों को कुछ अलग और अनूठा एहसास कराते हैं। हर पाठक कुछ नया पढ़ना चाहता है और अल्तान नयी–नयी चीजें प्रस्तुत करता रहता है। उसकी मक़बूलियत का यही राज़ है। लेकिन उम्र बढ़ने के साथ–साथ अब उसके ज़ेहन पर समय का गर्द पड़ता जा रहा है और धीरे–धीरे उसकी चेतना से मंगोलियन कंसेप्ट और मंगोलियन कथानक दूर होते चले जा रहे हैं।

इसलिए अल्तान एक बार फिर मंगोलिया जाना चाहता है। वो वहाँ की संस्कृति, वहाँ की आबोहवा और वहाँ के समाज में कुछ समय गुजारकर नये अनुभव प्राप्त करना चाहता है लेकिन मंगोलिया जाने के लिए उसके पास पैसे नहीं हैं।

जिस रिसाले में उसके ज्यादातर अफ़साने छपते हैं उसके मुदीर अब्दुल करीम ने दस हज़ार से ज्यादा रकम देने से इंकार कर दिया है जिसके चलते अल्तान ज़ेहनी तौर पर परेशान रहने लगा है। उसने दूसरे संपादक इमरान मोमिन से संपर्क किया। इमरान मोमिन ने उसे एक नॉवेल लिखने का सुझाव देते हुए कहा– 'अल्तान मियां! आप एक फड़कता हुआ नॉवेल लिखिए। मैं आप के मंगोलिया जाने का इंतज़ाम करता हूँ।'

अल्तान खुश हो गया और नॉवेल लिखने का प्लान करने लगा। हालाँकि इसके पहले उसने कभी नॉवेल नहीं लिखा था, लेकिन नॉवेल लिखना एक कहानीकार के लिए कोई बड़ी बात नहीं होती। नॉवेल का फॉर्मेट तो उसे पहले से पता है, बस एक अनूठे और दिलचस्प प्लॉट की तलाश है। वो चाहता है कि उसका नॉवेल भी उसके अफ़सानों की तरह ही दिलचस्प बने ताकि पाठकों में उसकी साख़ बनी रहे। लेकिन उस तरह का कोई कंसेप्ट उसके दिमाग में आ नहीं रहा है।

वो दिन रात नॉवेल के प्लॉट पर ग़ौर करने लगा। सैकड़ों पन्ने काले करने लगा। रात–रात भर जागकर पढ़ने लगा। शाज़ान चुपचाप उसका चेहरा तका करती। उसके साथ–साथ रात भर जगा करती। चाय–कॉफ़ी बना–बना कर पिलाया करती। अल्तान से कहती– 'अब सो भी जाओ, रात ज्यादा हो चुकी है।'

लेकिन अल्तान कहता– 'तुम सो जाओ, मुझे अभी पढ़ना है।'

कथानक, पात्र और संवाद जिसके गुलाम हों, आखिर वो कब तक भटकता रह सकता है! आखिरकार एक अनूठा प्लॉट उसके दिमाग में आ ही गया। कहानियाँ

लिखने की जो खुदादाद सलाहियत उसके पास थी, उसने अपना कमाल दिखाया और एक महीने के अंदर ही उसने अपना उपन्यास मुकम्मल करके संपादक इमरान मोमिन के हवाले कर दिया।

दरख़ान, मंगोलिया का एक खूबसूरत शहर है। इसके चारों तरफ मैदान और रेगिस्तान हैं। यहाँ रूसी और चीनी लोगों की संख्या अधिक है। कुछ कज़ाखिस्तान के लोग भी यहाँ रहते हैं। ख़ासकर यहाँ रशियन लोगों, रशियन संस्कृति और रशियन साहित्य का ग़लबा है।

कैफ़े ग्लॅक दरख़ान शहर का सबसे पुराना कैफ़े है। यह जगह छोटे–छोटे दुकानदारों, कामकाजी देहातियों से अंटी पड़ी रहती है, जो कॉफ़ी–बिस्कुटों से ज्यादा, अख़बारों को चाटते रहते हैं। शाम ढल चुकी थी, इसलिए हवा में भारीपन के अलावा सिगरेट–तंबाकू का धुआँ भी घुल आया था जिससे हल्की–सी घुटन महसूस हो रही थी। हालाँकि जगह साफ़–सुथरी और सजी–धजी थी, इसलिए लोग यहाँ आराम से बैठे हुए थे।

अल्तान कोने में पड़ी संगमरमरी टॉप वाली मेज़ पर विराजमान था। वह एकटक बैठा, ऐनक लगी आँखों से छपे पन्नों को पलट रहा था। वो मंगोलियन और रशियन साहित्यकारों को पढ़ रहा था। ऐसे वक्त वह दुनिया जहान से इस तरह बेख़बर हो जाता था कि आस–पास की कोई भी चीज उसे दिखाई या सुनाई नहीं देती थी।

कैफ़े ग्लॅक में पढ़ने के दौरान ही अल्तान की मुलाक़ात एक रूसी कहानीकार से हो गई। हुआ यूँ कि एक गोरा लंबा शख्स सिर पर हैट और ओवरकोट पहने उसकी मेज़ के पास आ खड़ा हुआ और बोला– 'मैं मिखाइल अन्तोन हूँ, रूसी अफ़सानानिगार। काफी देर से मैं आपको पढ़ता हुआ देख रहा हूँ। एक कैफे में बैठकर पढ़ने वाला या तो स्टूडेंट हो सकता है या राइटर!'

अल्तान को मालूम था, विश्व साहित्य में रशियन साहित्य और रशियन साहित्यकारों की क्या क़द्रो कीमत है। इसलिए उसने कुर्सी से उठकर गर्मजोशी से मिखाइल अन्तोन का स्वागत करते हुए कहा– 'मैं... अल्तान हूँ। एक भारतीय... अफ़सानानिगार। यहाँ नए कंसेप्ट और नए प्लॉट की तलाश में आया हूँ।'

फिर दोनों दो घंटे तक रशियन, मंगोलियन और उर्दू अदब पर चर्चा करते रहे। रात के आठ बजे मिखाइल अन्तोन ने उठते हुए कहा– ''अल्तान! क्या तुम मेरा मेहमान बनना पसंद करोगे?'

अल्तान ने कहा– 'क्यों नहीं। एक रशियन अफ़सानानिगार का मेहमान बनकर मुझे बेहद खुशी होगी।'

दोनों कैफ़ै ग्लॅक से निकलकर मिखाइल अन्तोन के घर की तरफ चल पड़े।

अन्तोन ने रास्ते में बताया कि वो यहाँ वर्षों से किराये के मकान में रह रहा है। उसे मॉस्को छोड़े हुए एक लंबा अरसा हो गया है।

अन्तोन के घर पर उसकी बीवी पोलिना उसका इंतज़ार कर रही थी। उसने एक आगंतुक को देखा तो सवालिया नज़रों से अन्तोन को घूरा? अन्तोन ने कहा– 'यह मेरा इंडियन दोस्त है... अफ़सानानिगार। यह कुछ दिनों तक हमारे साथ रहेगा।'

पोलिना ने कंधे उचकाए और किचन की तरफ़ चली गई। कुछ देर बाद तीनों ने साथ–साथ डिनर किया। डिनर के दौरान अन्तोन ने पूछा– 'तुम्हारे यहाँ अफ़सानानिगारों की क्या हैसियत है?'

अल्तान ने हँसते हुए कहा– 'वही, जो रूस में एक घुड़सवार या कोचवान की है।'

'नहीं... मज़ाक़ नहीं। सच बताओ!'

'मैं सच ही बता रहा हूँ। हमारे यहाँ एक कॉंस्टेबल और संतरी को तो सम्मान मिलता है लेकिन एक शायर या अफ़सानानिगार को सम्मान नहीं मिलता। हमारे यहाँ एक छुटभैये नेता के बुलाने पर पुलिस दौड़ी हुई चली आती है लेकिन एक शायर या अफ़सानानिगार के बुलाने को नज़रअंदाज़ कर देती है। मतलब... हमारे यहाँ पुलिस, प्रशासन, बिजनेसमैन, राजनेताओं, की नज़र में एक साहित्यकार की कोई हैसियत नहीं होती।'

अन्तोन ने कहा– ''यह तो बेहद दुखद है।'' यह कहते हुए उसने अल्तान को कमरा दिखाया और दोनों हसबैंड–वाइफ अपने बेडरूम में चले गए।

अल्तान, कई दिनों तक अन्तोन से रशियन कहानियों और रशियन कहानीकारों के बारे में डिस्कस करता रहा। अन्तोन रशियन कहानियों के गुण–दोष बताते–बताते और रशियन कहानियाँ सुनाते–सुनाते थक जाता तो थकान मिटाने के लिए वोदका पीता और अल्तान से भी पीने की दरख्वास्त करता, लेकिन अल्तान पीने से साफ इंकार कर देता।

अगले कुछ दिनों तक वो अन्तोन से बहुत कुछ सीखता रहा फिर अपनी राह ली और चलता बना।

अगले एक महीने तक वो दरख़ान में अपने आबाई धंधे से जुड़ा रहा और सब्ज़ी फ़रोश का काम करता रहा। इस बीच सब्ज़ी बेचनेवालों, पल्लेदारी करने वालों, ठेला खींचने वालों, सफ़ाई करने वालों के साथ घंटों समय बिताता। सबसे उनकी कहानियाँ सुनता। सब्जी बेचने से उसे चंद पैसों की आमदनी भी हो जाती और कहानियाँ सुनने से उसके अफ़सानों के लिए नए कंसेप्ट, नए प्लॉट और नए किरदार भी मिल जाते।

वो जिस जगह से गुज़रता वहाँ की लाइब्रेरी में जरूर जाता। चार घंटे–पाँच घंटे

तक लाइब्रेरी में अध्ययन करता रहता। रशियन, चाइनीज़, फ्रेंच, मंगोलियन साहित्य पढ़ता रहता। इस अंजान देश में लाइब्रेरियाँ ही उसकी सबसे अच्छी दोस्त थीं जहाँ उसके समय का सदुपयोग होता था।

कुल तीन महीने तक वो मंगोलिया की ख़ाक छानता रहा। लौटने से पहले वो एक बार फिर मिखाइल अन्तोन से मिल लेना चाहता था। वो कुछ और सीख लेना चाहता था। वो उसके घर गया। घर पर पोलिना थी। उसने बताया– 'अन्तोन अगले हफ्ते लौटने वाला है। अगर तुम रुकना पसंद करो तो अन्तोन के आने तक यहाँ रुक सकते हो।'

अल्तान को यह बात नैतिकता के खिलाफ लगी। उसने पोलिना से कहा– 'क्या अन्तोन की ग़ैरहाज़िरी में मेरा यहाँ रुकना ठीक रहेगा?'

'क्यों नहीं? तुम हमारे मेहमान हो। तुम यहाँ पहले भी रह चुके हो।'

'तब की बात और थी। उस समय अन्तोन घर पर मौजूद था।'

'ओह! यह तुम कैसी दकियानूसी बात कर रहे हो! अगर तुम चले गए और अन्तोन को पता चल गया कि मैंने तुम्हें नहीं रोका, तो वो मुझ पर नाराज़ होगा।'

अल्तान को पोलिना की बात में निश्छलता नज़र आई। उसने कहा– 'ठीक है, मैं ठहर जाता हूँ।'

पोलिना ने कहा– 'योर मोस्ट वेलकम।'

शाम को अल्तान और पोलिना चाय पी रहे थे। पोलिना ने पूछा– 'तुम्हारी आजीविका का साधन क्या है?'

'मैं कहानी फ़रोश हूँ। कहानियाँ लिखता हूँ, और कहानियाँ बेचता हूँ।'

'सिर्फ़ कहानियाँ लिखने से गुज़र–बसर हो जाता है?'

'हाँ... हो ही जाता है।'

'क्या इंडिया में कहानियाँ बिकती हैं! लोग कहानियाँ पढ़ते हैं?'

'हाँ... लेकिन बहुत कम।'

'मतलब... वहाँ के लोगों में लिटरेचर के प्रति दीवानगी नहीं है! जैसा कि रूस के लोगों में है!'

'नहीं... हमारे देश में लिटरेचर के प्रति दीवानगी जैसा कुछ नहीं है।'

'तब तो तुम्हारी कहानियाँ भी बहुत कम बिकती होंगी!'

'हाँ... लेकिन... इतनी बिक जाती हैं, कि दाल रोटी आसानी से चल जाती है।'

'मतलब... तुम अपने यहाँ के मशहूर अफ़सानानिगार हो!'

'हाँ...। लोग तो कहते हैं।'

'क्या तुम अंग्रेजी में लिखते हो?'

'नहीं... उर्दू में।'

'वैसे तुम्हारे बाप दादा कहाँ के थे, और क्या करते थे?'

'मेरे बाप दादा यहीं के थे और सब्ज़ी फ़रोश का काम करते थे। हालाँकि उनका हसब–नसब मशहूर सूफ़ी सैफ़–उद–दीन दरवेश से मिलता है।'

'क्या...???

तुम्हारे बाप–दादा मंगोलियन थे। आश्चर्य है!!! मेरे बाप–दादा भी मंगोलियन हैं। मिखाइल अन्तोन रशियन है। वो यहाँ आया तो यहीं का होकर रह गया।'

'यहीं का होकर रह गया... या... तुम्हारा होकर रह गया?'

'नहीं। मैं उसका प्यार नहीं हूँ, बल्कि उसकी ज़रूरत हूँ। उसका पहला और आखिरी प्यार, उसकी कहानियाँ हैं। वो अपनी कहानियों के लिए जीता है और अपनी कहानियों के लिए मरता है। अपनी कहानियों के साथ सोता है और अपनी कहानियों के साथ जागता है। वो इस वक्त अपनी कहानियाँ बेचने मॉस्को गया हुआ है। कायदे से वापस आकर उसे मुझसे लिपटना चाहिए। लेकिन... आते ही वो अपनी कहानियों से लिपट जाएगा।'

उसके बाद पोलिना उठकर चली गई और अल्तान देर तक पोलिना के बारे में सोचता रहा। पोलिना की बातों का मतलब था कि वो अन्तोन का प्रेम पाने से वंचित थी।

वो खुद को अन्तोन की जगह पर और शाज़ान को पोलिना की जगह पर रखकर सोचने लगा। उसने सोचा कि वो भी तो वही करता है, जो अन्तोन करता है। यह सोचकर उसके बदन में झुरझुरी सी दौड़ गई। उसकी रीढ़ की हड्डी पर पसीना बहता हुआ महसूस हुआ।

रात के डिनर के बाद अल्तान अपने कमरे में सोने चला गया। अन्तोन की ग़ैरहाज़िरी में वो खुद को असहज महसूस कर रहा था जबकि पोलिना के व्यवहार से ऐसा कुछ नहीं लग रहा था। वो बिल्कुल नॉर्मल थी। शायद... ऐसा दो अलग–अलग कल्चर, अलग–अलग तहज़ीबों में पले–बढ़े होने के कारण था।

पोलिना निहायत ख़ूबसूरत औरत थी। स्किन पर संगमरमर सी रंगत और बदन में रबड़ सी लचक। वो दिनभर अपने काम में मसरूफ़ रहती। वो सफ़ाई पसंद और नफ़ासत पसंद औरत थी। उसके घर में धूल या गर्द का नामोनिशान नहीं था। बात करती तो लगता फूल झड़ रहे हैं। यक़ीनन अन्तोन एक खुशकिस्मत शौहर था जिसे इतनी हसीन और प्यारी बीवी मिली थी।

अगली सुबह नाश्ते के टेबल पर अल्तान ने पोलिना से कहा– 'कुछ अपनी कहानी सुनाओ! कैसे तुम अन्तोन की ज़िंदगी में आई! तुम्हारे बाप–दादा क्या करते

थे! वग़ैरह वग़ैरह...।

पोलिना ने हँसते हुए कहा– 'मैं यहाँ के एक स्थानीय किसान की बेटी हूँ। मेरे पिता बौद्ध धर्म मानते हैं। मैं आर्ट्स ग्रेजुएट हूँ। मुझे लिटरेचर में प्रोज बेहद पसंद है। मुझे इंडियन राइटर्स में प्रेमचंद और मंटो पसंद हैं तो रशियन राइटर्स में टॉलस्टॉय और दस्तोयेव्स्की पसंद हैं।

जब मैं ग्रेजुएशन कर रही थी उस समय मिखाइल अन्तोन की कहानियाँ धूम मचा रही थीं। मैं भी उसकी फ़ैन हो गई। जब उसने मॉस्को छोड़कर दरख़ान में बसने का फ़ैसला किया तो मेरी ख़ुशी का ठिकाना न रहा। मैं उसके पास पहुँच गई और उसे शादी का प्रस्ताव दे डाला। उसने मेरा प्रस्ताव स्वीकार भी कर लिया और इस तरह हमारी शादी हो गई। बस... तबसे अब तक कोल्हू के बैल की तरह इस रिश्ते को निभा रही हूँ। बस... यही मेरी कहानी है।

अल्तान ने पहलू बदलते हुए कहा– 'यानी कि तुम इस रिश्ते से ख़ुश नहीं हो?'

'ख़ुश हूँ या नहीं, यह नहीं कह सकती। बस इतना कह सकती हूँ कि मैं अन्तोन को नहीं छोड़ सकती। वो भले मुझसे प्यार करे, ना करे, लेकिन मैं तो उसे बहुत प्यार करती हूँ। उससे भी, उसकी कहानियों से भी।'

'फिर ये गिला क्यों?'

'इसलिए कि मेरी आत्मा और मेरा शरीर, दोनों अतृप्त हैं। अन्तोन मेरी तरफ़ बिल्कुल तवज्जो नहीं देता। दिन हो या रात हो, वो हमेशा अपनी कहानियों में खोया रहता है। मैं रातभर उसके इंतज़ार में जागती रहती हूँ, और वो रातभर मुझसे बेख़बर होकर लिखता या पढ़ता रहता है।'

यह कहते हुए पोलिना उठ गई और अपने घरेलू कामों में मसरूफ़ हो गई। इधर अल्तान एक बार फिर से ख़ुद को अन्तोन की जगह पर और शाज़ान को पोलिना की जगह पर रखकर सोचने लगा। सोचने लगा कि सचमुच में हम साहित्यकार लोग, कहानियों और कविताओं की दुनिया में इस तरह खो जाते हैं कि अपनी निजी ज़िंदगी को नज़रअंदाज़ कर बैठते हैं। हम हक़–तल्फ़ी करते हैं अपने शौहर या बीवी का, अपने बाल–बच्चों का, अपने माँ–बाप का, अपने पूरे परिवार का।

अगले दिन अन्तोन वापस आ गया। उसने अल्तान को देखा तो ख़ुश हो गया और जब यह जाना कि उसकी ग़ैरहाज़िरी में पोलिना ने उसके दोस्त की ख़ूब ख़ातिरदारी की है तो पोलिना का हाथ चूमते हुए कहा– 'तुमने एक ऐसे मेहमान की ख़ातिरदारी की है जो विदेशी है। जिसका अपना यहाँ कोई नहीं। यक़ीनन ये इंडिया जाकर हमारी बेहतरीन मेहमाननवाज़ी के चर्चे करेगा।'

पोलिना का चेहरा ख़ुशी से चमकने लगा। अल्तान ने कहा– 'अन्तोन! तुमने यकीनन बेहतरीन बीवी का इंत्ख़ाब किया है। जिस तरह इसने मेरा ख्याल रखा,

उम्मीद है तुम भी इसका, उसी तरह ख्याल रखोगे!'

रात में तीनों ने साथ में डिनर किया। डिनर के बाद पोलिना सोने चली गई। डिनर के बाद आधी रात तक अल्तान और अन्तोन आपस में कहानियों और कहानीकारों की ज़िंदगी पर बातचीत करते रहे। अल्तान ने कहा– 'अन्तोन! क्या तुम्हें नहीं लगता कि हम लोग अपनी अफ़सानानिगारी के चक्कर में अपने बीवी–बच्चों, अपने घर–परिवार का उचित ख्याल नहीं रख पाते!'

अन्तोन ने जवाब दिया– 'घर–परिवार और बीवी बच्चों को पैसे की ज़रूरत होती है, जो हम देते हैं। अब जब कहानियाँ ही नहीं रहेंगी तो पैसे कहाँ से आएँगे! पैसे नहीं आएँगे तो घर–परिवार कैसे चलेगा! और कहानियाँ सिर्फ़ पैसे ही नहीं देतीं, हमें नाम और शोहरत भी देती हैं। हमें मरने के बाद ज़िंदा भी रखती हैं। तो क्या हम भावनाओं में बहकर, मरने के बाद जिंदा रहने का मोह छोड़ दें!'

अल्तान ने कहा– 'जिस तरह हम कहानियाँ लिखना नहीं छोड़ सकते, ठीक उसी तरह हम अपने बीवी–बच्चों को भी नहीं छोड़ सकते। जो बीवी हमें टाइम–टाइम पर नाश्ता–खाना, चाय–कॉफी उपलब्ध कराती है, क्या उसका कोई अधिकार नहीं है हम पर! मुझे तो इस बात का एहसास हो चुका है... कि हम अपने बीवी–बच्चों के साथ नाइंसाफ़ी कर रहे हैं, भले तुम्हें हो, न हो!'

अन्तोन ने अल्तान की बातों को नज़रअंदाज़ करते हुए कहा – 'चलो दोस्त! रात ज्यादा हो गई है। अब सोने चलते हैं। कल तुम्हें इंडिया लौटना भी है। ओके... गुड नाइट।'

अगली सुबह जब अल्तान एयरपोर्ट जाने के लिए तैयार हो रहा था तो उसने पोलिना की आँखों में छलकता हुआ पानी देखा। पानी पलकों की सीमा तोड़कर बाहर आ रहा था, जिसे वो रूमाल में ज़ज्ब कर रही थी। पोलिना को ग़मज़दा देखकर वो भी ग़मगीन हो गया। उसे अफ़सोस हुआ कि वो पोलिना के ज़ख्मों पर मरहम लगा सकता था, लेकिन लगा न सका।

गाड़ी में बैठने से पहले अल्तान ने कहा– 'अन्तोन! मैं तुम्हारा हमेशा एहसानमंद रहूँगा। तुमने मुझे जो कुछ बताया, जो कुछ सिखाया, वो तुम्हारी तरफ से मेरे लिए बेशक़ीमती तोहफा है। तुम्हारी और तुम्हारी ग़ैरहाज़िरी में तुम्हारी बीवी की मेहमान नवाज़ी से मैं अभिभूत हूँ। इन एहसानात का बदला मैं चुका न सकूँगा। तुम्हारी मुहब्बत को भुला न सकूँगा। बहुत शुक्रिया दोस्त।'

उसने पोलिना की तरफ़ अलविदाई हाथ हिलाया और अन्तोन के साथ गाड़ी में बैठकर एयरपोर्ट के लिए रवाना हो गया।

अगले दिन अल्तान इंडिया आ गया। आने के बाद अपनी बीवी शाज़ान का खूब ख्याल रखने लगा। बीवी के साथ घूमने–फिरने और जी भरकर सोने लगा। हफ्ते भर

उसने कहानियों की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। हफ्ते नहीं बल्कि पूरा महीना बीत गया। जब ख़र्च के लिए पैसों की ज़रूरत पड़ने लगी तो शाज़ान ने कहा– 'बहुत आराम हो चुका। अब लिखना शुरू करो।'

अल्तान ने कहा– 'अफ़साने दिमाग में टँगे नहीं रहते, जो फटाफट लिखना शुरू कर दूँ। जब फ्लो आएगा तो ख़ुद–ब–ख़ुद लिखना शुरू कर दूँगा।'

'तब तक ख़र्च कैसे चलेगा?'

'जैसे भी चले चलाओ। बहुत जल्द पैसों की बारिश होने वाली है।'

'पैसों की बारिश का आश्वासन हज़ार बार सुन चुकी हूँ।'

'यह आश्वासन आखिरी है। जब पैसे आने लगेंगे तो रखने की जगह नहीं मिलेगी।'

'ख़ुदा करे तुम्हारा यह आश्वासन सही साबित हो!'

धीरे–धीरे तीन महीने बीत गए। अल्तान नए प्लॉट और नए कंसेप्ट की तलाश में मंगोलिया क्या गया, राइटर ब्लॉक का शिकार हो गया। अब ख़र्चे को लेकर बीवी शाज़ान से उसकी रोज़–ब–रोज़ बक–झक होने लगी। दिनभर में पाँच–छह कप चाय पीने वाला अल्तान, अब दो कप चाय के लिए भी तरसने लगा।

धीरे–धीरे छह महीने बीत गए। राइटर ब्लॉक ख़त्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था। अल्तान परेशान रहने लगा। कुछ सूझ ही नहीं रहा था, क्या लिखे, क्या नहीं लिखे!

एक दिन सुबह–सुबह टहलते हुए वो एन–एच की तरफ निकल आया। अचानक एक फॉर्च्यूनर गाड़ी, पटरी पर सो रहे चार लोगों को रौंदती हुई निकल गई। ज़मीन पर पड़े लोगों को तड़पते देखकर अल्तान सिर पकड़कर बैठ गया। उसने दुबारा दुर्घटना स्थल की तरफ़ नज़र दौड़ाई तो ख़ून के फव्वारे उबल रहे थे। ख़ून की धार देखकर उसे उल्टी आने लगी। उसकी आँखों के सामने अंधेरा छाने लगा। वो एक घंटे तक वहीं बैठा रहा। एक घंटे बाद एंबुलेंस आई और सबको उठाकर ले गई। उसके बाद वो उठा और आहिस्ता–आहिस्ता अपने घर की तरफ़ चल पड़ा।

उसी रात उसने एक अफ़साना लिखा 'सड़क के क़ातिल' और अगले दिन एक एडीटर को भेज दिया। दो हफ्ते बाद न सिर्फ़ उसे कहानी स्वीकृत होने की सूचना मिली बल्कि पाँच हज़ार रुपये का चेक भी मिला। फिर तो उसके लिखने का सिलसिला शुरू हो गया। राइटर ब्लॉक समाप्त हो गया। अगले छह महीने में छह धमाकेदार कहानियाँ और सभी कहानियों में विदेशी कंसेप्ट जो पाठकों को ख़ूब भा रहे थे। एक से बढ़कर एक अफ़साने जिसे पढ़कर उर्दू के क़ारिईन वाह–वाह कर रहे थे।

अब जाकर अल्तान की जान में जान आई। राइटर ब्लॉक से उसका सामना पहली बार हुआ था। वो जानता था कि हर लेखक की ज़िंदगी में ये आता है लेकिन

ये इतना ख़तरनाक साबित होगा, उसने सोचा नहीं था।

अल्तान की धूम अब पूरे देश में होने लगी है। हिंदी और अंग्रेज़ी के पाठक भी अल्तान की कहानियों की माँग करने लगे हैं। पाठकों की डिमांड पर अब उसकी कहानियों के अनुवाद हिंदी और अंग्रेजी में खूब हो रहे हैं। एक प्रोड्यूसर ने तो उसकी दो कहानियों पर फ़िल्म बनाने का अधिकार ख़रीद लिया है। दो कहानियों के लिए दो लाख... शाज़ान को अब जाकर यक़ीन हुआ है कि पैसों की बारिश वाला अल्तान का आश्वासन कोरा नहीं था।

❑❑❑

**आवो माई धरि धरि जावो**
**गोरषबाला भर भर षावो।**
**झरै न पारा बाजे नाद**
**सति हर सूर न वाद विवाद।**
**पवन गोटिका रहणी अकास**
**महियल अंतर गगन विलास।**
**पयालनीं डीवीं सुनि चढ़ाई**
**कथन्त गोरषनाथ मछीन्द्र बताई**

**गुरु गोरखनाथ**

ओड़िआ कविता

# गोलेणि जे सेदिनूं

**प्रतिभा शतपथी**

पद्मश्री सम्मान से सम्मानित ओड़िआ की
बहुचर्चित कवयित्री

तूमे चालिगोलोणि सेदिनूं
ओथोचो बोंचि रोहिचि मूं––
केबे भाबिथिलि घोटिबो एकोथा
तूमे चालिजिबो, मूं थिबि––
ए कोठोर नियोमरे बाटो चालूचि ये पृथ्वी
आमे सोबू खेळोना ता'पाईं–
तेबे बि केते सोतो थिलो तूमे
तूमो बिना यूं भाबिपारू नोथिलि निजो कू–

जेते प्रियोजोनो मोरो
चालिगोले जोणोका जोण
ये बाटो सोरिबो केबे
केमिति कोन्णो आमे रोहिबा एठि
काहाकू नेइ होसिबा, कांदिबा,
कोथा कोहिबा, गीतो गाइबा,
बिषूबपोणाकू गोळेई कि पीइबा
गोछोलोतांकू आउंसिबा
फूंकिदोबा फूलोकोढ़ो उपोरे
धाड़ि लागिथिबा पिंपूड़िंकू।

बारोहातो फोरो फोरो नेतोकू
ओनाईं ओनाईं गीतो गाइबा
बोणो, बिलो,झीलो टोपिजिबा–
दिने दिने एकाठि भातो खाइबा

 ISSN 0523-1418

हिंदी अनुवाद

# चले गए उस दिन

**राजेन्द्र कुमार मिश्र**

पूर्व उपमहासचिव, विश्व हिंदी सचिवालय, मॉरीशस। हिंदी तथा ओड़िआ में समानांतर लेखन

तुम तो चले गए उस दिन
पर जी रही हूँ मैं
क्या कभी सोचा था ऐसा होगा
तुम चले जाओगे, मैं रह जाऊँगी—
एक कठोर नियम से
राह चल रही है, यह पृथ्वी
हम सभी खिलौने हैं उसके लिए—
तब भी कितने सच्चे थे तुम
सोचा न था कि जी पाऊँगी
तुम्हारे बिना।

सभी प्रियजन मेरे
चले गए बारी—बारी से
यह राह खत्म होगी कब
कैसे रहेंगे हम यहाँ
किसके साथ हँसेंगे, रोएँगे, बतियाएँगे
गीत गाएँगे,
पर्व—त्योहारों में मिल—जुलकर
खुशी मनाएँगे
पेड़—पौधों को सहलाएँगे
फूँककर उड़ाएँगे
फूलों की कलियों पर
कतार बाँधकर जाती चींटियों को।

चारिदिगो घुरिबा, केते को'णो
पुलोको ओ ह्रदोयो बिदारोको
कोथा गोपिबा–
केहि काहा पाखो नो छाड़िबा।

पापानी, तूमे, मूं ओ शोतोपोथी बाबू
कोबिगुरुंको संचोइता पोढ़िबा
आबृती कोरिबा
भाबे, दिने दिने
कोई सूर्योलोको, चंद्रोलोको
नूआ नोक्षोत्रो कि छायापोथोरे
तूमे सोइथिबो–
मूं मुंडो रोखिबि तूमो पादोतोळे
सारा राती बितिजिबो।

ये ओघोटोणो घोटेना केबे
तूमे मोते कोथा कोहिनो
आउ काव्योगानो कोरिनो केबे।
किंतु दिने जे जिबाकू हेब,
जोणोकू जोणो प्रियजनंकू
छाड़ि कि, आमे घासोबूदारे पादो थोइबा।
सोबू सोरिगोला पोरे बि
कांदि नो पारिबा–
भितोरे भितोरे झूरी मोरिबा–
तूमे चालिगोला पोरे बि
मोरो एइ निरुपाय बंचि रहिबा।
(स्वर्गीय महापात्र नीलमणि साहू को समर्पित)

❑❑❑

बारह हाथ का फर–फर उड़ता
श्रीमंदिर का पताका देखते हुए
भजन गाते–गाते
जंगल, खेत, झील, पार कर जाएँगे
कभी–कभी इकट्ठे बैठकर खाएँगे
चारों ओर घूमेंगे, ढेरों
पुलक और हृदय विदारक
बातें करेंगे–
एक दूसरे से दूर नहीं जाएँगे।
आप, आपकी पत्नी, मैं और मेरे पति
कवि–गुरु की 'संचयिता' पढ़ेंगे–पाठ करेंगे
सोचती हूँ कभी–कभी
सूर्यलोक, चंद्रलोक
नए नक्षत्र या छायापथ पर
सोये होगे तुम–
मैं सिर रखूँगी तुम्हारे चरणों में
पूरी रात बीत जाएगी।

पर ऐसा होता नहीं कभी
तुमने मुझसे बातें नहीं कीं
और काव्य–गान नहीं किया कभी
किंतु किसी न किसी दिन
प्रियजनों को छोड़
हम मरघट पर पैर रखेंगे।
सब कुछ खत्म हो जाने पर भी
रो नहीं पाएँगे–
अंदर ही अंदर तड़पेंगे–
तुम्हारे चले जाने पर भी
मेरी लाचारी है,
इस तरह जीवित रहना।

❑❑❑

(स्वर्गीय महापात्र नीलमणि साहू को समर्पित)

गुजराती कविता

# तडकाओ तोडीने जोयुं तो लाग्युं!

**गौरांग दिवेटिया**
बीमा कंपनी में एक्जीक्यूटिव पद से सेवानिवृत्त,
गुजराती गजल और गीत रचना में विशेष रुचि

तडकाओ तोडीने जोयुं तो लाग्युं,
के सूरज जेवुं तो कशुं छे ज नहि,
पडछाया ढंढोळी जोयुं तो लाग्युं,
के माणस जेवुं तो कशुं छे ज नहि।

कलरवना देशमां चारेकोर चर्चाती,
टहुको खोवायानी वारता,
सांभळयुं छे छूटेला टहुकानी यादमां,
पंखीओ आँसु नथी सारता,
पांखो पंपाळीने जोयुं तो लाग्युं,
के उड्या जेवुं तो कशुं छे ज नहि।

मानशे नहि पण अळगुं लागे छे,
आ खीलता रहेवानुं बंधु सुख,
साचुं पूछो तो आमां पोतीकुं लागे छे,
खरतां जवानुं बधुं दुःख
थंभेली क्षणोंमां जई बेठा तो लाग्युं
के खरवुं–खीलवुं कशुं छे ज नहि।

❑❑❑

हिंदी अनुवाद

# देखा तो लगा!

**नयना डेलीवाला**
पूर्व एसोसियेट प्रोफेसर, एफ.डी.आर्ट्स एवं कॉमर्स कॉलेज, यमालपुर, अहमदाबाद

धूप को तोड़कर देखा तो लगा,
कि सूरज जैसा कुछ है ही नहीं,
परछाँई की पड़ताल की तो लगा,
मानव जैसा कुछ है ही नहीं।

कलरव के प्रदेश में चोतरफ चर्चित,
कूहु खो जाने की कथा,
सुना है बिछड़े कूहु की याद में,
पंछी आँसू नही बहाते,
पंखों को सहला के देखा तो लगा,
कि उड़ने जैसा कुछ है ही नहीं।

मानोगे नहीं, पर कुछ अलग ही लग रहा है,
खिलते रहने का सारा सुख,
सच पूछो तो इसमें लगता है अपनापन,
झड़ जाने का सारा दुःख,
स्तब्ध पलों में बैठा तो लगा,
कि झड़ना–खिलना तो कुछ है ही नहीं।

❑❑❑

हिंदी कविता

# क्षणिकाएँ

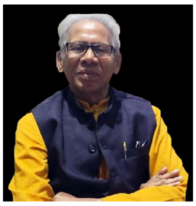

**माणिक मृगेश**

पत्र–पत्रिकाओं में लेखन तथा विभिन्न मंचों से काव्यपाठ। संप्रति: संपादक, हिंदी–प्रभा (पश्चिमांचल हिंदी प्रचार समिति)

**पीड़ा**

कहाँ तक बताएँ
छोटे बैग में कपड़े
बड़े में दवाएँ

**प्रेम**

प्रेम
पहले भी
बंध था
अब भी बंध है
पहले संबंध था
अब अनुबंध है

**बड़े लोग**

बड़े लोग
वो ही हैं होते
मात–पिता के सिवा
रहें जिनके घर
कुत्ता बिल्ली तोते

**अपने**

अपने तो
अपने होते हैं
नहीं बात में दम
सही बात तो यह है कि
अपने ही ज्यादा देते हैं ग़म

**कविता–बविता**

जब उन्हें
ज्ञात हुआ कि हम–
लिखते हैं
कविता–बविता छंद
घर बुलाना ही कर दिया है बंद

**गौ माता**

दूध दे
तब तक नाता
उसके बाद
कौन किसका वत्स
कौन किसकी माता ?

**आदमी**

आदमी हूँ हुज़ूर
मगर
आदमियत से बहुत दूर

❑❑❑

**जो रहीम ओछो बढ़ै,**
**तौ अति ही इतराय।**
**प्यादे सों फरजी भयो,**
**टेढ़ो टेढ़ो जाय।।**

**–रहीम**

हिंदी कविता

# कि स्त्रियाँ बाँध रही हैं धागे

**सुशांत सुप्रिय**
सुप्रसिद्ध कहानीकार, कवि एवं अनुवादक

श्श्श!
कि स्त्रियाँ बाँध रही हैं धागे
इस वृक्ष के तने से
ये विश्वास के धागे हैं
जो जोड़ते हैं स्त्रियों को
ईश्वर से।

केवल स्त्रियों में है वह ताक़त
जो वृक्ष को ईश्वर में बदल दे।

श्श्श!
कि गीत गा रही हैं स्त्रियाँ
पूजा करते हुए इस वृक्ष की
ये विश्वास के गीत हैं
जो जोड़ते हैं स्त्रियों को
ईश्वर से।

केवल स्त्रियों में है वह भक्ति
जो गीत को प्रार्थना में बदल दे।

आश्वस्त हैं स्त्रियाँ अपनी आस्था में
कि वृक्ष के तने से बँधे धागे
उनकी प्रार्थना को जोड़ रहे हैं
उनके आदिम ईश्वर से।

❑❑❑

# रूहानी रात और उसके बाद: एक ईमानदार अभिव्यक्ति

**अलका सिन्हा**
एयर इंडिया से सेवानिवृत्त, 'जी–मेल एक्सप्रेस' उपन्यास तथा कई कहानी एवं कविता संग्रह प्रकाशित

**सुनीला नारंग**
संपादक, 'मुस्कान' ई–पत्रिका, साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन

प्रतिष्ठित साहित्यकार अलका सिन्हा की डायरी 'रूहानी रात और उसके बाद' में सिमटे 168 पन्ने अलका जी के जीवन की कहानी कहते हैं, अपने समय और समाज की कहानी कहते हैं, प्रकृति की कहानी कहते हैं, गाँव और शहर की कहानी कहते हैं। साथ ही साथ डायरी के ये पन्ने पाठकों के मन की कहानी भी कहते हैं। भले ही यह लेखिका की निजी डायरी है, फिर भी इसे सार्वजनिक कर लेखिका ने अपने समय और समाज को भी जोड़ने का अप्रतिम कार्य किया है।

अलका जी 'अपनी बात' में लिखती हैं, ''यह डायरी मेरा अक्स है। खुद से आँख मिलाकर अपनी बात कहने की ताकत, सही को सही और गलत को गलत कहने की कूवत मुझे इसी डायरी से मिली। स्त्री अस्मिता और जीवन मूल्यों के लिए तनकर खड़े रहने का जीवट मिला। अगर मैं समझौता कर लेती तो खुद का सामना कैसे करती!'' (पृ. 10)

स्वयं का साक्षात्कार करती इस डायरी का पहला अंश 'रूहानी रात और उसके बाद' अपने नाम को सार्थक करता है जब 21 अगस्त से 31 अगस्त 2008 को 'यूके हिंदी समिति और नेहरू सेंटर, लंदन' द्वारा आयोजित अंतरराष्ट्रीय कवि सम्मेलन में प्रतिभागिता करने वह अन्य कवियों के साथ ब्रिटेन जाती हैं और 31 अगस्त को वॉल्वर हैंपटन में इस श्रृंखला का अंतिम कवि सम्मेलन हो जाने के बाद तितिक्षा शाह के घर बीती रूहानी रात का जिक्र करती हैं। वह तितिक्षा के व्यक्तित्व से प्रभावित होती हैं। रूहानी रात के वे पल आज भी लेखिका के स्मृतिपटल पर अंकित हैं और साथ ही अंकित है विमान छूट जाने की आशंका में बिताए वो बेतहाशा पल जो लेखिका के लिए अविस्मरणीय तो हैं ही, साथ ही एक सीख भी देते हैं।

'''मैं देख रही थी कि हड़बड़ाहट व्यक्ति की सामान्य सोच–समझ तक छीन लेती है... मैं सोच रही थी कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मानसिक संतुलन बनाए रखना और चुनौतियों का सामना करना चाहिए...''(पृ. 22)

---

रूहानी रात और उसके बाद (डायरी), अलका सिन्हा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण: 2024 मूल्य: ₹295, पृष्ठ:168

'मुसलमान आतंकवादी होते हैं क्या?' शीर्षक से लेखिका समाज की एक गंभीर समस्या की तरफ इशारा करती हैं, एक्सेप्टेंस की समस्या। यह समस्या हिंदू–मुस्लिम तक ही सीमित नहीं, कभी दलित–गैर दलित तो कभी स्त्री–पुरुष के बीच एक–दूसरे के एक्सेप्ट न किए जाने की पीड़ा और असमानता की समस्या है जिसका समाधान होना बाकी है। अपना मंतव्य दिए बिना वह इस समस्या को पाठकों के समक्ष रख देती हैं ताकि वे समानुभूति के भाव से इस पर चिंतन–मंथन करें। इसका मतलब यह कदापि न लगाया जाए कि लेखिका ने इस विवादित विषय से पल्ला झाड़ लिया है क्योंकि 'हिंदू–मुस्लिम भाई–भाई' का जीवंत उदाहरण बनी उस घटना को भरपूर आत्मीयता से लिखती हैं जब हीथ्रो एयरपोर्ट पर बिना पासपोर्ट बेहद परेशान हालत में केवल हिंदी–उर्दू जुबान को सुनकर एक मुस्लिम यात्री उनकी सहायता करता है।

जहाँ हिंदी भाषा का भाव लेखिका को अंग्रेजों के देश में अपनेपन का भाव जगाता है वहीं 'सुपारी के बाजार में' शीर्षक से 7 जनवरी 2010 को लिखी गई डायरी में इसी भाषा के कारण आक्रामक स्थिति उत्पन्न हो जाती है और लेखिका सोचने पर विवश हो जाती है। "रातभर मैं सो नहीं पाई। इन युवकों के दोनों रूप दिमाग में चक्कर काटते रहे। राह को आक्रामक ढंग से अवरुद्ध करते हुए बाइक का रुकना, गले में मफलर लपेटे युवक का तेज़ स्वर में 'लोकल–लोकल' बोलना... फिर अगले दृश्य में हाथ घुमाकर पूरा असम घूमने की निश्चिंतता देना। सोचती हूँ कि अगर हम इनकी या ये हमारी बात समझने में चूक जाते तो? अगर हमारे बीच अभिव्यक्ति में भाव के बदले भाषाप्रधान हो जाती और हम एक–दूसरे को ठीक से समझ नहीं पाते... तो? शुक्र है कि अभी भी हम भाव को भाषा से ऊपर रखते हैं और व्यवहार में हमारे हाव–भाव भाषा से अधिक संवाद करते हैं।" (पृ.– 39)

ऐसे कई प्रसंग डायरी के इन पन्नों में बराबर उभरते हैं जो किसी व्यक्ति के निजी होते हुए भी, एक व्यापक वर्ग को प्रभावित करते हैं। बहुभाषिकता जो हमारे देश का सौंदर्य है, उसे वोट की राजनीति में किस कदर मुद्दा बना दिया गया है, लेखिका इस बात को बहुत गंभीरता से अनुभव करती हैं और पाठकों को इस ओर सजग भी करती हैं।

10 जनवरी 2010 को 'कामाख्या' मंदिर में बलि के रूप में भैंसे का कटा हुआ सिर देखकर लेखिका बहुत ही आहत होती हैं और पूछ बैठती हैं "मंदिर की प्रदक्षिणा करते हुए भी मन में कोई कामना, कोई इच्छा नहीं कौंधी, बस एक सवाल रट लगाता रहा––आखिर कैसी माँ हो तुम जिसे प्रसन्न करने के लिए उसी के बनाए जीवों की बलि देनी पड़ती है?" (पृ. 45)

अपने मानसिक विश्लेषण के दौरान लेखिका ऐसे कई प्रश्न उठाती हैं जो सजग समाज के लिए आवश्यक हैं। वह पूछती हैं कि संदेह की बातें, धोखाधड़ी के किस्से

तो लगातार वायरल किए जाते हैं मगर ऐसी घटनाओं की चर्चा क्यों नहीं की जाती जहाँ विश्वास जीता है और संदेह हारा है?

'गुवा' माने सुपारी और 'हाट' मतलब दुकान, यानी जहाँ सुपारी का बाजार लगता हो, वह हुआ 'गुवाहाटी'। लेखिका इस जानकारी को बहुत खूबसूरती से साझा करती हैं। ब्रह्मपुत्र के प्रति लेखिका का आकर्षण, जल पर चलती 'फेरी' (नौका) में कविता पाठ का आनंद और 'सिलपोखरी' के साथ कविता के रूप में लेखिका का प्रथम संवाद, लेखिका के प्रकृति प्रेम को उजागर करता है। अलका जी पर्यावरण को केवल प्रेम नहीं करतीं बल्कि उसके प्रति पर्याप्त सजग भी हैं और डायरी के माध्यम से अपने पाठकों को भी इस ओर लगातार सजग करती चलती हैं। 'रहना नहीं देस बिराना है' में पर्यावरण के प्रति हमारी उदासीनता और बर्बरता को बहुत मार्मिक ढंग से रखा गया है जहाँ लेखिका सड़क के बीचों–बीच विशालकाय पेड़ की शाखा को किसी लाश की तरह पड़ा हुआ महसूस करती है और उसके साथ हुए आंतरिक संवाद से पाठकों के मन में सजगता भरती है, ''तुम्हारे लिए सिर्फ मकान, दुकान की अहमियत है। हरे, छायादार पेड़ों की तुम्हें क्या जरूरत है?'' किसी आंदोलनकारी की तरह मरते हुए भी वह पेड़ अपनी वकालत कर रहा था।(पृ–83)

'चंदन की सुवास और रेशम का एहसास' मैसूर भ्रमण के माध्यम से हमारी ऐतिहासिक संपन्नता और उसमें लगते ब्रिटिश ग्रहण की कथा कहता है। गाइड के चुटीले अंदाज में मिली जानकारी रोचक और ज्ञानवर्धक मालूम पड़ती है। मैसूर महल, वृंदावन गार्डन, म्यूजिकल फाउंटेन के खूबसूरत रास्तों से होते हुए पाठक भी एक अविस्मरणीय यात्रा का आनंद उठाता है।

यह डायरी अपने समय का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बनकर सामने आती है जब पाठक 'औरत खड़ी बाजार में' के माध्यम से निर्भया कांड की संवेदना से रूबरू होता है। ऐसे कठिन समय में पुलिस और प्रशासन की भूमिका तो उजागर होती ही है, आम जनता का दायित्व बोध भी अपनी तरह से उभरता है। न्याय प्रणाली और जनता की उससे अपेक्षाएँ भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। इसी के अगले अंश में एक आंदोलनकारी महिला भगत सिंह का नया चेहरा बनकर उजागर होती है, जो पाठकों को नयी ऊर्जा से भरता है।

'ई–मुलाकात@फेसबुक.कॉम' शीर्षक से 20 अगस्त 2013 को लिखी गई डायरी उस आभासी दुनिया का परिचय कराती है जिसमें लेखिका की अपने पुराने मित्रों के साथ मुलाकात का सुखद अनुभव है। इसका वर्णन चमत्कृत करता है। फेसबुक के माध्यम से तीस–चालीस वर्ष पूर्व मित्रों से दोबारा संपर्क करना बहुत सुखद है। खाने–पीने की सुंदर व्यवस्था, संगीत का माहौल और नीली बत्तियों में बीती बातों को दोहराना बेहद रोमांचक हो उठता है।

तिहाड़ जेल की ऊँची दीवारों से होते हुए वहाँ के कैदियों के बारे में जानना कहीं न कहीं गांधी जी का वह संदेश भी दे जाता है कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। जेल के इंतजामात और कैदियों की मानसिक स्थितियों का मार्मिक चित्रण पाठक को अलग तरह से सोचने को विवश करता है।

'जनता कर्फ्यू' शीर्षक से 22 मार्च 2020 से 26 अप्रैल 2020 तक की डायरी लॉकडाउन के संघर्ष को बहुत ईमानदारी से खोलती है। उस अलग तरह के दौर में हुए विलक्षण अनुभवों का बही–खाता इन पन्नों में देखा जा सकता है। कोरोना काल के साक्षी बने डायरी के इन पन्नों में घर की चारदीवारी में कैद होकर किए जाने वाले कामों का खाका, वर्क फ्रॉम होम की नई संकल्पना, अपने विलंबित और मनचाहे कामों को अंजाम देने के अवसर के अलग–अलग रूप दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं के बीच ऑनलाइन काव्य गोष्ठी, ऑनलाइन टेक्निकल ट्रेनिंग, बरगद बाबा से बतियाना, खुद से मुलाकात, प्रकृति से मुलाकात और पहले लाइव कार्यक्रम का जिक्र बेहद रोचक है।

प्रकृति की तरह ही गाँव भी लेखिका का आकर्षण रहा है। यह बात 29 अक्टूबर 2021 को लिखी गई डायरी 'कैलाश पहाड़ी चलेंगे मेरे साथ' में बखूबी अनुभव की जा सकती है। विवाह के बाद लेखिका अपने पति मनु जी के साथ अपने दादा के घर 'बीरगाँव' जाती है जहाँ उसके बचपन की यादें आज भी वैसी ही संजोई मिलती हैं। यहाँ दोनों बातें महसूस करने की हैं। एक तो यह कि अलका सिन्हा का अपने गाँव की मौलिकता से आत्मीय प्रेम और दूसरा, लंबे अरसे बाद भी गाँव में किसी तरह का विकास न होना। सवाल यह भी उठता है कि अगर विकास का अर्थ गाँव को शहर बना देना है तो फिर गाँव को प्रेम करने वाले कहाँ जाएँगे? इस डायरी में अलका सिन्हा अपने यौवन काल के दिनों का भी एक संस्मरण दोहराती हैं जहाँ उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उनके विवाह के लिए किसी फौजी का प्रस्ताव आता है और वह घबराकर उस उद्घोषणा से भी किनारा कर जाती हैं जिसका हिस्सा बनना उनका सपना रहा था। वह लिखती हैं कि अपनी उस नादानी के कारण उस उद्घोषणा के अवसर को चूक जाने का मलाल उन्हें आज भी है और आज भी वह सपना उनके मन–आकाश में बादल सा तैरता प्रतीत होता है।

'साहित्य प्रेमियों का संगम––प्रयागराज' 26 दिसंबर 2021 को लिखी गई डायरी में लेखिका साहित्यकारों के गढ़ प्रयागराज का उल्लेख करती हैं जिसमें हरिवंशराय बच्चन, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत और सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के निवास स्थान का भी चित्रण है। करुणेश जी द्वारा महादेवी वर्मा के निवास स्थान के रखरखाव की जिम्मेदारी का अपेक्षित ढंग से निर्वहन न कर पाने की करुणा भी इसमें शामिल है।

वॉलयंटरी रिटायरमेंट का उद्‌घोष करती 31 अगस्त 2022 को लिखी डायरी 'छोड़ आए हम वो गलियाँ' बहुत कम शब्दों में उस व्यथा को उजागर करती है जिसमें पड़कर प्रायः हम अपनी जिम्मेदारियों की फेहरिस्त पूरी करते हुए अपनी इच्छाओं को परित्याग करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। यहाँ कलम के प्रति लेखिका का आत्मीय लगाव बहुत मार्मिक ढंग से उभरता है जो कम शब्दों के बावजूद गहरे में जा पैठता है।

अंत में 29 अक्टूबर 2023 को लिखी 'मन्नत के धागों–सी कविताएँ' में लेखिका साहित्य के एक पेड़ का जिक्र करती हैं जिसके नीचे साहित्यिक पुस्तकों का ठीया है जिसे संजना तिवारी चला रही हैं। उस पेड़ के नीचे मिले बुकमार्क का सरप्राइज और काव्य पाठ का अनुभव लेखिका के मन में एक नई आशा और विश्वास की किरण जगाता है।

कहना न होगा कि यह डायरी निजी होते हुए भी सार्वजनिक बन पड़ती है क्योंकि इसमें निहित व्यक्ति सजग सामाजिक प्राणी बनकर अपने आसपास हो रही गतिविधियों के पक्ष और प्रतिरोध में आवाज उठाता है। वह समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करने को तत्पर है। इन पन्नों में कहीं सर उठाती समस्याएँ हैं तो कहीं समस्याओं के निवारण के विकल्प। मानसिक मंथन को ललकारते ज्वलंत प्रश्न हैं तो कहीं प्रकृति और पर्यावरण के प्रति सजगता। कहीं आत्मविश्लेषण है तो कहीं नैतिक मूल्यों का सुंदर संस्कार। इसमें संदेह नहीं कि यह डायरी हर कोण से पाठक को बेहतर मनुष्य होने के लिए प्रेरित करती है। इसकी ईमानदारी और सकारात्मक सोच एक बेहतर दुनिया का जो चित्र खींचती है वह पाठक को प्रेरित करती है। लेखक और पाठक दोनों ही समाज के अभिन्न अंग हैं। यह डायरी निश्चित तौर पर हर वर्ग के पाठक को अपनी–सी लगेगी और बेहतर सोच का नया मार्ग प्रशस्त करेगी।

# ‘अगम बहै दरियाव’ : समकालीन अवधी समाज की महागाथा

**शिवमूर्ति**
सुप्रसिद्ध कथाकार, ग्रामीण जीवन के विश्वसनीय ख्यातिलब्ध उपन्यासकार। ‘कसाई बाड़ा’, तिरिया चरित्तर आदि रचनाओं के लेखक तथा प्रतिष्ठित पुरस्कारों से सम्मानित

**आनंद पांडेय**
सुपरिचित आलोचक और कथाकार, संप्रतिः राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, पुणे में सहायक प्रोफेसर

स्थापित कथाकार शिवमूर्ति का उपन्यास ‘अगम बहै दरियाव’ जातीय परंपरा और सामयिक कथानक को एक साथ जीवंत बनाता है। उपन्यास यह याद दिलाता है कि कथाकार ‘गोदान’, ‘मैला आँचल’ और ‘राग दरबारी’ की कथा परंपरा का लेखक है। इसमें ‘गोदान’ जैसी किसान जीवन की त्रासदी है, ‘मैला आँचल’ की लोकसंस्कृति के धूल और फूल हैं, जाति–चेतना है, तो ‘रागदरबारी’ की तरह का सरकारी संस्थाओं का दुर्व्यवहार और व्यंग्य भी है। एक साथ इतने आयाम समेटने के कारण ही यह हिंदी की जातीय उपन्यास परंपरा की प्रतिनिधि कृतियों में से एक बनता है।

हिंदी उपन्यास की परंपरा से जुड़ते हुए आज के अवध के ग्रामीण जीवन को समग्रता में चित्रित करना एक कलात्मक सिद्धि की माँग करता है। इस माँग को शिवमूर्ति ने हासिल किया है। उनके कथा साहित्य से परिचित लोग यह कह सकते हैं कि यह उनकी चिरपरिचित अपनी भूमि और शैली है। फिर इस उपन्यास की उपलब्धि क्या है? एक ही जमाने की, एक ही जमीन की और एक ही जीवट की कहानियों को उन्होंने कई बार कहा है। इस उपन्यास में उनके पूर्ववर्ती साहित्य की छवियाँ और अंतर्ध्वनियाँ बार–बार सुनाई देती हैं। फिर भी इस उपन्यास ने उनके कथा संसार को वैसे ही मुकम्मल बनाया है जैसे उनकी कथा को। इस उपन्यास में उन्होंने अपनी भूमि और शैली को न छोड़ते हुए भी उसे महाकाव्यात्मक सघनता और व्यापकता दी है।

इस उपन्यास के माध्यम से अवध क्षेत्र की संस्कृति, समाज, राजनीति की एक मुकम्मल पहचान बनती है। उपन्यास के पिछले आवरण पर ठीक ही लिखा है, ‘उत्तर भारतीय ग्रामीण जनजीवन की मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक कथा!’ ‘अगम बहै दरियाव’

अगम बहै दरियाव (उपन्यास) शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण–2024 पृष्ठ 588, मूल्य : 599 रुपये

अवधी समाज की अगम संस्कृति और जीवन का रूपक है। असल में, उपन्यास की एक बड़ी उपलब्धि ही यही है कि यह अवधी समाज के एक–एक पक्ष को शामिल करता है। नायक–प्रतिनायक खड़ा करने के स्थान पर उपन्यासकार का ध्यान उस पूरी कथा को कहने पर है जो समाज के पूरे कोलाज को एकसूत्र में बाँधती है।

यह भारत के व्यापक इतिहास की गोद में बैठे अवध क्षेत्र का समकालीन इतिहास है। आपातकाल से लेकर हाल–फिलहाल तक का इतिहास अपनी गति में चलता है। तमाम राजनीतिक उठापटक, आंदोलन, सामाजिक मंथन और परिवर्तन को समेटे हुए 'दरियाव' एक गाँव की कहानी है। इतिहास लेखन में स्थानीयता की माँग होती रही है। राष्ट्रीय, प्रांतीय, जनपदीय के साथ–साथ ग्रामीण इतिहास लेखन की तमाम स्वर लहरियों को इस उपन्यास में जगह मिली है। इसमें आज़ाद भारत की ही नहीं आज़ादी की लड़ाई की भी तमाम प्रतिध्वनियाँ सुनाई देती हैं। तमाम विचारों, दलों, आंदोलनों को इतिहास और साहित्य की यथार्थवादी दृष्टि से खराद पर चढ़ाया गया है और उनकी निर्मम समीक्षा की गई है।

भारतीय समाज जातिगत और वर्गगत दोनों विषमताओं से जूझता रहा है। जाति के सवाल को उठाने पर वर्ग का सवाल बेमानी लगता है तो वर्ग का सवाल उठाने पर जाति के प्रश्नों की उपेक्षा होती है। शिवमूर्ति ने जाति और वर्ग दोनों के सवालों का सफलतापूर्वक समन्वय किया है। उनके लिए दोनों सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उनके उपन्यास में जातिवाद के विरुद्ध संघर्ष करने वाले पात्र हैं तो समस्याओं को वर्गीय दृष्टि से रखने वाला एक युवा वामपंथी भी है जो उपन्यास में एक उपेक्षित पात्र होने के बावजूद वाम दृष्टि को प्रस्तुत करता है। शिवमूर्ति ने बड़ी कुशलता से इस युवा पात्र का सृजन और समायोजन किया है। इसके अतिरिक्त एक क्षत्रिय पात्र भी है जो खेतिहर श्रमिकों की मजदूरी की बढ़ोत्तरी के लिए हड़ताल कराता है लेकिन एक दिन रात के अँधेरे में मार दिया जाता है। उसके शागिर्द को ही उसका हत्यारा सिद्ध करके आजीवन कारावास दे दिया जाता है। लेकिन जैसे कथा–काल के अवध क्षेत्र में वामपंथी आंदोलन कहीं दिखाई नहीं देता है वैसे ही ये पात्र भी बिजली की कौंध की तरह आकर लुप्त हो जाते हैं। जाति और वर्ग के सवालों को न्यायपूर्ण ढंग से उठाने के बावजूद शिवमूर्ति कोई काल्पनिक सशस्त्र मजदूर आंदोलन नहीं खड़ा करते हैं। नक्सलबाड़ी आंदोलन की अनुगूँज यदि वे पैदा करते तो यह अस्वाभाविक ही होता और अंततोगत्वा अनौचित्य का शिकार हो जाता।

अवध का यह इलाका औद्योगिकीकरण से बहुत दूर है इसलिए यहाँ औद्योगिक श्रमिकों के आंदोलन की नहीं बल्कि किसान आंदोलन की गुंजाइश और जरूरत है। आर्थिक समस्याएँ इस इलाके में किसान समस्याओं के रूप में ही स्वाभाविक और उचित लगतीं। इसलिए उपन्यासकार जाति वगैरह की बातें करने के बाद धीरे–धीरे किसानों की समस्याओं को उठाता है। अंत तक यह उपन्यास किसान जीवन की

महागाथा के रूप में सघन हो जाता है।

जातियों में बिखरे संघर्षरत समाज को उपन्यासकार बड़े कौशल से कृषि समस्याओं के इर्दगिर्द एकजुट करने की कोशिश करता है। अगड़े–पिछड़े, और हिंदू–मुसलमान सभी इस समस्या से ग्रस्त हैं। इसलिए वे कम से कम इस मुद्दे पर एक साथ आ सकते हैं पर एकता की राह में 'जातिवादी ज़हर' बड़ा अड़ंगा बनता है। गन्ना मिलों के अत्याचार से जब किसानों के जुटान और प्रदर्शन का कार्यक्रम बनता है तो कुछ लोग ही आते हैं। रामखेलावन जो प्रदर्शन के अगुवा थे, उन्हें लगता है कि लोग उनकी अगुवाई में जाति के कारण नहीं आते हैं तो पांडे उन्हें समझाते हैं, "इस तरह की सोच हो तब भी उसको उभाड़ने से कोई फायदा नहीं होगा, खेलावन। फिर सबको जोड़ा जाएगा।" खेलावन जवाब में कहते हैं, "यह जातिवाद का ज़हर हमें कदम–कदम पर फेल करेगा, महाराज!" खेलावन को लगता है, "जातिवादी अलगाव न होता तो कितनी एकता होती गाँव में। फौलाद जैसी एकता!" खेलावन की आशंका के बावजूद सभी जातियों के सारे तो नहीं लेकिन काम भर लोग आए। प्रदर्शन हुआ, भाषण हुए। पुलिसिया प्रहार हुआ।

केवल दलित इस प्रश्न से बड़े पैमाने पर नहीं जुड़ते हैं क्योंकि वे अधिकांशतः खेतिहर नहीं हैं। अधिकांशतः उनके शोषक और उत्पीड़क खेतिहर लोग हैं। अगड़े या पिछड़े। मजदूरी बढ़ाने की माँग असल में दलित खेतिहर मजदूरों और किसानों के बीच तनाव का कारण बनती रही है। किसान आंदोलन किसानों के लिए होता रहा है लेकिन कृषि श्रमिकों के मुद्दे पर किसान आंदोलन मौन रहता आया है जबकि किसान उन श्रमिकों के बिना नहीं रह सकते जो अधिकांशतः दलित जातियों से आते हैं। शिवमूर्ति किसान बनाम श्रमिक के तनाव को रेखांकित करते हैं लेकिन कथानक की माँग की वजह से उसे अधिक विस्तार नहीं देते हैं। इसकी बजाय वे दलितों के सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन और चेतना के विकास को विस्तार से अपने उपन्यास में उठाते हैं। उत्तरप्रदेश के बहुजन आंदोलन के उभार और पतन की बड़ी प्रामाणिक और अंतर्दृष्टिपूर्ण कहानी शिवमूर्ति के इस उपन्यास की विशेष उपलब्धि है। वे दिखाते हैं कि कांशीराम के नेतृत्व में उत्तर भारत में बहुजन आंदोलन दलितों में एक नयी चेतना और राजनीतिक–सामाजिक ध्रुवीकरण को जन्म देता है लेकिन किसी भी मूल्य पर सत्ता हासिल करने की इस आंदोलन की नीति–नीयत उन तमाम नेताओं–कार्यकर्ताओं की फसल को नष्ट कर देती है जो बड़े लक्ष्य से प्रतिबद्ध होकर तमाम कष्ट सहते हुए अंकुरित हुई थी। बसपा कार्यकर्ता तूफानी की कहानी ऐसे नेताओं की प्रतिनिधि कहानी है जो आंदोलन में जान डालते हैं लेकिन सत्ता और टिकट की दौड़ में किनारे लगा दिए जाते हैं फलतः हतोत्साहित और निराश होकर रह जाते हैं। उन्हें लगता है कि उनके साथ छल हुआ है।

कभी कभार ऐसा दिखता है कि जनता दलितों के खिलाफ अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए भी एकजुट होती है। ऐसा एक प्रसंग शिवमूर्ति ने उपन्यास में नियोजित किया है। ज्वाला सिंह एक अत्याचारी जमींदार है। छांगुर पासी उसका कारिंदा है। एक बार वह तीन दिन तक काम पर नहीं आया तो चौथे दिन ज्वाला सिंह हाथी पर बैठकर उसके घर चला गया। छांगुर ने बताया कि उसका बेटा बीमार था इसलिए वह काम पर नहीं जा सका। ज्वाला सिंह ने बच्चे को दिखाने के लिए कहा। पासी ने बच्चे को गोद में लाकर दिखाया। 'दुबला–पतला, पीला बच्चा। पसलियाँ चलती हुईं। ज्वाला सिंह ने हाथी पर बैठे–बैठे बच्चे के पेट में बरछी घोंपी और हवा में उठाकर पटक दिया।' गाँव वालों में ज्वाला सिंह के खिलाफ आक्रोश भर गया। जाति–पाँति का भेद भूलकर सबने ज्वाला सिंह की कोठी घेर ली। दिनभर घेरेबंदी चली। घोड़साल और भुसौला जनता ने फूँक दिया। पुलिस न आई होती तो लोग कोठी भी आग के हवाले करने को उतारू थे। भगवत पांडे, जो एक किसान के रूप में हर तरह के दुर्दिन देखते हैं, के बाबा भी इस घेराव में शामिल थे। भीड़ ने ज्वाला सिंह की हत्या कर दी। छांगुर पासी को फाँसी, दरियाव पाँड़े और दो गड़रिया भाइयों को आजीवन कारावास की सजा हुई। बाउर पांडे ने घोषणा की– 'जमींदारी प्रथा खतम हो गयी, बाबू।'

'अगम बहै दरियाव' एक गाँव की कथा है इसलिए इसमें तमाम प्रमुख–अप्रमुख पात्र हैं लेकिन कुछ पात्र ऐसे हैं जो न केवल सशक्त और दीर्घजीवी हैं बल्कि लेखक के चरित्रविन्यास का साक्ष्य भी हैं। संतोखी नाई एक ऐसा ही पात्र है जो 'रंगभूमि' के सूरदास और 'मैला आँचल' के बावनदास का उत्तराधिकारी है। संघर्ष, जिजीविषा, और सत्य की साक्षात प्रतिमूर्ति। छत्रधारी सिंह किसी न किसी बहाने लोगों की ज़मीन हड़पने के लिए कुख्यात हैं। उन्होंने संतोखी की जमीन का फर्जी बैनामा करा लिया है। संतोखी को अचानक तब पता चलता है कि उसका खेत जा चुका है जब वह आषाढ़ की पहली बारिश के बाद खेत में काम करने के उद्देश्य से जाता है। वह देखता है कि छत्रधारी सिंह के हलवाहे उसका खेत जोत रहे हैं। हलवाहों के कहने पर वह छत्रधारी के घर जाता है। जहाँ उसे छत्रधारी बताता है कि यह खेत उसके पिता ने कर्ज न चुका पाने के बदले मरने से कुछ दिन पहले उसके नाम लिख दिया है। संतोखी सारी अन्याय कथा समझ जाता है। विनम्रता और स्वाभिमान के मिले–जुले भाव से कहता है, 'आपसे नहीं राजा, अन्याय से लड़ूँगा। लड़ूँगा नहीं तो दुनिया को कौन–सा मुँह दिखाऊँगा।' संतोखी कोर्ट–कचहरी के माध्यम से लड़ता है। जीतता है लेकिन ज़मीन पर कब्जा बार–बार नहीं मिलता है। वह बाज़ार में गीत गा–गाकर चना–चबेना बेचता है। अपने गीत से ही वह सत्याग्रह करता है। बत्तीस वर्ष तक मुकदमेबाज़ी के बाद संतोखी को खेत पर कब्जा मिला। वह खेत छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहता क्योंकि उसे डर है. 'छत्रधारी के आदमी

उनका खेत ही लेकर भाग जाएँ तो?'

संतोखी के सत्याग्रही चरित्र के विपरीत एक और चरित्र बहुत सशक्त है. जंगबहादुर या जंगू। वह दलित जाति का होनहार विद्यार्थी था। बड़का पंडित जी उसे मन से पढ़ाते हैं लेकिन तमाम जातिगत पूर्वाग्रहों से ग्रसित भी हैं। वे जंगू के मॉनिटर बनने की बात करते हैं तो ऊँची जाति के लड़के उसके साथ मारपीट करते हैं। बचपन से ऐसे अत्याचारों को झेलता आया जंगू का मन धीरे–धीरे इन सबका हिंसक प्रतिरोध करने की ओर पुख्ता होता गया और अंततः वह सामंतवाद–जातिवाद के बड़े चेहरों के खिलाफ सक्रिय हो जाता है। वह बेगुनाहों का रक्षक और गुनहगारों का भक्षक बन जाता है। जंगलों और बियाबान में पुलिस से छुपता फिरता है। लाचार लोग उससे न्याय माँगते हैं और अत्याचारी भय खाते हैं। उसकी कहानी पूरे इलाके में फैल गई है। कुछ के लिए वह नायक बन जाता है तो कुछ के लिए खलनायक। वह छत्रधारी सिंह की बेटी का अपहरण कर लेता है ताकि उसको सबक सिखा सके। लखनऊ में उसकी ही जाति की एक महिला मुख्यमंत्री बनती है। सारे ठाकुर विधायक कानून–व्यवस्था के नाम पर उसके एनकाउंटर या गिरफ्तारी का दबाव बनाते हैं। जंगू को न शराब की लत है, न लड़की की। उसे धन की भी लालसा नहीं है। ऐसे में उसे किसी प्रलोभन में फँसाकर पकड़ पाना पुलिस के लिए संभव नहीं है। मुख्यमंत्री तक यह बात पहुँच गई है कि जंगू अपनी जाति की पार्टी के 'बहुजन' से 'सर्वजन' की पार्टी बनने से नाराज है। वह कहता है कि उसकी जाति की नेता तो 'ब्राह्मणों' के घर बैठ गई है। जाहिर है, मुख्यमंत्री भी नाराज लगती हैं। फलतः एक दिन जंगू का एनकाउंटर हो जाता है। वह मार दिया जाता है लेकिन उसकी बहादुरी, न्यायप्रियता और मिशन की कहानी सदा के लिए रह जाती है। लोक कलाकार तरह–तरह से उसकी कहानी को अपनी कला में बाँधकर अभिव्यक्त करते हैं।

संतोखी अपनी लड़ाई जीतता है जबकि जंगू हार जाता है। जंगू की लड़ाई व्यक्तिगत नहीं थी। उसका आयाम बड़ा था। संतोखी की लड़ाई व्यक्तिगत थी लेकिन उसमें भी अधिकार और स्वाभिमान का भाव है। उसकी यह लड़ाई निजी होते हुए भी निजी नहीं रह गई थी। वह भी व्यवस्था की चूलें हिलाता है लेकिन वैध माध्यम से, जबकि जंगू ने अवैध रास्ता चुना था। इसलिए उसका अंत जल्दी हो जाता है। यह उपन्यास तमाम अधूरी कोशिशों और कोशिशों के अधूरेपन को बड़े त्रासद भाव से रेखांकित करता है। किसानों की लड़ाई अधूरी रह जाती है, मजदूरों की मजदूरी वृद्धि की लड़ाई निष्फल हो जाती है, बहुजन आंदोलन अंतर्विरोधों का शिकार हो जाता है, बाजार का शिकंजा पूरे समाज को बौना बना देता है। कुल मिलाकर यह उपन्यास तमाम सपनों और प्रयासों के खंडहर का प्रतीक भी है। केवल संतोखी सफल होता है। अपने गाँधीवादी, शांतिपूर्ण और वैध संघर्ष के रास्ते वह अपनी खेती फिर से हासिल कर पाता है। क्या उपन्यासकार संतोखी की कथा के माध्यम से सामाजिक और

राजनीतिक संघर्ष के लिए कोई संदेश देना चाहता है? यह प्रश्न दिमाग में आना स्वाभाविक है।

इस तरह संतोखी और जंगू सामंतवादी जातिवादी व्यवस्था के खिलाफ प्रतिरोध के दो बड़े पात्र हैं। दोनों के रास्ते अलग हैं पर परिणाम एक जैसा ही इच्छित है। शिवमूर्ति ने इन्हें बेहद संतुलन से रचा है और प्रकारांतर से साध्य बनाम साधन और हिंसा बनाम अहिंसा की शाश्वत बहस को बिना बौद्धिक बनाए वे रोजमर्रा की ग्रामीण परिस्थितियों में घटते हुए, सफल–विफल होते हुए दिखाते हैं। उपन्यास में एक बूढ़ी आवाज़ गाँधी बाबा की जगह पांडे बाबा का नाम लगाकर गीत गाती है 'पांडे बाबा मांगे सुराज, चलु सखी लावन को।' यह किसान आंदोलन की जरूरत और उसमें पांडे की भूमिका की ओर इशारा करता है। साथ ही यह भी इशारा करता है कि यदि साझे मुद्दों को उठाया जाए और ईमानदारी से सामाजिक एकता के लिए कोशिश की जाए तो अस्मितावादी समस्याओं के बावजूद समाज एकजुट किया जा सकता है। यही पांडे राम खेलावन नामक पिछड़ी जाति के किसान को समझाते हैं कि जाति का ज़हर है तो भी उसे उभारने की जरूरत नहीं है। उसे दरकिनार करके एकता की ताजी कोशिश जरूरी है। यही एक आशा और मार्ग उपन्यास में दिखाई देता है। जातिगत, संप्रदायगत भेदों और विरोधों से उबर एकजुट होकर साझे अधिकारों के लिए शांतिपूर्ण संघर्ष।

अवधी के तमाम भूले–बिसरे गीतों का संग्रह इस उपन्यास की एक और बड़ी उपलब्धि है। उपन्यास का नाम ही एक गीत से लिया गया है। कई अध्यायों के नाम भी लोकगीतों के मुखड़ों पर रखे गए हैं। ये लोकगीत न केवल उपन्यास को संगीतात्मक बनाते हैं बल्कि लोकजीवन का प्रामाणिक दस्तावेज भी बनाते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु अपने उपन्यासों में लोकगीतों को शामिल करते हैं। इससे उनके उपन्यास आंचलिक आत्मा से संपन्न होते हैं। शिवमूर्ति ने भी गीतों के उपयोग के माध्यम से 'अगम बहै दरियाव' को एक आंचलिक आत्मा से जीवंत कर दिया है। लोकगीत, लोकजीवन की अभिव्यक्ति के सबसे प्रामाणिक साहित्य रूप होते हैं। लोकजीवन में गहरी पैठ लोकगीतों को समझे और उनका रचनात्मक उपयोग किए बिना पूरी नहीं हो सकती है। जिस कथानक को शिवमूर्ति ने उठाया है, उसमें लोकगीतों की उपेक्षा शायद अखरती ही। यही नहीं, लोकजीवन अपनी अभिव्यक्ति में शुद्ध गद्यात्मक नहीं होता है बल्कि काव्यात्मकता और भाषा की अकूत रचनात्मक क्षमता से संपन्न होता है। शिवमूर्ति ने लोकजीवन के इस काव्यात्मक भाषायी वैभव को पुनर्जीवित किया है।

अवध में तमाम ऐसे रिवाज, प्रथाएँ, रीति, संस्कृति हैं जो अब धीरे–धीरे लुप्त होती जा रही हैं। नयी शिक्षा में दीक्षित युवाओं का इनसे कोई लगाव नहीं है लेकिन

सामूहिक जीवन, लोकरंजन और जिजीविषा के प्रतीक इन प्रथाओं इत्यादि के विसर्जन ने मानव जीवन को अपने ढंग से अकेला और अवसादी बनाया है। शिवमूर्ति निश्चय ही इस परिवर्तन और उसके प्रभावों से सरोकार रखते हैं इसलिए 'अगम बहै दरियाव' में वे बड़े जतन से इन तमाम प्रथाओं को संग्रहित करते हैं। इस तरह यह उपन्यास अवध के लोकजीवन की समग्र गाथा बनता है। 'पद्मावत', 'रामचरितमानस' की तरह 'अगम बहै दरियाव' अवध को ज़िंदा कर देता है। कथाकार की बारीक और समावेशी दृष्टि अवध के जीवन के कोने–अंतरे सबको सामने लाती है। इनके वर्णन में वे खूब रस लेते हैं। इससे पता चलता है कि अपनी कथाभूमि और उसमें समाहित कालखंड से उनका लगाव मानसिक ही नहीं, सांस्कृतिक और भावनात्मक भी है। एक लंबी कालावधि को उन्होंने न केवल एक इतिहासकार, राजनीतिक विश्लेषक और कृषि अर्थशास्त्री सुलभ ज्ञान से बोधगम्य बनाया है बल्कि एक लोक कला, लोकभाषा, लोकसंस्कृति, और लोकजीवन के रसिक के रूप में उस जीवन को इंद्रिय संवेद्य भी बनाया है। 'अगम बहै दरियाव' निश्चित ही समकालीन हिंदी उपन्यास की शक्ति और संभावना का साक्ष्य है।

❑❑❑

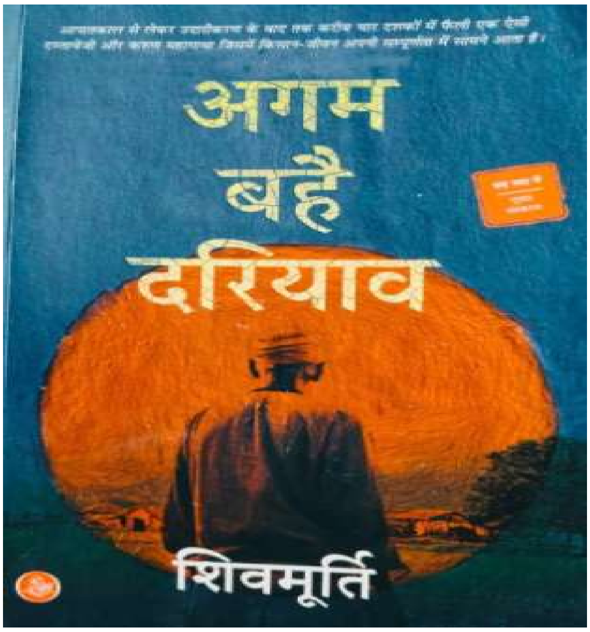

# स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बदलते असम की गौरव–गाथा समेटे हुए जीवंत उपन्यास "पिता–पुत्र"

**होमेन बरगोहांई**
साहित्य अकादेमी से सम्मानित असमिया साहित्यकार

**दिनकर कुमार**
चर्चित कवि, पत्रकार और अनुवादक, असमिया से हिंदी में पचास से भी अधिक कृतियों का अनुवाद

**विजय कुमार तिवारी**
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया से सेवानिवृत्त, साहित्य की विभिन्न विधाओं में स्वतंत्र लेखन

हमारा देश उत्सवधर्मी है और हमारी चेतना प्राणवान है। देश के कोने–कोने में जागृत आत्माओं ने इसे पोषित, पुष्पित व पल्लवित किया है। यह प्राण–चेतना सूक्ष्म रूप से कार्य करती है और कण–कण में आलोक भर देती है। उसकी अंतर्धारा ऊपर से दिखाई नहीं देती परंतु भीतर–भीतर प्रवाहित होती रहती है। हमारी धारणा में कुछ भी निर्जीव नहीं है। सब कुछ सजीव, चेतन और प्राणवान है जिनको नियामक शक्तियाँ एकसूत्र में बाँधे रहती हैं। हर कालखंड में कोई न कोई नयी धारा, चेतना को नया स्वरूप देते हुए प्रस्फुटित होती रहती है और उसका व्यापक प्रभाव दिखाई देता है।

असमिया भाषा साहित्य से दिनकर कुमार द्वारा अनूदित और होमेन बरगोहांई द्वारा रचित उपन्यास 'पिता–पुत्र' की कथा में पिता और पुत्र के संबंधों और विचारधाराओं का टकराव तो है ही, दो पीढ़ियों के संघर्ष को गहरे सूक्ष्म चिंतन के साथ समझने की कोशिश भी हुई है। पिता अभिजात्य का प्रतीक है। उसके सामने ही सामाजिक, आर्थिक और हर तरह से संपन्न उसका अभिजात्य प्रभुत्व छिन्न–भिन्न होता गया है। होमेन बरगोहांई ने असम के मोहधूलि जैसे ग्रामीण क्षेत्र को आधार बनाकर स्वतंत्रता प्राप्ति के समय के बदलाव को रेखांकित किया है। तत्कालीन प्रवृत्तियाँ, लोगों का बदलता चरित्र और उसका दूरगामी प्रभाव संपूर्ण यथार्थ के साथ उभरा है। कालखंड का कोई ऐतिहासिक दस्तावेज है जहाँ वर्ग भी दिखाई देता है और उसका संघर्ष भी। सत्ता में कांग्रेस का आना, कम्युनिस्टों का जुड़ते जाना और पहले की व्यवस्थाओं का तहस–नहस होना स्पष्टतः दिखाई देता है।

---

पिता पुत्र (उपन्यास, मूलः होमेन बरगोहांई, अनुवादः दिनकर कुमार) राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नयी दिल्ली, संस्करण 2023, मूल्यः ₹185, पृष्ठः 235

सन् 1931 में जन्मे, साहित्य अकादमी सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित होमेन बरगोहांई असमिया भाषा के श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। उन्होंने असमिया साहित्य को नये—नये आयाम देकर समृद्ध किया है और उनमें समय, समाज व परिवेश को परखने की गहरी दृष्टि दिखाई देती है। यह उनका महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यासकार को ग्रामीण असम के जीवन का अनुभव है और ग्रामीण जीवन के उतार—चढ़ाव से वे भली—भाँति परिचित हैं। आनंद बरमुदै उपन्यास की भूमिका में लिखते हैं— "केंद्रीय चरित्र का एकाकीपन और अलग—अलग होने का अवसादपूर्ण अनुभव तथा निष्क्रियता का आभास हमें हो जाता है। शिवनाथ का जीवन के प्रति रवैया उदासीनता से भरपूर है। बरगोहांई ने अपने छोटे से गाँव मोहधूलि का चयन किया है और वहाँ की गंदगी, त्रासदी, गरीबी और लोगों के संघर्ष को आधार बनाया है।" आनंद बरमुदै आगे लिखते हैं— "पिता—पुत्र का किस्सागो लगातार दो दुनिया में घूमता रहता है— सक्रियता की बाहरी दुनिया और मोहधूलि की घटनाएँ व केंद्रीय चरित्र का अवचेतन मन। आजादी के बाद मोहधूलि जैसे छोटे से गाँव में कई अहम बदलाव आते हैं। आजादी से पहले अफीम का प्रचलन था, आजादी के बाद शराब बिकने लगती है। छोटे से गाँव के सामान्य विवरणों के माध्यम से पुरानी जीवन शैली में आ रहे बदलाव और द्वंद्व का चित्रण बखूबी किया गया है। यहाँ मोहभंग और मिथकों के टूटने की कहानियाँ हैं। शिवनाथ अपने पिता को साधु समझता है, वही पिता नदी पार कर रही औरत की जाँघ की तरफ कामुक निगाहों से देखता है। उपन्यासकार निरंतर जीवन मूल्यों और संस्थाओं का अर्थ ढूँढते हुए नजर आते हैं। इन मूल्यों को लेकर पीढ़ियों के बीच टकराव को उन्होंने संपूर्ण गहन चिंतन व जीवन दर्शन के साथ चित्रित किया है। इस तरह आनंद बरमुदै ने बड़ी सशक्त भूमिका लिखी है जिसके आधार पर उपन्यास के विस्तृत परिदृश्यों को समझा जा सकता है।

उपन्यास साहित्य की ऐसी सशक्त विधा है जिसमें उपन्यासकार को उड़ने के लिए विस्तृत आसमान मिलता है, कोई बड़ा कालखंड चित्रित कर सकता है, छोटी—बड़ी कहानियों को जोड़ते हुए बड़े कथ्य—कथानक प्रस्तुत कर सकता है और मनुष्य जीवन के सभी अंतर्संबंधों, अंतर्विरोधों, संघर्षों, सुखों—दुखों को समेट सकता है। यहाँ, इस उपन्यास में पीढ़ियों का टकराव भी दिखाई देता है परंतु बरगोहांई किसी पीढ़ी का पक्ष लेते दिखाई नहीं देते। यह निस्पृहता उनके तर्कों और विश्लेषण में प्रकट होती है। उन्होंने 'पिता—पुत्र' उपन्यास को चार पर्वों में बाँटा है और हर पर्व को आवश्यकतानुसार अनेक खंडों में विस्तार दिया है। यह उनकी अपनी शैली और समझ है। शिवनाथ के पुस्तक प्रेम को लेकर बरगोहांई का यथार्थ चित्रण देखिए— "विवर्ण प्राचीन पुस्तक, तिलचट्टों की विष्टा, मरे हुए तिलचट्टे, आलमारी की बंद हवा—इन सबकी मिश्रित गंध में समझाई न सकने वाली मादकता थी, जिसके कारण शिवनाथ कभी—कभी पूरी शाम उसी के नशे में चूर रहता था।" बरगोहांई दार्शनिक बात बताते हैं कि सभी

मनुष्यों की सारी इंद्रियाँ समान रूप से शक्तिशाली या संवेदनशील नहीं होतीं। शिवनाथ का अपने आसपास की भूमि, मिट्टी, बाढ़ और जन–जीवन का सूक्ष्म अवलोकन अद्भुत है और कोई भी दृश्य छूटता नहीं है। वह केंचुए, शेफाली व कलमी फूल और पके धान सहित नाना गंधों को लेकर कुछ अधिक ही संवेदनशील है। बरगोहांई बिंब व प्रतीकों के चित्रण में महारथी हैं और ऐतिहासिक घटनाओं को समेटते चलते हैं।

बरगोहांई के लेखन में स्वाभाविकता है, शिवनाथ और केशव को भोर की हवा में कदंब के फूल की गंध या मवेशी घरों की गायों के शरीर की गंध या गोबर की गंध महसूस हो रही है। शिवनाथ का मन बेचैन है–केशव इतना बदल कैसे गया है? बरगोहांई स्थिति–परिस्थिति का, विरोधों–अंतर्विरोधों का, भीतरी भावनाओं और नाना जटिलताओं का आपसी संबंधों को लेकर बेहतरीन चित्रण करते हैं। उनके लिए जीवन में अब कहीं भी कोई अप्रत्याशित विस्मय नहीं है, अनसुलझा रहस्य नहीं है और अद्भुत संभावना नहीं है।

शिवनाथ अपने भीतर आवेग अनुभव करता है परंतु हिलता–डुलता नहीं, वहीं गाँव में पड़ा रहता है। मन के कोने में कोई शून्यता पसरी हुई है। कैवर्त गाँव के अछूत कतीया के साथ उनके संवाद के चित्रण द्वारा होमेन बरगोहांई तत्कालीन समाज की सच्चाई, गरीबी, भुखमरी, कुपोषण, घरेलू हिंसा, अफीम के नशे का दुष्प्रभाव, सामाजिक ढाँचे आदि का मार्मिक और वीभत्स दृश्य दिखाते हैं। कतीया के जीने का तरीका और उसकी फटेहाल जिंदगी किसी को भी विह्वल कर दे। बरगोहांई लिखते हैं– 'भोजन ही उनकी समस्या नहीं है, अछूत होने के कारण कदम–कदम पर उनका अपमान और तिरस्कार होता है।' शिवनाथ के भीतर सवाल उठ रहे हैं– 'क्या स्वाधीनता इन अभिशप्त लोगों के जीवन में कोई नया परिवर्तन ला सकेगी या हजारों सालों से जो जीवन जी रहे हैं, वैसे ही पड़े रहेंगे?' शिवनाथ खुद से सवाल करते हैं– 'मैं देश की स्वाधीनता चाहता हूँ, पर कैवर्त गाँव के लोगों को मुझसे स्वाधीनता मिले, क्या ऐसा चाहता हूँ?' बरगोहांई की सामाजिक दृष्टि ऐसी अनेक परिस्थितियों को उजागर करती है और मूलभूत प्रश्न उठाती है जिसका उत्तर किसी के पास नहीं है।

होमेन बरगोहांई 'पिता–पुत्र' उपन्यास के द्वितीय पर्व में कथ्य–कथानक, शैली और विषय बदलते हुए उपन्यास को रोचकता प्रदान करते हैं। उन्हें व्यक्ति का मनोविज्ञान समझ में आता है और समाज में उसके प्रभाव का चित्रण उनके लेखन को सर्वस्वीकृत बनाता है। संपूर्ण असम में तांबुल खाने–खिलाने का प्रचलन है और इसे शुभ माना जाता है। समाज में हो रहे बदलावों को पात्रों के जीवन में रेखांकित करना उनकी विशेषता है। असम में बिहू पर्व का अपना महत्व है, शिवनाथ व उनकी धर्मपत्नी को इसमें भी लोगों के उत्साह में कमी दिखाई देती है। शिवनाथ सुखद स्मृतियों का सहारा लेते हैं और गोपाल के सहारे बिहू नृत्य में युवा–युवतियों के साथ रूमानी चित्र

खींचते हैं। स्त्री शरीर को लेकर उनका आकर्षण और वर्णन चमत्कृत करता है। दोस्तों के बीच बातचीत का विषय–गोपाल की प्रणय लीला और औरतों के बारे में उसके विचित्र अनुभव होते हैं। गोपाल अपनी उर्वर कल्पना में स्त्री के समर्पण की एक से एक कहानियाँ गढ़ता है जिससे शिवनाथ उन्मादित होता है। बिहू नृत्य के बहाने वहाँ की संस्कृति का वर्णन बरगोहांई के साहस का प्रतीक है। वह कुछ भी छिपाते नहीं हैं। गोपाल लड़कियों को लौंग देता है, उनकी हथेली दबा देता है और वे झाड़ियों के पीछे मिलन का सुख प्राप्त करते हैं। शिवनाथ को गोपाल की बातों में बड़बोलापन भी लगता था परंतु इसका उसके मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता था।

शिवनाथ गाँव में बहने वाली नई बयार की आहट महसूस करने लगे हैं। पुरानी स्मृतियाँ और आज का यथार्थ उन्हें चिंतन–मनन करने को बाध्य कर रहा है। बरगोहांई शिवनाथ के बहाने व्यक्ति–विकास, सामाजिकता, उत्थान–पतन, इच्छाएँ, उचित–अनुचित, स्त्री आकर्षण आदि का स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हैं। पुत्र गौरीनाथ जंगल के रास्ते से रात में निडर होकर गाँव लौटा है। पिता शिवनाथ को लगता है,उसने सचमुच जीवट का काम किया है। खुशी है, सड़क बन जाने से आवागमन आसान होने वाला है। शिवनाथ और उसका परिवार अभिजात्य की श्रेणी में रहा है, उसे सहज ही श्रेष्ठ माना जाता रहा है और वह भी इसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानता है। बिहू के पहले हुंसुरी गायन के प्रसंग में शिवनाथ को चुनौती मिली है और गाँव वालों ने बहिष्कृत कर दिया है। बरगोहांई ने गहन चिंतन के साथ शिवनाथ जैसे अभिजात्य व्यक्ति के जीवन, चिंतन और बदलाव का उल्लेख किया है। यह मनोविश्लेषण रोचक व वस्तुपरक है जिसमें बदलाव की सहज व्याख्या दिखाई दे रही है। गाँव के बदलाव का जिस तरह बरगोहांई ने क्रमशः उल्लेख किया है, उनकी सूक्ष्म दृष्टि का उदाहरण है।

बरगोहांई के लेखन की विशेषता है कि वह अपने आसपास के सामाजिक यथार्थ को परत–दर–परत खोल कर रख देते हैं। उनकी बारीक दृष्टि से कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। प्रकृति के साथ शिवनाथ की जुगलबंदी बहुत कुछ खोलकर दिखा देती है। उनका नियमित मोहधूलि नदी के पास जाना, जीवन की गहमागहमी महसूस करना मानवीकरण का अद्भुत चित्रण है, उनकी पंक्तियाँ देखिए– 'किनारे के ऊँचे पेड़ों की छाया से नदी तब एक गंभीर रूप धारण कर लेती है, जैसे प्रेमिका के मुखड़े पर लंबी प्रतीक्षा के कारण चिंता और उदासी का भाव हो। शिवनाथ नदी को अपने जीवन के नाना रूपों में महसूस करता है। पहले वह माँ की तरह थी, अब सुख–दुख में शामिल सहधर्मिणी की तरह है। वह कल्पना करता है, जब वह वृद्ध हो जाएगा, मोहधूलि फिर माँ बन जाएगी।' यह सारा विवरण परिपक्व और अनुभवी मन से ही निःसृत हो सकता है। बरगोहांई के ये अनुभव चौंकाने वाले हैं।

शिवनाथ के सामने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के बदलाव विस्मित करते हैं। बाढ़ के समय सरकारी रिलीफ के बँटवारे को लेकर स्थिति स्पष्ट हो रही है। फटिक कहता है– 'आज ही समझ पाया बाबूजी, गरीबों की जान बचाने के लिए रिलीफ का चावल नहीं है, असल में यह वोट देने के बदले में पुरस्कार है।' शिवनाथ मन ही मन सोचता है– 'स्वाधीनता के भोज की पहली पत्तल रेब महाजन के हिस्से में ही आई जबकि देश की आजादी की लड़ाई में करोड़ों लोगों का आह्वान करते हुए कुछ और ही वादा किया गया था। फटिक शिवनाथ को सूचित करता है– 'रातोंरात दो बोरियाँ केशव मंडल के घर पहुँच गईं।' वह आगे बताता है– 'जनता के नाम पर रेब महाजन, केशव मंडल– ये लोग ही राजा बन गए हैं। अब इनकी जुबान ही कानून है।' कुछ लोग मानने लगे हैं, 'अंग्रेजों का समय ही ठीक था। स्वराज के बाद हम गर्म कड़ाही से सुलगते अंगारे पर फिसल गए हैं।' शिवनाथ के मन में केशव के बदले स्वरूप को देखकर प्रश्न उठता है– 'तो क्या आदर्शवाद मानव मन की क्षणिक उत्तेजना का नाम है? स्वार्थ और क्षमता–लिप्सा ही मानव मन का एकमात्र स्थायी लक्ष्य और प्रेरणा है?' होमेन बरगोहांई लिखते हैं– 'इसीलिए हमारे लोग कहते हैं, जितने भी लोग पहले वालंटियर थे, अब वे सभी चोर बन चुके हैं।'

बरगोहांई घटना क्रम को आगे बढ़ाते हुए पात्रों के बीच संवाद का सहारा लेते हैं, कभी–कभी शिवनाथ जैसा पात्र मन ही मन संवाद करता है और भीतर की पीड़ा से जूझता रहता हैं। बरगोहाई ने शिवनाथ के सुखों और दुखों का बड़ा मार्मिक व मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। गौरीनाथ के प्रेम–प्रसंग ने उसे हिलाकर रख दिया है। शिवनाथ उसका परिणाम समझता है और उसे कोई उपाय नहीं सूझता। गौरीनाथ का पिता के नाम पत्र ने रही–सही सारी कसर पूरी कर दी है। शिवनाथ समझता है, गाँव का यह समाज छोड़ने वाला नहीं है। शहर में आदमी समाज के बिना भी रह सकता है परंतु गाँव में नहीं। वह अनुभव करता है– गाँव के समाज के बंधन में रहने से यह बंधन एक सुरक्षित आश्रय की तरह होता है। अन्यथा वही बंधन नागपाश बन जाता है। गाँव का समाज विद्रोह सहन नहीं कर सकता। वह धर्म, काम–वासना आदि को लेकर चिंतन करता है और भगवान के सामने हाथ जोड़ता है। शिवनाथ सोचता है– आदमी का जीवन कच्चू पत्ते पर ठहरे पानी की तरह है, काल की हवा कब नीचे गिरा देगी, इसका कोई ठिकाना नहीं है। कानी और बदसूरत बेटी के विवाह को लेकर वह परेशान रहता है। यहाँ उसका अभिजात्य होना आड़े आ रहा है। शिवनाथ स्वयं से मार्मिक प्रश्न पूछता है– 'अपनी अभिशप्त विकलांग बेटी के विवाह होने के एकमात्र अवसर को खोकर मैं क्या पाना चाहता हूँ? मैं अपनी मर्यादा की वेदी पर अपनी बेटी के सुख–चैन और भविष्य की बलि देना चाहता हूँ।' बरगोहाई का यह विश्लेषण शिवनाथ जैसे व्यक्ति के जीवन की सटीक व्याख्या है।

बरगोहाई की दृष्टि से कुछ भी छूटता नहीं है, वह घर के हालात और लोगों की शंकाओं से भरी दृष्टि को चित्रित करते हैं। विधवा औरत का प्रसंग, शराब के साथ चरित्र की कहानी समाज के पतन का प्रमाण है। उपन्यास असम के बीस–पच्चीस वर्षों के बदलाव का ऐतिहासिक, जीवंत दस्तावेज है। मूल असमिया में लिखा यह उपन्यास बरगोहांई की जीवंत भाषा और शैली का उदाहरण है। इसमें अभिजात्य के पतन की कहानी छिपी हुई है और देश में बदलती राजनीति का दुष्प्रभाव भी।

❑❑❑

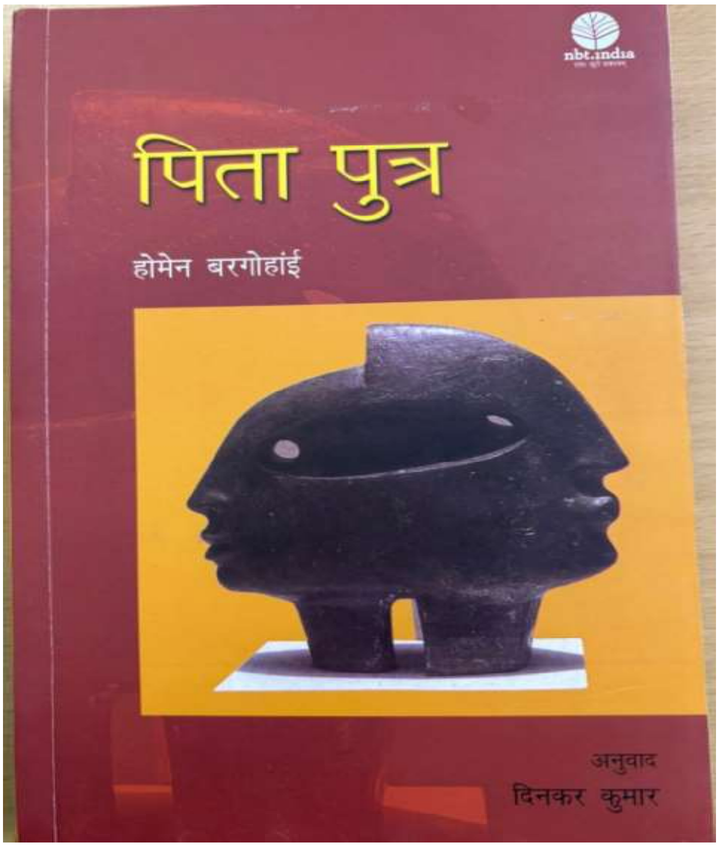

# व्यंग्य समय: तंत्र के अंतर्जाल में व्यंग्य विवेक का हस्तक्षेप

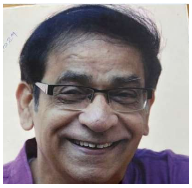

**ज्ञान चतुर्वेदी**
पद्मश्री से सम्मानित ख्यातिलब्ध व्यंग्यकार

**बी. एल. आच्छा**
प्रख्यात साहित्यकार, लघुकथा, व्यंग्य लेखन और आलोचना में विशेष रुचि, उच्चशिक्षा विभाग, म.प्र. से सेवानिवृत्त प्राध्यापक

'व्यंग्य समय' ज्ञान चतुर्वेदी के व्यंग्यों का संकलन है, जिसका संपादन विज्ञान भूषण ने किया है। ये व्यंग्य जितना समकाल के रंगमंच को दर्शाते हैं, उतना ही नेपथ्य के समाज और जीवन को भी ये व्यंग्य शीर्षकों से प्रवेश जरूर करते हैं, पर ले जाते हैं पिछले चोर दरवाजों से; ताकि भीतरी लीला के दृश्य–पाठ मुख्य द्वार के सरकारी पाठों पर कीलें ठोक सकें। यों भी ज्ञान चतुर्वेदी अपने व्यंग्य कर्म में शिखर–चुभन के साथ तलहटी के भूगोल के साथ कारनामी दृश्यों के समाज–मनोविज्ञान को चिपकाकर ले जाते हैं। यह व्यंग्य कर्म स्वयं के जीवन से फूटकर भी अपना दर्द नहीं बुनता; बल्कि जीवन के दंश इन व्यंग्यों में उनके व्यंग्य–कर्म का आंतर व्यक्तित्व रच देते हैं। व्यक्ति और अंचल के यथार्थ से लेकर वैश्विक बाजार की दुनिया इन व्यंग्यों में जितनी फैली हुई है, उनमें रंजक मार के साथ व्यंग्यकार का वैचारिक प्रतिबोध भी उत्कीर्ण–सा नजर आता है।

कुल अट्ठाईस व्यंग्य रचनाएँ हैं इस संग्रह में; 'अनाथ होना और उसके तुरंत बाद' शीर्षक आत्म–कथांश के साथ। ये व्यंग्य हर दिशा में खुलकर खेलते हैं। यह प्रतिबद्धता, प्रतिकार, प्रतिश्रुति, विमर्श से फूटकर नहीं आते, बल्कि बाजार–दुनिया से लेकर टूटी–फूटी सड़क के रंगमंच पर भी जाते हैं। इससे भी आगे समाज मनोविज्ञान की परतों को उघाड़ते हैं। कटाक्ष भी गहरे, पर विचार और प्रतिबोध से पाठक का लक्ष्य– वेध करते हुए। वे शोर नहीं मचाते, चहलकदमी करते हुए विचार संक्रमित रंजक शब्द–विन्यास में गहरा आघात भी करते हैं। बिंदु एक होता है, पर छलाँग लगाते हुए तद्परक विसंगतियों का अंतर्जाल बुनते जाते हैं। यह वक्रिल अंतःक्रिया बौद्धिक परिहास रचती हुई पाठक को लेखकीय चैतन्य से संक्रमित करती जाती है।

'पीछे के दरवाजों वाली इमारत' को ही लीजिए। सहूलियत की आम मानसिकता कितने सिलसिले रच जाती है। नियमों के मुख्य द्वार अटकाते हैं पर सहूलियत के चोर

---

व्यंग्य समयः ज्ञान चतुर्वेदी (चयनित व्यंग्य) संपादकः विज्ञान भूषण, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण–2024, मूल्यः ₹ 395, पृष्ठः173

दरवाजे, आदमी को चलता पुर्जा बनाते हुए सरकारी तंत्र को कितना चूना लगा जाते हैं। संवैधानिक और न्यायिक संस्थाओं में आम आदमी की पुकार कानून के राज और भ्रष्टता के तंत्र में लंबित होती जाती है। मुख्य द्वार की पवित्र शोभा भी बनी रहती है और पिछवाड़े के द्वार काम–साधक जन–विकार बनते चले जाते हैं। सहूलियत के चोर दरवाजों पर ही व्यंग्य नहीं, बल्कि पड़ोस की लड़की से प्यार, किताबों की जगह पेपर आउट के प्रयास, माल खाते हुए दुबले होने की गोलियाँ, पैसा कमाने के बजाय ससुराल से माल झटकने के इरादे सामाजिक नीति–वृत्त पर भी मार करते हैं। परतों की यह खुदाई लेखक के लोक–अवेक्षण और मनोवृत्तियों की पहचान बनकर ही व्यंग्य का संधान करती है।

व्यंग्यकार एक कोना पकड़ता है पर पूरी सड़क नाप देता है। विश्व गाँव की कल्पना सौहार्द्र और मानवीय संरक्षण का नहीं, बाजारवाद पर मानववाद का रंग–रोगन है। विश्व बाजार पानी और पर्यावरण तो क्या; कला, लोक संस्कृति,गीत–संगीत और मौसम को भी लाभ के गुणा–भाग में तब्दील कर रहा है। ये व्यंग्य चलते तो सहज प्रवाह में हैं, पर लपेटते जाने का धक्का पाठक तक आता है। जरूरी नहीं कि यह सड़क–समाज ही हो, घर में पति–पत्नी के खुशनुमा चेहरे भी दांपत्य के काँटे बन जाते हैं। तब प्रेमी–प्रेमिका का चेहरा भी शादीशुदा टाइप में खुभता–खुभाता मुहावरा बन जाता है।

व्यंग्यकार प्रतिबद्धता की सरहदी शब्दावली में लिपटता नहीं है बल्कि बद्धता को खोलता चला जाता है। कार पर लर्निंग लाइसेंस का स्थायी 'एल' चिपकाकर जीवन को भी एलनुमा सुरक्षित कर लिया जाता है। रूमानियत से लेकर चेहरे की रंगत में 'एल' जीवन–सूत्र बन जाता है– 'जितने में मरने से बचे रहें। इससे ज्यादा जीना मूर्खता है'। और कहाँ जाकर व्यंग्य की छलाँग लगती है– कहीं मोनालिसा भी 'एल' लगाकर तो नहीं घूमा करती थीं। हास्य से ज्ञान चतुर्वेदी को कतई एलर्जी नहीं है पर व्यंग्य सुरक्षित जीवन की विधा नहीं है बल्कि ठहरी साँसों में जीने और अवांछित के विरुद्ध चुप्पी तोड़ने का साहस देता है। लेखक का एक असंकलित व्यंग्य– कथा 'सुअर के बच्चे और आदमी के' की अंतिम पंक्ति– 'परंतु आदमी के होते तो क्या सचमुच लड़ते?' यही मानव विवेक के लिए मूल्यपरक अंडरटोन है।

व्यंग्यकार जितना घरेलू दहलीज का है, उतना ही वैश्विक दहलीज का ज्ञान–संज्ञान चितेरा भी। 'शादी नृत्य निर्देशिका' रचना में दांपत्य जीवन की उत्तरवर्ती रेगिस्तानी रेत के बगुलों के बीच वह दांपत्य के आरंभिक स्वप्नकाल को ऐसे खिला देता है कि कंट्रास्ट खुद ही मार करने लगता है और कहन का स्थापत्य कैमरे की चौतरफा आँख और व्यंग्य की थाप बन जाता है– 'शादी नृत्य निर्देशिका' रचना में। सड़कनुमा थियेटर पर फिल्मी नायक–नायिकाओं की आत्मा सारी देह–भंगिमाओं के साथ उतर आती है। ऐसी देह–हिलाऊ प्रतिमाओं को एकटक निहारता व्यंग्यकार इस

सड़क–नृत्यशास्त्र पर कील गड़ा देता है– 'आप चर्बी के मानसरोवर में दुबकते–उबरते मोटे राजहंस हैं। .. यहाँ हिलना ही नृत्य है।' और भरत के 'नाट्यशास्त्र' को याद करते हुए कबड्डी– डांसर, नागिन– बीप, एथनिक टच के मार्केट वेल्यू जैसे अनेक सादृश्य कोमल से विकट, मनुष्य से पशु भंगिमाओं तक जाते हुए इस सड़क– नृत्य प्रतिभा को कचोट जाते हैं।

व्यंग्य केवल बल्ले घुमाने और छक्के का शोर कमाने की कला नहीं है। व्यंग्यकार का सूक्ष्म अवलोकन, व्यंग्य की सामग्री का संचयन–स्थापत्य, इस स्थापत्य में तीली लगाने के मसाले और उसकी व्यंजना को श्रोता तक 'खिर्र' की जलती ध्वनि की तरह पहुँचाने की अपनी कला है। यह व्यंग्याग्नि है और उसकी चालक शक्ति पाठक को वैचारिक संपृक्ति देती है। 'लोक कला के टीलोरामा और जिंगल पोली' व्यंग्य में लोककलाकारनुमा अफसरानापन पर लोकनुमा शब्दों की गढ़न से ऐसी मार करते हैं कि लोककला के ज्ञान और उसके लिए खपाते सरकारी खजाने पाठक के आर–पार हो जाते हैं।

यही बात 'हिंदी साहित्य का मिस्त्री युग' व्यंग्य में हथौड़ी की मार करती है। यह सही है कि कला के अपने टूल्स होते हैं पर साहित्यिक कलाओं के वर्कशॉप में जिस तरह के आयोजन प्रशिक्षक, प्रशिक्षण और प्रशिक्षु होते हैं, वे अक्सर कला से दूरतर वास्ता नहीं रखते। सरकारी बजट के आवंटन को खपाकर ही प्रगतिशीलता, प्रतिबद्धता, पक्षधरता, प्रतिश्रुति, क्रांति, सामाजिक सरोकार जैसे शब्द–नृत्यों के साथ आधुनिक युग तक आते हैं– 'महावीर प्रसाद द्विवेदी का समय द्विवेदी युग और अब हिंदी साहित्य का मिस्त्री युग आया है।' भीतर की आँच से जले बगैर और अपने नजरिये से प्रातिभ हुए बिना शब्दों को महज औजार समझने की कला व्यंग्योक्ति कैसे साध सकती है। इसीलिए शुरू में ही संकेत मिल जाता है कि समय की हथौड़ी पहले सर्जक पर मार करती है। तद्परक व्यंग्य की सामग्री तीखी मार के लिए स्थापत्य की कला रचती है और छपन–राग से निर्लिप्त रहकर ऐसी सर्जना समय के नारों में नहीं फिसलती –'जैसी हवा चल रही है, वैसी कहानी लिखनी है।' लेकिन ज्ञान चतुर्वेदी 'रात में अंधेरा और कहानी में भी' व्यंग्य में इसे लक्षित करते हैं; जो कभी अँधेरे सायों में जासूसी कथा, कभी अंधेरों और कुत्तई भौंकन में कुकरहाव या किसी विमर्श में पिछलग्गू होकर स्वत्व को ही न खो दे। ये अँधेरे समय के हैं, नारों के हैं, लाभ–लोभ के प्रपंचों के हैं, विशेषांकों के विषयों में छपन–लोभ के हैं। बँधी–बँधाई खूँटियों के रचना विधान के हैं। खूँटे और रस्सियों के हैं। पर ज्ञान चतुर्वेदी की आँख में बसा सजग पाठक और आलोचक हमेशा ही रोकता है–ये रास्ते तुम्हारे नहीं, अपने नजरिये से अपना रास्ता बनाओ, अन्यथा– 'वह कहानी जगत में व्याप्त आलोचना, फतवेबाजी, विमर्श और संपादकों की अपनी सनक के अँधेरे से निकलेगी।

साहित्य की दुनिया में मंचीय कविता और कवियों की दास्तानें 'बिगड़े लीवर

वाला लाड़ला कवि' पाठक को बोतल के लिक्विड संवाद तक ले ही जाता है। यही बिगड़े लीवर की मारक व्यंजना है। फिर कवियों के अपने–अपने खेमे, पारिश्रमिक के पंच, वेशभूषा की फैंसी सजधज, कामुकता और ठिठोली के मसखरे अंदाज। हालाँकि वे हर मंचीय कवि का साधारणीकरण नहीं करते, पर माँ भारती से शुरू होकर असली हिंदी तक तो ले ही जाते हैं।

राजनीति में एकता और फूट सहयात्री हैं पर उसमें भी यह छाप कि आप किस गुट के हैं? आलाकमान से कमान दूर छिटकती रहती है। गुटों को आपस में कमजोर करने की प्रतिस्पर्धा पार्टी से ऊपर हो जाती है। तब व्यंग्य अपनी राह खोज लेता है–'एकता की परंपरा भी उतनी ही पुरानी है, जितनी गुटबंदी की।' एंटीक बस की दुनिया को रचता व्यंग्य है–'पुलिया, गर्म बोनट और बकरियाँ'। पब्लिक–कम –गुड्स–कम जानवर–कम मानव ट्रांसपोर्ट की एंटीक बस है। हालांकि अब यह एंटीक दुनिया काफी तब्दील हो चुकी है पर इस व्यंग्य का चित्रात्मक स्थापत्य और रंजक शल्य–शिल्प बरबस रोक देता है। किसी छोटी फिल्म की तरह यह व्यंग्य आदमी, बच्चे, सामान, मनुष्य, बोनट और जानवर में फर्क किए बगैर त्रासद यात्रा करवा ही देता है।

व्यंग्य के लिए कोई विषय नहीं होता न ही किसी विषय का बिंदु–बिंदु प्रसार करते हुए हर कोने से पूर्णांक तक पहुँचाने की सनक होती है। न जाने किस कौंध में बाँस की पौध की तरह फूटता है और कहाँ जाकर जिस–तिस को लपेटता हुआ अपनी चुभन में पाठक को शामिल कर लेता है। 'बूचड़खाने में क्रांति विमर्श' व्यंग्य में क्या संगति है, कूचड़खाने और क्रांति की? बात मुर्गे की, पर काट बुद्धिमान–बुद्धिजीवी की और रूपक है–'दड़बे में बंद मुर्गे आश्वस्त हैं अपने जीवन को लेकर। वे कोई और होंगे जो कटेंगे।' और चेतनाविहीन यह आस्था दर्शन बन जाती है–'ये तो पूर्वजन्म के कर्मों का फल है भाई साहब! कर्म ही ऐसे थे कि बकरा–योनि प्राप्त हुई'। और व्यंग्य का शब्द–चयन–'संन्यासी भाव से देखता रहा।' ज्ञान परंपरा में इस अबोधपन पर चोट करता ज्ञान चतुर्वेदी का व्यंग्य–कर्म जाति, व्यवसाय और अकर्मण्य मानवचेतना से गुजरता हुआ सीधे बुद्धिमान–बुद्धिजीवी का लक्ष्य–वेध करता है।

प्रेम हो या राजनीति; सभी की अपनी कथानक रूढ़ियाँ और साँचों में ढले मुहावरे होते हैं। 'प्रेम में नौका विहार–एक उत्तर आधुनिक कथा' का अंदाज अलहदा है। समय बदला है, तो चाँद के साक्ष्यवाली नौका विहार कथाएँ भी नये परिदृश्य में सूखी नदी, रेत, गंदले पानी और नाव खेने की चप्पू–कला से अनभिज्ञ नायक में उलझकर रह जाती हैं और प्रेम का चाँदनी–राग बंद कमरे में लड़ंत और बहसंत की ध्वनियों में नये पाठ रच देता है। इसी तरह राजनीति के मुहावरे भी आम हैं–एक ही थैली के चट्टे बट्टे। इस साधारणीकृत निचोड़ में ज्ञान चतुर्वेदी का नया क्या है? नया यही कि इस थैली में– 'हर चट्टा बहुत कुछ बट्टा है, हर बट्टा बहुत कुछ चट्टा है... हर शख्स की बातें वही, लातें वही।' आचरण के दृश्य–पाठ के अभिनेता अलग हैं, पर

अभिनय के बाद राजनीति का नाटकीय नादी– पाठ वही। पुराने में नयी अनुगूँज को अंडरटोन बनाने की कथानक संरचना इन व्यंग्यों की विशिष्टता है।

कुछ व्यंग्य अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के खतरों और चुप्पियों के बीच खतरे उठाने के खतरों तक ले जाते हैं। उस भय का भी आकलन करते हैं; जो देखने और कहने के बीच भय की चुप्पी का संकेत दे जाते हैं पर लेखक चुप्पी की निरर्थकता और सामना करने की चुनौती को समय की प्रतिध्वनि बना जाता है। अध्यक्षता, कुर्सी जैसे विषयों पर शरद जोशी से लेकर नवांकुर व्यंग्यकारों ने खूब लिखा है, विशिष्ट और तेवरदार भी। मगर ज्ञान चतुर्वेदी कुर्सी और कुर्सीदार के भीतर–बाहर की शख्सियत का असल कह जाते हैं–'जहाँ कुर्सी ऊँची है, पर किरदार भयभीत हैः वहाँ सबसे पहले ऊँचे कदवालों के कद को छोटा करता है।'

व्यंग्य समय की सभी रचनाओं में ज्ञान चतुर्वेदी अपने समय के समाजशास्त्र के अंतरंग को बुनते हैं, पुराने दृश्य–पाठों में समयांतर के सच का निवेश करते हुए। यह टकराहट व्यक्ति, समाज, राजनीति, प्रेम, रिश्तों, पर्यावरण, रूढ़ विश्वासों से गुजरते हुए अपने वैचारिक अक्स गढ़ती है। इस अक्स का नुकीला सिरा उस लक्ष्य को पहचानता है जो सृजन के विवेक और मनुष्यता के पाठ तक सजगता से ले जाता है। पाठ की अपनी प्रकृति है। सड़क सपाट हो तो भी गड्ढों को पहचानती है, वक्रिल गति में आसपास और दूरदराज तक चहुँओर नजर दौड़ाती हुई खतरों से आगाह करती है। मार के लिए अंचल की ध्वनियों और शब्दों के विकार से, लोक की जबान पर पसरे बाँकभरे शब्दों से, विषय से, विषयांतर की कूद से, शब्दों–वाक्यांशों की शिफ्टिंग, संवाद, स्वल्प कथातत्व, विज्युअल और व्यंग्य में हास्य के यथोचित अनुपात से वे व्यंग्य को असरदार बनाते हैं पर वैचारिक स्पर्श से मानव–विवेक को चौकस बनाने का भीतरी उत्प्रेरक इन व्यंग्यों पर अपने हस्ताक्षर कर देता है।

❑❑❑

# जीवन की वास्तविकता से रू–ब–रू: जिंदगी यहीं कहीं

**विमला व्यास**
शिक्षाविद्, रसायन वैज्ञानिक एवं वरिष्ठ साहित्यकार, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

**नवीन कुमार**
सहायक प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, ए.एन. कॉलेज, पटना

डॉ. विमला व्यास की पुस्तक "जिंदगी यहीं कहीं" सच में एक रोचक दिलचस्प और भावुकतापूर्ण कहानी संग्रह है। नोशन प्रेस डॉट कॉम से छपी यह पुस्तक पाठकों को बाँधे रखने में सक्षम है। कोई भी पाठक जब यह पुस्तक उठाएगा तो अंत तक पढ़ेगा ही। आद्योपांत एक उत्सुकता और रोचकता बनी रहती है। डॉ. विमला व्यास का जन्म और पूरा अध्ययन और अध्यापन क्षेत्र इलाहाबाद रहा, स्वाभाविक है क्षेत्र विशेष का असर और खांटीपना, देशीपना उनके चिंतन में है। उनके भव्य, दिव्य और शानदार रचना संसार में इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के साहित्यिक वातावरण का व्यापक प्रभाव है। भले ही उनका अध्ययन और अध्यापन का विषय रसायन विज्ञान है लेकिन कहानी संग्रह को पढ़ने पर लगता है कि कोई व्यापक अनुभवी और साहित्यिक चिंतक ही ऐसी सहज सरल रचना कर सकता है। उनका अनुभव संसार बहुत ही व्यापक है। वे अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, संयुक्त अरब अमीरात आदि देशों की यात्रा कर चुकी हैं। विश्व के इतने देशों की यात्रा के बाद भी उनके मन में इलाहाबाद है। माँ को समर्पित यह कहानी संग्रह निःसंदेह पढ़ने योग्य है।

प्रस्तुत कहानी संग्रह में कुल मिलाकर ग्यारह कहानियाँ हैं। इसमें आशीर्वचन निदेशक मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी का है। दो कहानियाँ परिशिष्ट के रूप में हैं। सभी कहानियाँ अपने आप में अद्वितीय हैं। 'सोल कनेक्शन' कहानी में यूनिवर्सिटी सिस्टम का एक विद्रूप चेहरा हम सभी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत होता है। लेखिका स्वयं यूनिवर्सिटी सिस्टम को बहुत ही नजदीक से जानती समझती हैं। एक विभागाध्यक्ष की पावर और उसकी ताजपोशी के महत्त्व का बहुत ही सचित्र वर्णन किया गया है। एम. फिल एवं पी.एचडी के पाठ्यक्रम में नामांकन लेने के दौरान आमतौर पर शोध निर्देशक एवं शोधार्थी में आत्मीय लगाव हो ही जाता है और यह अस्वाभाविक भी नहीं है क्योंकि कई सालों का साथ जो होता है। युवा शोधार्थी सुहानी जो दिल्ली के

जिंदगी यहीं कहीं: विमला व्यास (कहानी संग्रह) नेशन प्रेस, संस्करण–2024, मूल्य ₹250, पृष्ठ–192

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से गई थी उसके व्यक्तित्त्व में जेएनयू की झलक दिखना स्वाभाविक है। कॉलेज में अकसर वह जींस पेंट पहन के आती थी। फर्राटेदार अंग्रेजी बोलती थी, क्लास के लड़के–लड़कियों से कम ही मिक्स अप होती थी। स्वाभाविक है एक प्रोफेसर का दिल उस पर आ जाता है। इस तरह के किस्से यूनिवर्सिटी में भरे पड़े हैं। कहानी को पढ़ने के बाद लगता है कि यह कहानी न होकर कोई यथार्थ घटना है जिसका बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण डॉ. विमला व्यास ने किया है।

कहानी "नीरवता" परंपरागत कहानी है। इस थीम पर और मिलती जुलती कहानियों पर 60–70 के दशक में कई हिंदी फिल्में भी बनी हैं। यह कहानी सतना जिले के रजौला गाँव की है लेकिन ऐसी कहानियाँ लोक परंपराओं और कथाओं में बहुतेरी हैं। बहन के साथ ज्यादती के परिणामस्वरूप उपजे प्रतिशोध के वंशीभूत होकर किया गया हत्याकांड। युवावस्था में ऐसे कदम बहकने की कथा अनगिनत हैं, उनका अंजाम भी कमोबेश यही होता है।

सोशल मीडिया के चरम युग में 'तुम मेरे देवदूत' जैसी कहानी रोमांच पैदा करती है और यह भी सिद्ध करती है कि यह कहानी संग्रह 2024 में प्रकाशित हुआ है। हालाँकि एक नजर में इस पुस्तक को देखें तो ऐसा लगता है कि सभी कहानियों के बीच एक लंबे कालखंड का अंतराल है। जैसे "तुम मेरे देवदूत" में कथानक में जिस तरह का कसाव है वैसा "नीरवता" में नहीं है। आमतौर पर आभासी दुनिया की मित्रता और लोकव्यवहार अलग होता है जबकि वास्तविक दुनिया में सबके खट्टे मीठे अनुभव होते हैं। लेखिका स्वयं लिखती हैं कि 'उसके आने की खबर ने ह्रदय को प्रफुल्लित कर दिया, सोचने लगी कि आभासी दुनिया से परे वास्तविक दुनिया में मुलाकात होगी हमारी और ठीक से जान पाएँगे एक दूसरे को, क्योंकि आभासी संसार एक तरह का बुलावा जैसा है। यहाँ ज्यादातर रिश्ते दिखावटी होते हैं। किसी व्यक्ति को जानने का मौका तो मिलता है पर वह कितना वास्तविक है यह समझना मुश्किल होता है।' सोशल मीडिया के आकर्षण में आज हम सब जी रहे हैं। सोशल मीडिया का प्रभाव व्यापक और सार्वभौमिक है। इस सोशल मीडिया को केंद्रीय आधार बनाकर लिखी गई कहानी 'तुम मेरे देवदूत' से युवा पीढ़ी सहज रूप से अपने को जुड़ा महसूस करती है।

"विल यू मैरी मी'' के आकाश की जाति बनिया है। उसकी शादी कुलीन ब्राह्मण परिवार की लड़की से नहीं हो पाती। आकाश अमेरिका जाकर अपने को सिद्ध करता है और फिर बीस वर्ष बाद इलाहाबाद में घुटने पर बैठकर "विल यू मैरी मी"? कहता है। यह है वास्तविक प्रेम की सर्वोच्च अभिव्यक्ति। कहानी संग्रह के सभी पात्र सहज–सरल हैं। उनके पात्र समाज के हर तबके से है। 'अँधेरी गुफा' कहानी में कहानीकार कहती हैं कि हमारे समाज की विडंबना है कि अगर बड़ा आदमी कोई गलत काम करे तो वह गलत नहीं होता। वही काम कोई लोअर मिडिल क्लास का आदमी कर दे तो पूरा समाज उसके विरोध में खड़ा हो जाता है। एक महिला होने

के कारण उन्होंने महिला पात्रों के मनोविज्ञान को बखूबी समझा है और उनको इस पुस्तक में प्रस्तुत करने में डॉ. विमला व्यास सफल रही हैं। 'एक नई इबारत' कहानी में दिल्ली महानगर और दिल्ली यूनिवर्सिटी के स्टूडेंट्स की व्यथा का सुंदर चित्रण है। जब कोई चीज बड़ी आसानी से उपलब्ध हो जाती है तो हम उसकी कद्र नहीं करते पर जब वह हमसे दूर चली जाती है तब हमें उसकी अहमियत पता चलती है। कहानी में ऐसे ही अनेक प्रसंगों द्वारा महिलाओं के जीवन के विविध आयामों एवं संघषों को केंद्रीय विषय बनाया गया है। कुछेक कहानियाँ अलग थीम पर हैं, जैसे "वो खुद ही बिक गया" कहानी में भ्रष्टाचार पर महत्त्वपूर्ण विमर्श किया गया है। भ्रष्टाचार एक तरह से शिष्टाचार है। आज के समय में भ्रष्टाचार के आगोश में छोटे–बड़े अधिकारी से लेकर चपरासी तक सब हैं। दयाराम नामक चपरासी भी ईमानदारी भरा जीवन जीने वाला साधारण सा चपरासी है। वह बहुत ही कष्टमय जीवन जीने को विवश है। हमेशा समय से ऑफिस पहुँचता है, समय की पाबंदियों के बाद भी उसकी कोई इज्जत नहीं करता है। डाँट फटकार और जिल्लत भरा कार्यस्थल उसकी नियति है। वह दिन भर भागता–दौड़ता रहता है। विभागों के अपने दायित्वों और ड्यूटी को पूरी निष्ठा और कर्तव्यनिष्ठता के साथ करता रहता है। फिर भी उसको कोई इंक्रीमेंट नहीं मिलता, कोई और फायदा भी नहीं होता। इतना ही नहीं ऑफिस के सारे स्टॉफ से उसको कम पैसे मिलते हैं। फिर भी बेचारा दयाराम काम करने में लगा रहता है। कई बार सामान्य गलती के लिए डाँट भी सुनता है। एक दिन उसे अपनी मैडम से एक गुरु मंत्र मिलता है जिस पर वह अमल करता है। उसके बाद वह अपने को परिवर्तित कर लेता है और एक चमत्कारी दयानंद के रूप में वह हम सबके सामने उपस्थित होता है। जो बहुत तेज और चालाक है। अपनी खेती खलिहान से गाँव से लाकर वह मटर गन्ना ऑफिस के अन्य पदाधिकारियों को रिश्वत के रूप में देता है। बड़े बाबू को खुश कर देता है। ऑफिस के अंदर जो महत्त्वपूर्ण लोग हैं स्टाफ है सबको मटर–गन्ना आदि देकर सबका प्रिय हो जाता है। उसकी ऑफिस में खातिरदारी होने लगती है। वह निरंतर तरक्की पाता जाता है और सबका प्रिय हो जाता है। इस तरह से डॉक्टर व्यास ने भ्रष्टाचार को एक तरह से महिमामंडित करके दिखाया है कि आप ईमानदार होकर सामान्य जीवन नहीं जी सकते। परंतु अंत में लेखिका अपराध बोध से ग्रसित होकर खुद प्रश्न करती है कि क्या दयाराम का सीधा–सादा ईमानदार रहना बुरा था या निर्भीक और बेईमान बन जाना ज्यादा अच्छा है? साथ ही कहानीकार प्रश्न भी करती है कि इसमें किसकी त्रुटि है। मेरी या दयानंद की? मैं, जिसने उसे लेनदेन का मार्ग सिखाया या जो लेनदेन करके खुद ही बिक गया।

"अपनी तकलीफों के लिए अक्सर हम लोग समय को दोष देते हैं, कि हमारा वक्त खराब है। इसलिए धन दौलत सब खत्म हो गया, पर यह बिल्कुल सत्य नहीं है। केवल खुद की लापरवाही या अकर्मण्यता और दूरदर्शिता की कमी का परिणाम

है। इसकी वजह से हमारी यह हालत है।" 'सच्ची श्रद्धांजलि' कहानी का यह सत्य कथन पंडित चंद्र भूषण की विपन्नता और दीन हीन स्थिति का चित्रण करता है जिसके लिए पंडित जी स्वयं उत्तरदायी हैं। संग्रामगढ़ ही नहीं बल्कि समूचे प्रतापगढ़ में एक समय उनका रुतबा था लेकिन अपनी अकर्मण्यता के कारण वह इस तरह का जीवन जीने को विवश थे। इसी कहानी में डाक्टरों के वेश में दानव के रूप में एक पात्र का सृजन डॉ. विमला व्यास ने किया है जिसके माध्यम से उन्होंने वर्तमान चिकित्सा पद्धति और व्यवस्था को बेपर्दा कर दिया है। भारत में रामबाण इलाज के नाम पर हजारों वैद्य हैं। उन वैद्यों की मार्केटिंग पर कठोर प्रहार डॉ. व्यास ने किया है। बहरहाल पंडित जी की पत्नी चंद्रप्रभा दिवाली की रात में ही स्वर्गीय हो जाती है, लेकिन कहानी के अंत में उसी ऐतिहासिक महत्व की हवेली में "चंदप्रभा चैरिटेबल अस्पताल" का उद्घाटन प्रदेश के स्वास्थ्य मंत्री के कर कमलों द्वारा होता है।

इस प्रकार देख सकते हैं कि संग्रह की सभी कहानियाँ सहज, सरल और जनजीवन के रोचक विषयों से संबद्ध होने के कारण सामान्य पाठक वर्ग में अपना स्थान बनाने में सफल हुई हैं।

❑❑❑

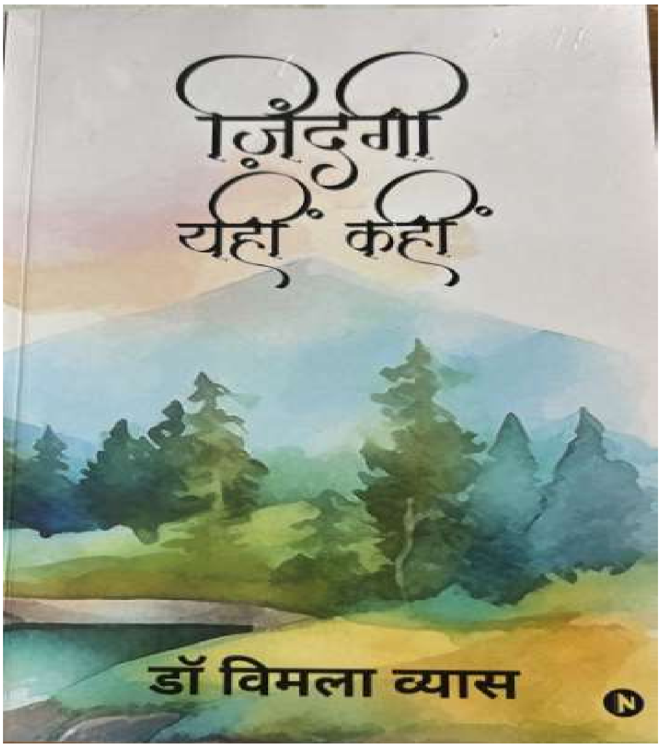

## प्राप्ति स्वीकार

1. पूर्णमासी / जसवंत सिंह कंवल, अनुवाद– कुलवंत सिंह कोछड़ / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत / नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2022 / मूल्य–180 / पृष्ठ–211
2. प्रतिश्रुति / ध्रुव भट्ट / आर के पब्लिकेशन / 1 / 12 पारस दुबे सोसायटी ओवरी पाडा, एस.बी. रोड दहिसर पूर्व मुंबई / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–575 / पृष्ठ–286
3. मृत्यु के बाद / शिवराम कारंत / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत / नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2021 / मूल्य–95 / पृष्ठ–145
4. स्मृतिः एक प्रेम की / कृष्ण खटवाणी, अनुवाद– मोतीलाल धोतवाणी / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत / नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2021 / मूल्य–80 / पृष्ठ–94
5. कच्चा प्रेम / देवेंद्र कुमार मिश्र / बोधि प्रकाशन / सी–46 सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन, नाला रोड–22 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–299 / पृष्ठ–220
6. व्यथा की बात / जोसफ मॉकवान, अनुवाद– गोपालदास नागर / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत / नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2014 / मूल्य–90 / पृष्ठ–182
7. कि आप शुतरमुर्ग बन रहें / शांतिलाल जैन / बोधि प्रकाशन / सी–46 सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन नाला रोड–22 / प्रकाशन वर्ष 2023 / मूल्य–200 / पृष्ठ–159
8. ग्रहण काल एवं अन्य कविताएँ / रजिया / सृजनलोक प्रकाशन / बी–1, दुग्गल कॉलोनी खानपुर, नयी दिल्ली–110062 / प्रकाशन वर्ष 2024 / मूल्य–350 / पृष्ठ–112
9. पूजाघर / जी. शंकर पिल्लै / राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत / नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज–II, वसंत कुंज, नयी दिल्ली–110070 / प्रकाशन वर्ष 2016 / मूल्य–125 / पृष्ठ–96

❑❑❑

# संपर्क सूत्र

1. **डॉ. शैलेश शुक्ला**
एस.एस.बी.–26, ऑफिसर्स कॉलोनी, एन.एम.डी.सी. लिमिटेड, हीराखनन परियोजना, मझगवां, पन्ना–488001 (म. प्र.)
फोन–8759411563, ई-मेल– poetshailesh@gmail.com
2. **प्रो. प्रत्यूष वत्सला**
प्राचार्य, लक्ष्मीबाई महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय–110052
फोन–9818502839, ई-मेल– vatsala.pvt@gmail.com
3. **प्रो. त्रिभुवननाथ शुक्ल**
सरस्वतीपुरम, गली–2, कनैला, नैनी, प्रयागराज–211008 (उ. प्र.)
फोन–9425044685, ई-मेल– tnshukla13@gmail.com
4. **डॉ. राठोड पुंडलिक**
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, मानविकी संकाय, माउंट, कार्मेल कॉलेज, (स्वायत्त), 58, प्यालेस रोड, वसंतनगर, बेंगलूरू– 560001
फोन–9441161697, ई-मेल– rathodpundlik@gmail.com
5. **डॉ. शिवनारायण**
306, अमन अपार्टमेंट, शांति निकेतन कॉलोनी, भूतनाथ रोड, पटना–800026
फोन–9334333509, ई-मेल– shivnarayan22@yahoo.com
6. **प्रो. प्रदीप कुमार**
A-3/502 प्रिंटर अपार्टमेंट, सेक्टर–13 रोहिणी, दिल्ली–110085
फोन–9350217047, ई-मेल– pradeep.kriti@gmail.com
7. **सुश्री नेहा श्रीवास्तव**
न्यू पी. एचडी गर्ल्स हॉस्टल, बी. एच. यू. कैंपस वाराणसी–221005 (उ. प्र.)
फोन–9641381750, ई-मेल– s1.nehasrivastava@gmail.com
8. **डॉ. रामचंद्र राय**
रूपांतर परिसर, रतनपल्ली (नार्थ), शांतिनिकेतन–731235 पश्चिम बंगाल
फोन–9434233533, ई-मेल– drrcroy@gmail.com
9. **डॉ. जगदीश व्योम**
बी–12 ए/58–ए धवलगिरि, नोएडा (उ.प्र.) पिनकोड–201307
फोन–9868304645, ई-मेल– jagidishvyom@gmail.com
10. **डॉ. कमलेश कुमारी**
सह आचार्य, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ हरियाणा–123031
फोन–70154057510, ई-मेल– kamlesh@chu.ac.in

11. **श्री अनुज यादव**
शोधार्थी, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ हरियाणा–123031
फोन–9350280593, ई-मेल–anuj230179@chu.ac.in
12. **डॉ. अनुश्री**
असिस्टेंट प्रोफेसर, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
ई-मेल– anushree.29@gmail.com
13. **डॉ. अर्चना त्रिपाठी**
12 C, MIG DDA फ्लैट्स, मोतियाखान, पहाड़गंज, नयी दिल्ली–110055
फोन–9891021839, ई-मेल– jnuarchanatripathi@gmail.com
14. **सुश्री कागो मादो**
C/O Taru Yami Composite Livestock Farm, Nirjuli, P.O & P.S Nirjuli, Distt. Papumpare (Arunachal Pradesh)-791109
फोन– 8171573205, ई-मेल– kmado3261@gmail.com
15. **डॉ. चंद्र प्रकाश दादलानी**
सहायक आचार्य एवं विभागाध्यक्ष (सिंधी विभाग) सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर–305001
फोन–8764208599, ई-मेल– chander.dadlani@gmail.com
16. **प्रो. प्रेम जनमेजय**
73 साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए–3, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली–110063
फोन–9811154440, ई-मेल– premjanmejai@gmail.com
17. **प्रो. पृथ्वीराज तौर**
स्वामी रामानंद तीर्थ, मराठवाडा विश्वविद्यालय नांदेड़, महाराष्ट्र–431606
फोन–9423274565, ई-मेल– dr.prithvirajtaur@gmail.com
18. **प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी 'देशगव्हाणकर'**
निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा–282005
फोन–9422217600, ई-मेल– directorofficehkhs1960@gmail.com
19. **श्री मनप्रसाद सुब्बा**
बिजनबारी बाजार बिजनबारि, दार्जिलिंग (पश्चिम बंगाल) 734201
फोन–9832025456, ई-मेल–manprasads@gmail.com
20. **श्री बिर्ख खडका डुवर्सेली**
आमा खडकालय, दुर्गागढी, प्रधाननगर, दार्जिलिंग (पश्चिम बंगाल) 734003
फोन–9749052857, ई-मेल– birkhakd@gmail.com
21. **प्रो. रीतामणि वैश्य**
एसोसियेट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग, गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी–781014 फोन–9435116133, ई-मेल– ritamonibaishya841@gmail.com

22. **श्री अब्दुल गफ्फ़ार**
दूबे टोला , वार्ड नं 26, एक्सिस बैंक गली, नगर परिषद– बगहा, पोस्ट – बगहा प्रखंड– बगहा–1, अनुमंडल– बगहा, जिला– पश्चिम चंपारण (बिहार)– 845101 फोन–9122437788, ई-मेल– gaffar604@gmail.com

23. **डॉ. प्रतिभा शतपथी**
बी–3/2, चंद्रमा हाउसिंग कॉम्प्लेक्स, यूनिट–3, खारबेल नगर, भुवनेश्वर–751001 (ओड़िशा) फोन–9438305224, ई-मेल– sreeparna2819tarafdar@gmail.com

24. **डॉ. राजेंद्र कुमार मिश्र**
टाईपः 4/13, शिड्यूल्ड–बी, राष्ट्रपति संपदा, नयी दिल्ली–110004
फोन–9650990245, ई-मेल– rm1020910@gmail.com

25. **श्री गौरांग दिवेटिया**
12, Haridwar Flats, 23, Patel Society, Gulabi Tekra, Panchwati, Ahmedabad-380006 फोन–9825441559, ई-मेल– vivekdivetiya@hotmail.com

26. **डॉ. नयना डेलीवाला**
15, नीलगगन टावर, नेहरू पार्क, वस्त्रापुर अहमदाबाद–380015
फोन–9327064948, ई-मेल– n.deliwala13@gmail.com

27. **डॉ. माणिक मृगेश**
'मृगेशायन', 22 बी मनोरथ सोसाइटी, न्यू समा रोड, वडोदरा–390024
फोन–9909019951, ई-मेल– mrigeshmanik@gmail.com

28. **श्री सुशांत सुप्रिय**
A-5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाजियाबाद–201014 (उ.प्र.)
फोन–8512070086, ई-मेल– sushant1968@gmail.coms

29. **सुश्री सुनीला नारंग**
60, प्रॉमिस अपार्टमेंस F ब्लॉक, विकास पुरी, नई दिल्ली–18
फोन–9205819339, ई-मेल– sunilanarang13@gmail.com,

30. **सुश्री अलका सिन्हा**
371 गुरु अपार्टमेंटस प्लॉट नं. 2, सेक्टर–6, द्वारका नई दिल्ली–110075
फोन–9910994321, ई-मेल– alkasays@gmail.com

31. **डॉ. आनंद पांडेय**
191– बी, डी 3, राष्ट्रीय रक्षा अकादमी, खड़कवासला, पुणे–23
फोन–9503663045, ई-मेल– anandpandeyjnu@gmail.com

32. **श्री शिवमूर्ति**
'सबद', 2/325, विकास खंड, गोमती नगर, लखनऊ–226010 (उ.प्र.)
ई-मेल– shivmurtishabad@gmail.com
वेबसाइट–www.shivmurti.com

33. **श्री विजय कुमार तिवारी**
टाटा अरियाना हाऊसिंग, टावर–4 फ्लैट–1002, पोस्ट–महालक्ष्मी, विहार, भुवनेश्वर, उडीसा–751029
फोन–9102939190, ई-मेल– vijsun.tiwari@gmail.com

34. **श्री दिनकर कुमार**
4–बी 1, ग्लोरी आपर्टमेंट तरूण नगर मेन रोड गुवाहाटी–781005 (असम)
फोन–9435103755, ई-मेल–

35. **श्री बी. एल. आच्छा**
फ्लैट नं–701, टॉवर–27, नॉर्थ टाउन अपार्टमेंट, स्टीफेंशन रोड (बिन्नी मिल्स) पेरंबूर, चेन्नई (तमिलनाडु)– 600012
फोन–9425083335, ई-मेल– balulalachha@yahoo.com

36. **डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी**
ए–40, अलकापुरी, भोपाल, मध्यप्रदेश–462024
ई-मेल– gyanchaturvedibpl@gmail.com

37. **डॉ. नवीन कुमार**
202, श्री गणेश अपार्टमेंट, कवि रमन पथ, नागेश्वर कॉलोनी, बोरिंग रोड पटना, पिनकोड–800013
फोन–9939444131, ई-मेल– drnkumar23@gmail.com

38. **डॉ. विमला व्यास**
HIG-22/3 ग्रीन कॉलोनी, सर्कुलर रोड, प्रयागराज–211001
फोन–9452780735, ई-मेल– vimlavyas@gmail.com

❑❑❑

# केंद्रीय हिंदी निदेशालय
## भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

**सेवा में,**

**निदेशक**
**केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,**
**शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066**
**ई–मेल – chdsalesunit@gmail.com**
**फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 248, 244**

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए दिनांक .................... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय सदस्यता शुल्क .................. रुपये, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली के पक्ष में नयी दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. .............................. दिनांक .......................... भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : ..........................................................................................................
पूरा पता : ..........................................................................................................
..........................................................................................................
..........................................................................................................
मोबाइल/दूरभाष : ..........................................................................................................
ई–मेल : ..........................................................................................................
संबद्धता/व्यवसाय : ..........................................................................................................
आयु : ..........................................................................................................
पूरा पता जिस पर : ..........................................................................................................
पत्रिका प्रेषित की जाए ..........................................................................................................

| सदस्यता | शुल्क डाक खर्च सहित |
|---|---|
| वार्षिक सदस्यता | रु. 250.00 |
| पंच वर्षीय सदस्यता | रु. 1250.00 |
| दस वर्षीय सदस्यता | रु. 2500.00 |

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt)--- 211766 JR. ADMN. OFFICER, CENTRAL HINDI DIRECTORATE में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नयी दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम, पूरा पता और दूरभाष भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

सुश्री मनमोहन कौर, माननीय संयुक्त सचिव, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा भाषा पत्रिका के 'साहित्य के माध्यम से कौशल विकास' विशेषांक का लोकार्पण किया गया। साथ में हैं– प्रोफेसर सुनील बाबुराव कुळकर्णी, निदेशक केंद्रीय हिंदी निदेशालय तथा अन्य अधिकारीगण

हितेंद्र कुमार मिश्र द्वारा केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक पद पर कार्यभार ग्रहण किया गया।

पंजी. संख्या 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (द्वैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305–5–2025
500

## 'भाषा' पत्रिका के कुछ प्रमुख विशेषांक

- लिपि विशेषांक (1968)
- हिंदी भाषाविज्ञान अंक (1973)
- बाल विशेषांक (1979)
- प्रेमचंद विशेषांक (1981)
- देवनागरी लिपि एवं मानक वर्तनी विशेषांक (मार्च–अप्रैल, 1996)
- डॉ. नगेंद्र स्मृति अंक (मार्च–अप्रैल, 2001)
- सूचना प्रौद्योगिकी एवं भारतीय भाषाएँ विशेषांक (मई–जून, 2002)
- लोक साहित्य विशेषांक (जुलाई–अगस्त, 2005)
- भारतीय यायावर साहित्य विशेषांक (मई–जून, 2006)
- अज्ञेय विशेषांक (नवंबर–दिसंबर, 2010)
- डॉ. अंबेडकर विशेषांक (जनवरी–फरवरी 2017)
- भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना विशेषांक (मार्च–अप्रैल 2017)
- पंडित दीनदयाल उपाध्याय विशेषांक (सितंबर–अक्टूबर 2017)
- प्रवासी साहित्य विशेषांक (जनवरी–फरवरी 2018)
- भारतीय आत्मकथा साहित्य विशेषांक (मार्च–अप्रैल 2018)
- राम तत्व मीमांसा विशेषांक (नवंबर–दिसंबर 2021)
- फ़ीजी विशेषांक (नवंबर–दिसंबर 2022)
- भारतीय भाषा चिंतन विशेषांक (नवंबर–दिसंबर 2023)
- रामदरश मिश्र जन्मशती विशेषांक (नवंबर–दिसंबर,2024)
- साहित्य के माध्यम से कौशल विकास (मई–जून, 2025)



केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाषः–011–20862356/26105211
एक्सटेंशन– 248/234/231

Central Hindi Directorate
(Ministry of Education, Govt. of India)
West Block-7, Ramakrishnapuram,
New Delhi-110066
www.chd.education.gov.in